TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182063

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 C4JV Accession No. H2773

Author चतुरसेन, आचार्य

Title वैशाली की नगरवधू: उत्तरार्द्ध 1955

This book should be returned on or before the date last marked below.

वैशाली की नगर-वधू

वैशाली की नगर-वधू

(बुद्धकालीन इतिहास-रस का मौलिक उपन्यास)

उत्तरार्द्ध

लेखक

आचार्य चतुरसेन

लखनऊ

दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड

१९५५

प्रथम संस्करण १९४९
द्वितीय संस्करण १९५५
द्वितीय संस्करण की मुद्रित प्रतियां २२००

अनुबन्धपत्र में प्रकाशक को हस्तान्तरित किये अधिकारों के अतिरिक्त अन्य अधिकार लेखक के अधीन हैं।

मुद्रक
प्रेम प्रेस, इलाहाबाद

परिच्छेद-सूची

९१. सुप्रभात	...	१
९२. मधुपर्व	...	३
९३. आखेट	...	८
९४. रंग में भंग	...	१४
९५. साहसी चित्रकार	...	१७
९६. मंजुघोषा का प्रभाव	...	२१
९७. एकान्त वन में	...	२७
९८. अपार्थिव नृत्य	...	३०
९९. पीड़ानन्द	...	३२
१००. अभिन्न हृदय	...	४१
१०१. विदा	...	४४
१०२. वैशाली की उत्सुकता	...	४८
१०३. दो बटारू	...	५३
१०४. दस्यु बलभद्र	...	५९
१०५. युवराज स्वर्णसेन	...	६१
१०६. प्रत्यागत	...	६४
१०७. वैशाली में मगध महामात्य	...	६९
१०८. भद्रनन्दिनी	...	७४
१०९. नन्दन साहु	...	८०
११०. दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश	...	८२
१११. हरिकेशीबल	...	८५
११२. चाण्डाल मुनि का कोप	...	९०

११३. सन्निपात-भेरी ... ९४
१४. मोहनगृह की मंत्रणा ... १०६
११५. पारग्रामिक ... ११४
११६. छाया पुरुष ... ११८
११७. विलय ... १२०
११८. असमंजस ... १२४
११९. देवजुष्ट ... १२९
१२०. कीमियागर गौड़पाद ... १३१
१२१. अप्रत्याशित ... १३६
१२२. अनाहूत ... १३९
१२३. एकाकी ... १४९
१२४. मधुवन में ... १५५
१२५. विसर्जन ... १६०
१२६. एकान्त पान्थ ... १६४
१२७. प्रतीहार का मूलधन ... १६७
१२८. प्रतीहार पत्नी ... १७१
१२९. गणदूत ... १७५
१३०. जयराज का दौत्य ... १७७
१३१. गुह्य निवेदन ... १८२
१३२. पलायन ... १८४
१३३. घातक द्वन्द्व-युद्ध ... १८६
१३४. चण्ड भद्रिक ... १९४
१३५. दूसरी मोहन-मन्त्रण । ... २००
१३६. युद्धि विभीषिका ... २०९
१३७. मागध स्कन्धावार निवश ... २११
१३८. प्रयाण ... २१३

१३९. शुभ दृष्टि ... २१५
१४०. मागध मन्त्रणा ... २२०
१४१. प्रकाश-युद्ध ... २२३
१४२. लघु विमर्श ... २३०
१४३. व्यस्त रात्रि ... २३२
१४४. अभिसार ... २३८
१४५. प्राणाकर्षण ... २४३
१४६. सांग्रामिक ... २४९
१४७. द्विशासन ... २५२
१४८. रथ-मुशल-संग्राम ... २५५
१४९. कैकर्य ... २५८
१५०. महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र ... २६०
२५१. छत्र-भंग ... २६३
१५२. आत्म समर्पण ... २७१
१५३. दृगस्पर्श ... २७६
१५४. विराम संधि ... २७८
१५५. अश्रु सम्पदा ... २८५
१५६. पिता और पुत्र ... २८९
उपसंहार ... २९३
भूमि ... ३०९

९१

सुप्रभात

दीपस्तम्भ पर धरे सुवासित दीपों की लौ मध्यम पड़ गई, गवाक्षों से ऊषा की पीत प्रभा कक्ष मे झाकने लगी। अलिन्द से वीणा की एक झंकार के साथ एक कोमल कण्ठस्वर निपाद का वाद देकर आरोह अवरोह मे चढ उतर कर वातावरण को आन्दोलित कर गया।

अम्बपाली ने दुग्धफेन सम शैया पर अंगड़ाई ली, और अलस भाव से अपने मकड़ी के जाले के समान अस्त-व्यस्त परिधान को कुछ व्यवस्थित किया, उत्फुल्ल कमलदल के समान अपने नेत्रो को उसने खोल कर गवाक्ष की ओर देखा, वहाँ से सुरभित मलय गन्ध लिये वासन्ती वायु प्रभात की स्वर्णरेख के साथ कक्ष मे आ रहा था।

कमल की पंखड़ियों की भांति उसके होंठ हिले, उसने सस्मित स्वगत कहा—'मदलेखा गा रही है।'

उसने हाथ बढ़ाकर रजत-दण्ड से कांस्यघण्ट पर आघात किया, तत्क्षण एक आसन्न प्रस्फुटित कलिका-सी सुन्दरी ने अवनत-मस्तक हो मृदु मन्द मुस्कान के साथ अम्बपाली को अभिवादन करके कहा—"देवी प्रसन्न हों, आज मधुपर्व का सुप्रभात है।"

अम्बपाली ने हँसकर कण्ठ से मुक्तामाल उतार उस पर फेंकते हुए कहा—"तेरा कल्याण हो हला, जा शृंगार-गृह को सुव्यस्थित कर।"

सुन्दरी मुक्तामाल को कण्ठ में धारण करके हँसती हुई चली गई।

अम्बपाली अलस देह लिये चुपचाप शैया पर पड़ी एक गवाक्ष से कक्ष में आती हुई स्वर्ण-रश्मि को देखती रही। उसका मन बाहर अलिन्द

में झंकृत वीणा की मधुर ध्वनि के साथ मदलेखा के कोमल औढव आलाप में लग रहा था।

एक दासी ने आकर गवाक्षों की रंगीन चक्कलिकाएं उघाड़ दीं। दूसरी दासी गन्धद्रव्य जलाकर गन्धस्तम्भों पर रख गई। दो तीन दासियों ने विविध मधु-गन्ध वाले पुष्पों के उरच्छद-तोरण बाँध दिये। कक्ष सुवास और आलोक से सुरभित और उज्ज्वल हो उठा।

मधुलता ने आकर निवेदन किया—"शृंगार-गृह तैयार है, और नगर के मान्य सामन्त-पुत्र एवं सेट्ठिपुत्र देवी को मधुपर्व के प्रभात की बधाई देने उपस्थित हैं।"

अम्बपाली ने हँसकर अंगड़ाई ली। वह शैया त्याग कर उठी। सम्मुख वृहत् आरसी में अपने मदभरे नवयौवन को एक बार गर्वभरे नेत्रों से देखा, फिर कहा—"हला, मुझे शृंगार-गृह का मार्ग दिखा और आगत नागरिकों से कह कि मै उनकी उपकृत हूँ, तथा मैं अभी आती हूँ।"

मधुलता एकबार आदर के लिये झुकी और 'इधर से देवी' कह कर पुष्पभार से झुकी माधवीलता की भांति एक ओर को चल दी। पीछे २ उद्दाम यौवन का मद बखेरती हुई अम्बपाली भी।

———

९२

मधुपर्व

वीणा के तारो में औडव सम्पूर्ण के स्वर तैर रहे थे। सुनहरी धूप प्रासाद के मरकतमणि-जटित झरोखों और गवाक्षो से छन २ कर नेत्रों को आह्लादित कर रही थी। अम्बपाली के आवास के बाहरी प्रागण मे रथ, हाथी, अश्व और विविध वाहनो का ताता लगा था। सभ्रान्त नागरिक और सामन्त-पुत्र अपनी नई निराली सज-धज से अपने २ वाहनो पर देवी अम्बपाली की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रागण के भीतरी मार्ग मे अम्बपाली का स्वर्ण-कलश वाला श्वेत कौशेय का महाघोष रथ आचूड विविध पुष्पों से सजा खड़ा था. उसमे आठ सैन्धव अश्व जूते थे, जिनकी कनौतियाँ खडी, थुथनी लम्बी और नथुने विशाल थे। वे स्वर्ण और मणिमालाओं के आभरणों से लदे थे। रथ के चूड़ पर मीनध्वज फहरा रही थी, वातावरण मे जनरव भरा था। दण्डधर शुभ्र परिधान पहने दौड़ २ कर प्रबन्ध-व्यवस्था कर रहे थे।

हठात् गवाक्ष के कपाट खुले, और देवी अम्बपाली उसमे अपनी मोहक मुस्कान के साथ आ खड़ी हुई; नख से शिख तक उन्होने वासन्ती परिधान किया था, उनके मस्तक पर एक अतिभव्य किरीट था, जिसमें सूर्य की सी कान्ति का एक अलभ्य पुखराज धक्-धक् दिप रहा था। कानो में दिव्य नीलम के कुण्डल और कण्ठ में मरकत मणि का एक अलौकिक हार था। उनकी करधनी बड़े २ इक्कीस मणियों की बनी थी जिनमे प्रत्येक का भार ग्यारह टंक था। वे माणिक्य उसकी देह-यष्टि मे लिपटे हुए उस मधु दिवस के प्रभात की स्वर्ण धूप मे इक्कीस बाला-रुण की छटा विस्तार कर रहे थे—उनकी घन सुचिक्कण अलकें प्रभात की

मन्द समीर में क्रीडा कर रही थी। स्वर्णखचित कंचुकी सुगठित युगल यौवन दर्शको पर मादक प्रभाव डाल रहे थे।

करधनी के नीचे हल्के आसमानी रंग का दुकूल उनके पीन नितंबों की शोभा विस्तार कर रहा था। जिसके नीचे के भाग से उनके संगमर्मर के से सुडौल चरण-युगल खालिस नीलम की पैजनियों से आवेष्टित बरबस दर्शकों की गति मति को हरण कर रहे थे।

इस अलौकिक वेशभूषा मे उस दिव्य सुन्दरी अम्बपाली को देख कर प्रागण मे से मैकडो कण्ठो से आनन्द-ध्वनि विस्तारित हो गई। लोगो की सम्पूर्ण जीवनी शक्ति उनकी दृष्टि मे ही केन्द्रित हो गई। फिर, ज्यों ही अम्बपाली ने अपने दोनो हाथो की अंजलि में फलो को लेकर सामन्त नागरिको की ओर मृदु मन्द मुस्कान के साथ फेका, त्यों ही 'देवी अम्बपाली की जय', 'मधुपर्व की रानी की जय', 'जनपद कल्याणी नगरवधू की जय' से दिशाये गूँज उठी।

दुन्दुभी पर चोटे पड़ने लगी। वीणा में अब सम्पूर्ण अवरोह स्वर वातावरण में बखेरे जा रहे थे, जिनमें दोनों मध्यम और कोमल निषाद विचित्र माधुर्य उत्पन्न कर रहे थे।

नायक दण्डधर लल्लभट्ट ने अपनी विशालकाय देह-भार को स्वर्ण-दण्ड के सहारे सीढ़ियो पर चढ़ा कर अर्ध-निमीलित नेत्रों से देवी अम्बपाली के सम्मुख अभिवादन करके निवेदन किया—"देवी की जय हो, रथ प्रस्तुत है—एवं सभी नागरिक शोभा-यात्रा को उतावले हो रहे है, एक दण्ड दिन भी चढ़ गया है।"

अम्बपाली ने कानो तक ओठों को मुस्करा कर एक बार प्रागण में बिखरे वैशाली के महाप्राणों को देखा और फिर सप्त-भूमि प्रासाद की गगनचुम्बी अट्टालिका की ओर। फिर उनकी आँखें सम्मुख विस्तृत नील पद्मसरोवर की अमल जलराशि पर फैल गई। उन्होंने गर्व

से अपनी हंस की सी गर्दन उठा कर कहा—"लल्ल, मुझे रथ का मार्ग दिखा।"

"इधर से देवी" लल्ल ने अति विनयावनत होकर कहा । और अम्बपाली लाल कुत्तक के जूतों से सुसज्जित अपने हिमतुषार धवल मृदुल पदपद्मो मे स्फटिक की उन स्वच्छ सीढियो को शत सहस्र गुण प्रतिबिम्बित करती हुई, स्वर्ग से उतरती हुई सजीव सूर्य रश्मि-सी प्रतीत हुई।

युवकों ने अनायास ही उसे घेर लिया, उनके हाथो मे माधवी और यूथिका की मंजरी और उरच्छद थी । वे उन्होने देवी अम्बपाली पर फेंकनी आरम्भ कीं। उनमें से कुछ अम्बपाली के अलभ्य गात्र को छूकर उसके चरणों में गिर गई, कुछ बीच ही में गिर कर अनगिनत भीड़ के पैरो में कुचल गई।

ज्यों ही अम्बपाली अपने पुष्प-सज्जित रथ पर सवार हुई, वेग से मृदंग, मीरज और दुन्दुभी बज उठे। दो तरुणियाँ उनके चरणो में अंगराग लिये आ बैठीं। दो उनके पीछे मोरछल ले खडी हो गईं। कुछ काम्बोजी अश्वों पर सवार हो रथ के आगे पीछे चलने लगीं । युवक सामन्तपुत्रों एवं सेट्ठिपुत्रों ने रथ को घेर लिया। बहुतों ने अपने अपने वाहन त्याग दिये और रथ का धुरा पकड कर साथ २ चलने लगे। बहुतों ने घोडों की रश्मियाँ थाम ली । बहुत अपने २ वाहन पर चढे अपने भाले और शस्त्र चमकाते आगे पीछे दौड धूप करने लगे।

सडकें कोलाहल से परिपूर्ण थीं। मार्ग के दोनों ओर के गवाक्षों में कुलवधुएँ बैठी हुई जनपद-कल्याणी अम्बपाली की मधुयात्रा निरख रही थीं। पौरजनों ने मार्ग में अपने २ घर और पण्य सजाये थे । सेट्ठियों और निगम की ओर से स्थान २ पर तोरण बनाये गये थे । जो बहुमूल्य कौशेय वस्त्रों एवं विविध रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित हो रहे थे ।

उन पर वन्दनवार मधुघट और पताकाओ की अजब छटा थी। प्रत्येक की सजधज निराली थी।

अम्बपाली पर चारो ओर से फूलो की वर्षा हो रही थी। वह फूलों में ढकी जा रही थी। अट्टालिकाओ और चित्रशालाओं से सेटिठ लोग फूलो के गुच्छ उनपर फेक रहे थे और वह हंस २ कर उन्हे हाथ मे उटा हृदय से लगा नागरिकों के प्रति अपने प्रेम का परिचय दे रही थी। लोग हर्ष से उन्मत्त होकर जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली की जय-जय-कार घोषित कर रहे थे।

सेना-नायक सबसे आगे एक पंचकल्याणी अश्व पर सवार स्वर्ण-तार के वस्त्र पहने चादी का तूर्य बजा २ कर बारम्बार पुकारता जाता था—

"नागरिको, एक ओर हो जाओ, मधुपर्व की रानी जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली की सवारी आ रही है। देवी मधुवन को जा रही है, उन्हे असुविधा न हो, सावधान।" घोषणा करके ज्यो ही वह आगे बढता, मार्ग नरमुण्डो से भर जाता। कोलाहल के मारे कान नही दिया जाता था।

सूर्य तपने लगा। मध्यान्ह हो गया। तब सब कोई मधुवन मे पहुंचे। एक विशाल सघन आम्रकुज मे अम्बपाली का डेरा पड़ा। उनका मृदु गात्र इतनी देर की यात्रा मे थक गया था। ललाट पर स्वेद-बन्दु हीरे की कनी के समान चमक रहे थे।

आम्रकुज के मध्य में एक सघन वृक्ष के नीचे दुग्ध-फेन-सम श्वेत कोमल गद्दी के ऊपर रत्न-जटित डंडो पर स्वर्णिम वितान तना था। अम्बपाली वहाँ आसक्तिकोपाधान पर अलस भाव से उठँग गई। उन्होंने अर्धनिमीलित नेत्रो से मदलेखा की ओर देखते हुए कहा—"हला, एक पात्र माध्वीक दे।"

मदलेखा ने स्वर्ण के सुराभाण्ड से लाल लाल सुवासित मदिरा पन्ने के हरे २ पात्र में उड़ेल कर दी। उसे एक सांस में पी कर अम्बपाली उस कोमल तल्पशैया पर पौढ़ गई।

अपनी २ सुविधा के अनुसार सभी लोग अपने २ विश्राम की व्यवस्था कर रहे थे। वृक्षों की छाया में, कुजों की निगूढ़ ओट में, जहाँ जिसे रुचा, उसने अपना आसन जमाया। कोई सेट्ठिपुत्र कोमल उपाधान पर लेट कर अपने सुकुमार शरीर की थकान उतारने लगा, कोई बाँसुरी ले तान छेड़ बैठा, किसी ने गौडी, माध्वीक और दाक्षा रस का आस्वादन करना प्रारम्भ किया। किसी ने कोई एक मधुर तान ली। कोई बानर की भांति वृक्ष पर चढ बैठा। बहुत से साहसी सामन्त-पुत्र दर्प से अपने २ अश्वों पर सवार हो अपने २ भाले और धनुष ले मृगया को निकल पड़े और आखेट कर २ के मधुपर्व की रानी के सम्मुख ढेर करने लगे। देखते २ आखेट में मारे हुए पशुओं और पक्षियों का समूह पर्वत के समान अम्बपाली के सम्मुख आ लगा। साबर, हरिण, शश, शूकर, वराह, लाब, तित्तिर, ताम्रचूड़, माहिष और न जाने क्या २ जलचर, नभचर, थलचर जीव प्राण त्याग उस रात को मधुपर्व के रात्रिभोज में अग्नि पर पाक होने के लिये मधुपर्व की रानी अम्बपाली के सम्मुख ढेर के ढेर इकट्ठे होने लगे। कोमल उपाधानों का सहारा लिये अम्बपाली अपनी दासियों के साथ हँस २ कर इन उत्साही युवकों के आखेट की प्रशंसा कर रही थीं और उससे वे अपने को कृतार्थ मान कर और भी द्विगुण उत्साह से आखेट पर अपने अश्व दौड़ा रहे थे।

९३

आखेट

दिन का जब तीसरा दण्ड व्यतीत हुआ और सूर्य की तीखी लाल किरणें तिरछी होकर पीली पड़ीं और सामन्त युवक जब मैरेय छक कर पी चुके, तब अम्बपाली से आखेट का प्रस्ताव किया गया। अम्बपाली प्रस्तुत हुई। यह भी निश्चित हुआ कि अम्बपाली पुरुष-वेश धारण कर अश्व पर सवार हो, गहन वन में प्रवेश करेंगी। अम्बपाली ने हँसते २ पुरुष-वेश धारण किया। सिर पर कौशेय धवल उष्णीक जिस पर हीरे का किरीट, अंग पर कसा हुआ कंचुक, कमर में कामदार कमरबन्द। इस वेश में अम्बपाली एक सजीले किशोर की शोभा-खान बन गई। जब दासी ने आरसी में उसे उसका वह भव्य रूप दिखलाया तो वह हँसते २ गद्दे पर लोट-पोट हो गई। बहुत से सामन्त-पुत्र और सेट्ठिपुत्र उसे घेर कर खड़े २ उसका यह रूप निहारने लगे।

युवराज स्वर्णसेन ने अपने चपल अश्व को हठपूर्वक निवारण किया और अम्बपाली के निकट आकर अभिनय के ढँग पर कहा—

"क्या में श्रीमान से अनुरोध कर सकता हूँ कि वे मेरे साथ मृगया को चलकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ावें ?"

अम्बपाली ने मोहक स्मिति करके कहा—

"अवश्य, यदि प्रियदर्शी युवराज मेरा अश्व और धनुष मंगा देने का अनुग्रह करें।"

"सेवक अपना यह अश्व और धनुष श्रीमानों को समपर्ण करता है।" इतना कह कर युवराज अश्व से कूद पड़े और घुटने टेक कर देवी अम्बपाली के सम्मुख बैठ अपना धनुष उन्हें निवेदन करने लगे।

अम्बपाली ने बनावटी पौरुष का अभिनय करके आडम्बर सहित धनुष लेकर अपने कन्धे पर खोंस लिया और तीरों से भरा हुआ तूणीर कमर में बांध, वृद्ध दण्डधर के हाथ से बर्छा लेकर कहा—"मैं प्रस्तुत हूँ भन्ते।"

स्वर्णसेन युवराज ने एक लम्बा चौड़ा अभिवादन निवेदन किया और कहा—"धन्य वीरवर, धन्य आपका साहस, यह अश्व प्रस्तुत है।"

"परन्तु क्या भन्ते युवराज अश्वारूढ होने में मेरी सहायता नहीं करेंगे ?"

"क्यों नहीं भन्ते, यह तो मेरा परम सौभाग्य होगा। अश्वारूढ होने, संचालन करने और उतरने में मेरी विनम्र सेवाएं सदैव उपस्थित हैं।"

इतना कह कर उन्होंने आगे बढ कर अम्बपाली का कोमल हाथ पकड लिया।

अम्बपाली खिलखिला कर हंस पडी; स्वर्णसेन भी हंस पडे। स्वर्णसेन ने अनायास ही अम्बपाली को अश्व पर सवार करा दिया, और एक दूसरे अश्व पर स्वयं सवार हो, विजन गहन वन की ओर द्रुत गति से प्रस्थान किया। वृद्ध दण्डधर ने साथ चलने का उपक्रम किया तो अम्बपाली ने हँस कर उसे निवारण करते हुए कहा—"तुम यहीं मदलेखा के साथ रहो, लल्लभट्ट"। वे दोनों देखते ही देखते आँखो से ओझल हो गये। थोड़ी ही देर में गहन वन आ गया। स्वर्णसेन ने अश्व को धीमा करते हुए कहा—

"कैसा शान्त, स्निग्ध वातावरण है।"

"ऐसा ही यदि मनुष्य का हृदय होता।"

"तब तो विश्व के साहसिक जीवन की इति हो जाती।"

"यह क्यों ?"

"अशान्त हृदय ही साहस करता है देवी।"

"सच?" अम्बपाली ने मुस्करा कर कहा।

युवराज कुछ अप्रतिभ होकर क्षणभर चुप रहे। फिर बोले—"देवी, आपने कभी विचार किया है?"

"किस विषय पर प्रिय?"

"प्रेम की गम्भीर मीमाँसाओं पर, जहाँ मनुष्य अपना आपा खो देता है और जीवन फल पाता है?"

"नहीं, मुझे कभी इस भीषण विषय पर विचार करने का अवसर नहीं मिला।" देवी ने मुस्करा कर कहा।

"आप इसे भीषण कहती है?"

"जहाँ मनुष्य आपा खो देता है, और जीवन फल पाता है—वह भीषण नही तो क्या है?"

"देवी सम्भवतः उपहास कर रही हैं।"

"नहीं भद्र, मैं अत्यन्त गम्भीर हूँ।" अम्बपाली ने हठपूर्वक अपनी मुद्रा गम्भीर बना ली। स्वर्णसेन चुप रहे। दोनों अश्व धीरे २ पर्वत की उस गहन उपत्यका में ठोकरों से बचते हुए आगे गहनतम वन में बढ़ने लगे। दोनों ओर के पर्वत-शृंग ऊंचे होते जाते थे और वन का सन्नाटा बढ़ता जाता था। सघन वृक्ष की छाया में छन कर सूर्य की स्वर्ण-किरण दोनों अश्वारोहियों की मुखश्री की वृद्धि कर रही थीं

अम्बपाली ने कहा—

"क्या सोचने लगे युवराज?"

"क्या सत्य कह दूँ देवी?"

"यदि अप्रिय न हो"

"साहस नहीं होता"

"अरे, ऐसे वीर युवराज होकर साहस नहीं कर सकते? मैं समझती थी युवराज स्वर्णसेन परम साहसिक हैं।"

"आप उपहास कर सकती है देवी, पर मै आपको प्यार करता हूँ, प्राणों से भी बढ़ कर।"

"केवल प्राणों से ही?" अम्बपाली ने हंस की सी गर्दन ऊँची करके कहा।

"विश्व की सारी सम्पदाएँ भी प्राणों के मूल्य की नही देवी, क्या मेरा यह प्यार नगण्य है?"

"नगण्य क्यों होने लगा प्रिय?"

"तो आप इस नगण्य प्यार को स्वीकार करती हैं?"

"इसके लिये तो मै बाध्य हूँ भन्ते युवराज।" अम्बपाली ने वक्र मुस्कान करके कहा—

"वैशाली के प्रत्येक व्यक्ति को मुझे अपना प्यार अर्पण करने का अधिकार है, वैशाली के ही क्यों? जनपद के प्रत्येक व्यक्ति को।"

"परन्तु मेरा प्यार औरों जैसा नही है देवी।"

"तो उसमें कुछ विशेषता है?"

"वह पवित्र है, वह हृदय के गम्भीर प्रदेश की निधि है देवी अम्बपाली, जिस दिन मै समझूंगा कि आपने मेरे प्यार को स्वीकार किया उस दिन मैं अपने जीवन को धन्य मानूंगा।"

"वाह, इसमें द्विविधा की बात ही क्या है? तुम आज ही अपने जीवन को धन्य मानो युवराज, परन्तु देखो कोरे प्यार से काम न चलेगा प्रिय, प्यास से मेरा कण्ठ सूख रहा है, मुझे शीतल जल भी चाहिए।"

"वाह, तब तो हम उपयुक्त स्थान पर आ पहुँचे हैं, वह सामने पुष्करिणी है, घड़ी भर वहाँ विश्राम किया जाय, शीतल जल से प्यास बुझाई जाय और शीतल छाया में शरीर को ठण्डा किया जाय।"

"और पेट की आँतों के लिये?"

"उसकी भी व्यवस्था है, यह झोले में स्वादिष्ट मेवा और भुना हुआ शूल्य माँस है, जो अभी भी गर्म है, वास्तव में वह यवनी दासी

बड़ी ही चतुरा है, शूल्य बनाने में तो एक है।"

"कहीं तुम उसे प्यार तो नहीं करते युवराज ?"

"नहिं, नहिं, देवी, जो पुष्प देवता पर चढ़ाने योग्य है वह क्या यों ही · · · · · · · · ।"

"यही तो मैं सोचती हूँ, परन्तु यह पुष्करिणी-तट तो आ गया।"

युवराज तत्क्षण अश्व से कूद पड़े और हाथ का सहारा देकर उन्होंने अम्बपाली को अश्व से उतारा। एक बड़े वृक्ष की सघन छाया में गोनक बिछा दिया गया और अम्बपाली उस पर लेट गई। फिर उन्होंने कहा—"हाँ, अब देखूं तुम्हारी उस यवनी दासी का हस्त-कौशल।"

स्वर्णसेन ने पिटक से निकाल कर शूकर के भुने हुए माँस-खण्ड अम्बपाली के सामने रख दिए, अभी वे कुछ गर्म थे। अम्बपाली ने हँसते २ उन्हें खाते हुए कहा—"युवराज तुम्हारी उस यवनी दासी का कल्याण हो, तुम भी तनिक चख कर देखो, बहुत अच्छे बने है। मुझे सन्देह है कहीं इनमें प्रेम का पुट तो नही है ?"

युवराज ने हँस कर कहा—"क्या ईर्षा होती है देवी ?"

"क्या दासी के प्रेम से ? नहीं भाई, मैं इस भीषण प्रेम से घबराती हूँ। क्या मैं तुम्हे बधाई दूं युवराज ?"

"ओह देवी, आप बड़ी निष्ठुर हैं ?"

"परन्तु वह यवनी दासी कदाचित् नवनीत-कोमलांगी है ?"

"भला देवी की दासी से तुलना क्या ?"

"तुलना की एक ही कही युवराज, तुलना न होती तो यह अधम गणिका उसके प्रेम से ईर्षा कैसे कर सकती थी भला ?"

युवराज स्वर्णसेन अप्रतिभ हो गए। उन्होंने कहा—"मुझसे अपराध हो गया देवी मुझे क्षमा करो।"

"यह काम सोच विचार कर किया जायगा, अभी यह मधुर कुर कुर सूकर-मांस-खण्ड चख कर देखो।" उन्होंने हँसते २ एक टुकड़ा स्वर्ण-सेन के मुख में ठूँस दिया।

हठात् अम्बपाली का मुंह सफेद हो गया और स्वर्णसेन जड़ हो गए। इसी समय एक भयानक गर्जना से वन, पर्वत कम्पायमान हो गए। हरी २ घास चरते हुए अश्व उछलने और हिनहिनाने लगे, पक्षियों का कलरव तुरन्त बन्द हो गया।

परन्तु एक ही क्षण में स्वर्णसेन का साहस लौट आया। उन्होंने कहा—"शीघ्रता कीजिए देवी, सिंह कहीं पास ही है।" उन्होंने अश्वों को संकेत किया, अश्व कनौती काटते आ खड़े हुए। अश्व पर अम्बपाली को सवार करा स्वयं अश्व पर सवार हो, धनुष पर शर सन्धान कर वे 'सिंह किस दिशा में है' यही देखने लगे।

अम्बपाली अभी भी भयभीत थी, अश्व चंचल हो रहे थे। अम्बपाली ने स्वर्णसेन के निकट अश्व लाकर भीत मुद्रा से कहा—"सिंह क्या बहुत निकट है ?"

और तत्काल ही फिर एक विकट गर्जन हुआ। साथ ही सामने बीस हाथ के अन्तर पर झाड़ियों में एक मटियाली वस्तु हिलती हुई दीख पड़ी। अम्बपाली और स्वर्णसेन को सावधान होने का अवसर नहीं मिला। अकस्मात् ही एक भारी वस्तु अम्बपाली के अश्व पर आ पड़ी। अश्व अपने आरोही को ले लड़खड़ाता हुआ खड्ड में जा गिरा। इससे स्वर्णसेन का अश्व भड़ककर अपने आरोही को ले तीर की भांति भाग चला। स्वर्णसेन उसे वश में नहीं रख सके।

९४

रंग में भंग

युवराज स्वर्णसेन को लेकर उनका अश्व जो बिगड़ कर भागा तो युवराज के बहुत प्रयत्न करने पर भी बीच में रुका नहीं। स्वर्णसेन पर भी सिंह के आक्रमण का आतंक तो था ही, देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा आक्रान्त होने का भारी विषाद छा गया। सूर्यास्त के समय जब अत्यन्त अस्त-व्यस्त दशा में अकेले स्वर्णसेन मधुवन में पहुँचे तो वहाँ बड़ा कोलाहल हो रहा था। जगह-जगह लकड़ी के बड़े ढेर जल रहे थे और उनपर लोग शशक, वराह, महिष और तित्तिर भून रहे थे। ढेर के ढेर मैरेय, द्राक्षा, माध्वीक, पात्रों में भरी धरी जा रही थी और उसे पी पीकर सब लोग उन्मत्त हो रहे थे। माँस के भूनने की सोंधी सुगन्ध आ रही थी। कोई ताल सुर से और कोई ताल-सुर-भंग होकर भी निर्द्वन्द गा रहे थे।

स्वर्णसेन अपने अश्व पर लटक गए थे, अश्व पसीने से तर था और मुख से फेन उगल रहा था। ज्यों ही लोगों की दृष्टि उन पर पड़ी, वे स्तम्भित से आमोद-प्रमोद छोड़कर उनकी ओर दौड़े। देखते २ सामन्त-पुत्रों, सेट्ठिपुत्रों और राजकुमारों ने उन्हें घेर लिया, वे विविध भांति प्रश्न करने लगे।

देवी अम्बपाली को न देखकर प्रत्येक व्यक्ति विचलित हो रहा था। सहारा देकर सूर्यमल्ल ने युवराज को अश्व से उतारा, थोड़ी गौड़ीय एक पात्र में भरकर उनके मुख से लगाई, उसे एक ही साँस में पीकर युवराज ने वेदनापूर्ण स्वर में कहा—"मित्रो, अनर्थ हो गया, देवी अम्बपाली को सिंह आक्रान्त कर गया।"

वज्रपात की भांति यह समाचर सम्पूर्ण शिविर मे फैल गया। सभी आमोद-प्रमोद रुक गए और सर्वत्र सन्नाटा छा गया। धीरे-धीरे स्वर्ण-सेन ने सम्पूर्ण घटना कह सुनाई। वह कहने लगे—"ज्यों ही हिंस्र सिंह गर्जन करके देवी अम्बपाली के ऊपर झपटा—मैंने बाण-सन्धान किया, परन्तु शोक, सिंह के धक्के से विचलित होकर मेरा अश्व बेवश होकर भाग निकला—मैंने देवी अम्बपाली को सिंह के भारी देह के साथ अश्व से खडड में गिरते देखा है, हाय मित्रो अब मै जनपद मे मुह दिखाने योग्य नहीं रह गया।"

महाअटवी रक्खक सूर्यमल्ल ने तत्काल पुकार कर दीपशलाकायें जलाने और अपना अश्व लाने की आज्ञा दी। उन्होंने घटनास्थल पूछ पाछ कर बाणों से भरा तूणीर अपने कंधे पर डाल और नग्न खड्ग हाथ में लेकर गहन वन में प्रवेश किया। पचासों प्यादे मसालें ले लेकर उनके आगे पीछे चले। अनेक सामन्त-पुत्र अश्वों पर सवार हो हाथों में नग्न खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण लिये साथ हो लिये।

परन्तु सम्पूर्ण रात्रि अनुसन्धान करने पर भी वे देवी अम्बपाली का शरीर न पा सके। उन्होंने उनके अश्व का मृत शरीर देखा। सिंह ने अपनी थाप से उसकी दो पसलियाँ उखाड़ ली थीं, परन्तु देवी का पता न था। वन का कोना २ छान डाला गया। सिंह का शरीर भी वहाँ न था। सभी ने यही समझ लिया कि सिंह अम्बपाली के शरीर को किसी कन्दरा में उठा ले गया; और वह महामहिमामयी वैशाली की जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली को खा गया।

प्रभात के धूमिल प्रकाश में वे थकित, भग्न-हृदय, खिन्न योद्धा युवक नीचे मुंह लटकाये मधुवन में लौट आये। उन्हें देखते ही मधुवन की बासन्ती पवन लोगों के रुदन से भर गई। देवी अम्बपाली के बहु-मूल्य मीनध्वज रथ पर सुकुमारी मदलेखा औधा मुंह किये सिसक-सिसक

कर रो रही थी। सभी के मुख से एक ही बात निकल रही थी कि देवी अम्बपाली को सिंह ने खा लिया।

तत्काल ही जैसे जो था उसी स्थिति में मधुवन से चल दिया, और १ दण्ड सूर्य चढ़ते २ वैशाली की गली-गली में देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा खा लिये जाने की कथा फैल गई। श्रेष्ठिचत्वर के सभी हाट तुरन्त बन्द हो गई। संथागार का गणसन्निपात तुरन्त स्थगित कर दिया गया। समस्त वैशाली का गण देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा खा लिये जाने पर शोक संताप मग्न हो गया।

---

*

९५

साहसी चित्रकार

अम्बापाली ने आँखें खोलीं उनकी स्मृति काम नहीं दे रही थी। उन्होंने आँखें फाड़-फाड़ कर इधर उधर देखा। सामने उनका अश्व मरा पड़ा था। उनके निकट ही वह भीमाकार सिह भी। उसे देखते ही अम्बपाली के मुंह से चीख निकल पड़ी। इसी समय किसी ने हँसकर कहा—"डरो मत मित्र, सिंह मर चुका है।"

अम्बपाली ने देखा—एक छरहरे गात का लम्बा-सा युवक सामने एक शिलाखण्ड पर खड़ा मुस्करा रहा है। अम्बपाली से चार आँखें होते ही उसने कहा—

"सिंह मर चुका मित्र, क्या तुम्हें अधिक चोट आई है? मैं उठने में सहायता दूँ?"

अम्बपाली अपने पुरुषवेश को स्मरण कर संकट में पड़ी। उन्होंने घबराकर कहा—"नहीं, नहीं धन्यवाद, मुझे चोट नहीं आई है, मैं ठीक हूँ।" यह कह कर वह व्याकुलता से अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक करने लगी।

युवक ने तनिक निकट आकर हँसते हुए कहा—"वाह मित्र, तुम्हारा तो कण्ठ-स्वर भी स्त्रियों जैसा है, तुम कदाचित् कोई सेट्ठिपुत्र हो? किसी सामन्तपुत्र के संगदोष से मृगया को निकल पड़े?"

अम्बपाली ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

"ठीक है, और कदाचित् आखेट में आने का यह प्रथम ही अवसर है।"

"हाँ मित्र, पहिला" अम्बपाली ने झेंप मिटाने को मुस्कराकर कहा।

युवक एक बार खूब ठठा कर हँस पड़ा। उसने कहा—"और तुम्हें पहिले पहल सिंह के आखेट में आने के लिये तुम्हारे उसी मित्र ने सम्मति दी होगी जो तुम्हारे साथ था।"

"जी हाँ"

"परन्तु वे हैं कहाँ?"

"सम्भवतः वह सुरक्षित अपने डेरे में पहुंच गए होंगे। सिंह की गर्जना सुनकर उनका घोड़ा ऐसा भागा कि मैं समझता हूँ कि वह बिना अपने वासस्थल पर गए रुकेगा नहीं।"

इतना कहकर युवक फिर ही-ही करके हँसने लगा। उसने कहा—बड़ा कौतुक हुआ मित्र, मैं उस पुष्करिणी के उस छोर पर बैठा अस्तंगत सूर्य को एक मित्र बना रहा था। कोई आखेटक इधर आए हैं यह मैं तुम लोगों की बातचीत की तथा अश्वों की भनक सुनकर समझ गया था। हठात् सिंह गर्जन सुन मैंने इधर उधर देखा, तो तुम लोगों से दस हाथ दूरी पर सिंह को आक्रमण के लिये समुद्यत तथा तुम लोगों को असावधान देखकर मैं बरछा लिये इधर को लपका। सो अच्छा ही हुआ, ज्यों ही सिंह विकट गर्जन करके तुम्हारे अश्व पर उछला, मेरा बरछा उसकी पसलियों को चीर कर हृदय में जा अड़ा। तुम खड्ड में गिर पड़े। सिंह तुम्हारे अश्व को लेकर इधर गिरा। उधर तुम्हारे मित्र को लेकर उनका अश्व एकदम हवा हो गया। खेद है मित्र, तुम्हारा वह सुन्दर काम्बोजी अश्व मर गया।"

अम्बपाली अवाक् रहकर मृत अश्व को देखने लगी। फिर उसने कहा—"धन्यवाद मित्र, तुमने मेरी प्राण रक्षा कर ली। परन्तु अब मैं मधुवन तक कैसे पहुंचूं भला? सूर्य तो अस्त हो रहा है।"

"असम्भव है। एक मुहूर्त में अन्धकार घाटी में फैल जायगा। दुर्भाग्य से तुम्हारा अश्व मर गया है, और इस समय अश्व मिलना

सम्भव नही है, तथा मधुवन यहाँ से १० कोस पर है, जा नहीं सकते मित्र। पर चिन्ता न करो, आओ आज रात मेरी कुटिया मे विश्राम करो मेरे साथ।"

"तुम्हारे साथ? आज रात? असम्भव।" अम्बपाली ने सूखते कण्ठ से कहा और व्याकुल दृष्टि से युवक की ओर देखा।

युवक ने और निकट आकर कहा—"असम्भव क्यों मित्र, परन्तु निस्सन्देह तुम बडे सुकुमार हो, कुटिया तुम्हारे योग्य तो नहीं पर काम-चलाऊ कुछ आहार और शयन की व्यवस्था हो जायगी। यहाँ पर तो अकेले वन मे रात व्यतीत करना तुम्हारे जैसे सुकुमार किशोर के लिये उपयुक्त नही, निरापद नही है।"

अम्बपाली ने कुछ सोचकर कहा—"मित्र, तुम क्या यहीं कहीं निकट रहते हो?"

"कुछ दिन से, उस सामने की टेकरी पर; उस कुटिया को देख रहे हो न?"

"देख रहा हूँ, पर तुम इस विजन वन मे करते क्या हो?"

युवक ने हँसकर कहा—"चित्र बनाता हूँ। यहाँ का सूर्यास्त उन पर्वतों की उपत्यकाओ मे ऐसा मनोरम है कि मैं मोहित हो गया हूँ।"

"तो तुम चित्रकार हो मित्र?"

"देख नही रहे हो यह रंग की कूर्चि और यह चित्रपट।"

"हूँ, और यह बर्छा? यह अमोघ हस्तलाघव? यह अभय पौरुष? यह सब भी चित्रकला में कामआने की वस्तुएं हैं?"

युवक फिर हँस पड़ा। उसने कहा—"मित्र, केवल कण्ठ-स्वर ही नहीं, बात कहने का, प्रशंसा करने का ढंग भी तुम्हारा स्त्रैण है, कुपित मत होना। इस हिंस्र अगम वन में एकाकी बैठकर चित्र बनाना, बिना इन सब साधनों के तो बन सकता नही, परन्तु बातों ही बातों में सूर्य अस्त हो जायगा तो फिर तुम्हें कुटी तक पहुँचने में कठिनाई होगी। आओ

चलें मित्र, क्या मैं तुम्हें हाथ का सहारा दूँ? कहीं चोट तो नहीं आई है?

"नहीं, नहीं धन्यवाद। मैं चल सकने योग्य हूँ, तुम आगे २ चलो मित्र।"

और कुछ न कहकर अपनी रंग की तूलिका, कूंची और चित्रपट हाथ में ले, तथा बर्छा कन्धे पर डाल आड़ी टेढ़ी पार्वत्य पगडंडियों पर वह तरुण निर्भय लम्बी २ डग भरता चल खड़ा हुआ और उसके पीछे अछताती पछताती देवी अम्बपाली पुरुष-वेश के असह्य भार को ढोती हुई।

कुटी तक पहुँचते २ सूर्यास्त हो गया। अम्बपाली को इससे बड़ी ढारस हुई। उनकी कृत्रिम पुरुष-वेश की त्रुटियाँ उस धुमिल प्रकाश में प्रकट नहीं हुई परन्तु इस नितान्त एकान्त निर्जन वन में एकाकी अपरिचित युवक के साथ रात काटना एक ऐसी कठिन समस्या थी जिसने देवी अम्बपाली को बहुत चल विचलित कर दिया।

कुटी पर पहुँच कर युवक ने देवी को प्रांगण में एक शिला दिखा कर कहा—"इस शिला पर क्षण भर बैठो मित्र, मैं प्रकाश की व्यवस्था कर दूँ।"

इतना कहकर और बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा किए वह कुटी में घुस गया। पत्थर घिस कर उसने आग जलाई। फिर उसने बाहर आकर कहा—" उस मंजूषा में आवश्यक वस्त्र हैं, और उस घड़े में जल है, सामने के ताक पर कुछ सूखा हरिण का मांस और फल रखे हैं, अपनी आवश्यकतानुसार ले लो। संकोच न करना। मैं थोड़ा ईंधन लेकर अभी आता हूँ।"

इतना कहकर कुटी-द्वार से एक भारी कुल्हाड़ी उठा कन्धे पर रख कर लम्बे लम्बे डग भरता हुआ वह अन्धकार में विलीन हो गया।

९६

मंजुघोषा का प्रभाव

कुटिया में सामग्री बहुत संक्षिप्त थी। परन्तु कुटी मे घुसते ही जिस वस्तु पर अम्बपाली की दृष्टि पड़ी उसे देखते ही वह आश्चर्य-चकित हो गई। वह जड़वत् खड़ी उस वस्तु को देखती रह गई। वह वस्तु एक महार्घ वीणा थी जो चन्दन की एक चौकी पर रखी गई थी। वीणा का विस्तार तो अद्भुत था ही, उसका निर्माण भी असाधारण था। वह साधारण मनुष्य के कौशल से बनी प्रतीत नहीं होती थी। उस पर अति अलौकिक हाथीदाँत की पच्चीकारी का काम हो रहा था; और उसमें जो तुम्बे काम में लाये गए थे उनके विस्तार तथा सुडौलता का वर्णन ही नही हो सकता था। देवी अम्बपाली बड़ी देर तक उसी वीणा को आँखें फाड़ २ कर देखती रही, उसने उसे पहिचान लिया था। वह इस बात से बड़ी विस्मित थी कि इस असाधारण वीणा को लाया कौन? और इस कुटी के एकान्त स्थान में इस दिव्य वीणा को लेकर रहने तथाच अनायास ही दुर्दान्त सिह को मार गिराने की शक्ति वाला यह सरल वीर तरुण है कौन?

एक बार उसने फिर सम्पूर्ण कुटिया में दृष्टि फेंकी, दूसरी ओर पर्ण-भित्ति पर दो तीन बर्छे, एक विशाल धनुष और दो तूणीर बाणों से सम्पन्न टंगे थे, एक भारी खड्ग भी एक कोने मे लटक रहा था। कुटी के बीचो-बीच एक बड़ा-सा शिला-खण्ड था जिस पर एक सिह की समूची खाल पड़ी थी। उसपर एक आदमी भली भांति सो सकता था। एक कोने में एक काष्ट मंजूषा, दूसरे में मिट्टी की एक कुंभकारिका जल से भरी रखी थी। यही उस कुटी की सम्पदा थी। यह सब घूमती

दृष्टि से देख देवी अम्बपाली उसी अमोघ वीणा को ध्यानपूर्वक देखती ठगी-सी खड़ी रह गई। उसके मस्तिष्क मे कौशाम्बीपति उदयन का मिलन क्षण-चित्रित होने लगा।

युवक ने वेग से सिर का बोझ एक ओर कुटी के बाहर फेंक दिया। फिर वह भारी २ पैर रखता हुआ कुटी मे आया। पदध्वनि सुन अम्बपाली ने युवक की ओर देखा। युवक ने अकचकाकर कहा—

"अरे, अभी तक तुमने वस्त्र भी नही बदले? न थोड़ा आहार ही किया? वहाँ खड़े उस वीणा को क्यों ताक रहे हो मित्र।"

"किन्तु यह वीणा तुमने पाई कहाँ से?" अम्बपाली ने खोए-से स्वर में पूछा।

"तो तुम इसे पहचानते हो मित्र?"

"निश्चय यह कौशाम्बी के देव-गन्धर्व-पूजित महाराज उदयन की अमोघ वीणा मंजुघोषा है, जो गन्धर्वराज चित्रसेन ने महाराज को दी थी।"

"वही है पर तुम इसे पहचानते कैसे हो मित्र? इसका इतिहास तुम्हें कैसे विदित हुआ? यह तो अति गुप्त बात है?" तरुण ने कुछ आश्चर्य की मुद्रा में कहा।

"मैंने इसे बजाते हुए देखा है?"

"बजाते हुए देखा है? असम्भव।"

"देखा है मित्र।" अम्बपाली ने अति गम्भीर स्वर में कहा।

"कहाँ?"

"देवी अम्बपाली के आवास में?"

"देवी अम्बपाली के आवास में? किसने इसे बजाया था मित्र, तुम स्वप्न देख रहे हो।"

"कदाचित् स्वप्न ही हो, नहीं तो यह वीणा इस एकान्त कुटी मे? आश्चर्य, अति आश्चर्य।"

"परन्तु तुमने बजाते देखा था? किसने बजाया था मित्र?"

"पृथ्वी पर एक ही व्यक्ति तो इसे बजा सकया है।"
"महाराज उदयन ?"
"हाँ वही।"
"और वे देवी अम्बपाली के आवास में आए थे ?"
"गत वसंत में महाराज ने वीणा वजाई थी और देवी ने अवश किया था।"
"और तुमने वह नृत्य देखा था मित्र?"
"देवी अम्बपाली के नृत्य को देखने की सामर्थ्य किसको है? ो दासियाँ जो नृत्य करती हैं वही देव दानव और नर लोक के लिये है।"
"परन्तु मैंने देखा था, इस अमोघ वीणा के प्रभाव से अवश हो देवी त्य किया था।"
तरुण कुछ देर एकटक देवी अम्बपाली के मुंह की ओर देखता फिर बोला—
"तुम सत्य कहते हो मित्र, पर क्या देवी अम्बपाली से, तुम्हारा य है ?"
"यथेष्ट है।"
'यथेष्ट ? तब क्या तुम मुझे उपकृत करोगे ?
'आज के उपकार के बदले में ?" अम्बपाली ने हँसकर कहा।
'नहीं २ मित्र, परन्तु मेरी एक अभिलाषा है।"
'क्या उसे मैं जान सकता हूँ।"
'गोपनीय क्या है मित्र, मैं चाहता हूँ एक बार देवी अम्बपाली म्मुख वही नृत्य करे।"
'तुम्हारे सम्मुख? तुम्हारा साहस तो प्रशंसनीय है मित्र"
ाली वेग से हँस पड़ी ।
रुण ने क्रुद्ध होकर कहा—"इतना क्यों हँसते हो मित्र ?"

परन्तु अम्बपाली हँसती ही रहीं, फिर उन्होंने हँसते हँसते कहा "खूब कहा तुमने मित्र, देवी अम्बपाली तुम्हारे सम्मुख नृत्य करेंगी, क्या तुम जानते हो, देवी के नृत्य देखने के लिये देव गन्धर्व भी समर्थ नहीं हैं।"

तरुण खीज उठा, उसने कहा—"जितना तुम हँस सकते हो हँसो मित्र, पर मैं कहे देता हूँ, देवी अम्बपाली को मेरे सम्मुख नृत्य करना पड़ेगा।"

"और तुम कदाचित् तब यह वीणा उसी प्रकार बजावोगे जैसे महाराज उदयन ने बजाई थी।" अम्बपाली ने प्रच्छिन्न व्यंग करते हुए कहा।

"निश्चय।" तरुण के नेत्रों से एक ज्योति निकलने लगी।

तरुण के इस संक्षिप्त उत्तर से अम्बपाली विजड़ित हो गई। उन्हें महाराज उदयन की वह अद्भुत भेंट याद आ गई। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—

"क्या कहा?" तुम इस वीणा को बजाओगे?'

"निश्चय।" तरुण ने कुछ कठोर स्वर में कहा।

"क्या तुम इसे तीन ग्रामों मे एक ही साथ बजा सकते हो मित्र?"

"निश्चय।" तरुण उत्तेजना के मारे खड़ा हो गया।

अम्बपाली ने कहा—"किसने तुम्हें यह सामर्थ्य दी, सुनूँ तो।"

"स्वयं कौशाम्बीपति महाराज उदयन ने। पृथ्वी पर दो ही व्यक्ति यह वीणा बजा सकते हैं।"

"एक महाराज उदयन।" अम्बपाली ने तीखे स्वर में कहा—

"और दूसरे?''

"दूसरा मैं?" तरुण ने दर्प से कहा।

अम्बपाली क्षण भर जड़ रह कर बोली—

"अस्तु, परन्तु तुम मुझसे क्या सहायता चाहते हो मित्र ?"

"अति साधारण, तुम देवी तक मेरा यह अनुरोध पहुँचा दो कि वे यहाँ मेरी कुटी में आकर एक बार मेरे सम्मुख वही नृत्य करें जो उन्होंने अमोघ गान्धर्वी मंजुघोषा वीणा पर महाराज उदयन के सम्मुख किया था।"

"इस कुटी में आकर? तुम पागल तो नहीं हो गए मित्र, तुम मेरे प्राणत्राता अवश्य हो, पर मैं तुम्हारा अनुरोध नहीं ले जा सकता। देवी अम्बपाली तुम्हारी कुटी में आवेंगी भला ?"

"और उपाय नहीं है मित्र, देवी के उस कुत्सित सर्वजन-सुलभ आवास मे तो मैं नहीं जाऊँगा।"

अम्बपाली के हृदय के एक कोने में आघात हुआ, परन्तु उन्होंने उस अद्‌भुत तरुण से कुटिल हास्य भौहों में छिपाकर कहा—

"तुम्हारा यह कार्य मैं कर दूँगा तो मुझे क्या मिलेगा ?"

"जो माँगो मित्र, इस वीणा को छोड़कर।"

"वीणा नही, केवल वह नृत्य मुझे देख लेने देना ?"

"यह न हो सकेगा, मानव चक्षुष उसे देख नहीं सकेंगे। महाराज का यही आदेश है।"

"तब मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।"

तरुण ने खीजकर कहा—

"जाने दो मित्र, मैं अपना कोई दूसरा मार्ग ढूंढ़ लूंगा, किन्तु अरे, अभी मुझे भोजन की व्यवस्था भी करनी है, तुम वस्त्र बदलो मित्र, मैं घड़ी भर में आता हूँ।"

तरुण ने बर्छा उठाया और बाहर तेजी से चला गया।

अम्बपाली ने बाधा देकर कहा—

"इस अन्धकार में अब वन में कहाँ भटकोगे मित्र"

"वह कुछ नहीं, यह मेरा नित्य व्यापार है। वहाँ उस कन्दरा में मेरा आखेट है, मैं अभी लाता हूँ।"

तरुण वैसे ही लम्बे २ डग भरता अन्धकार में खो गया, अम्बपाली उसे ताकती रह गई।

९७

एकान्त वन में

उस एकान्त वन के गर्भ मे स्थापित इस निर्जन कुटी में, दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में देवी अम्बपाली एकाकिनी उस कुटी के मध्य में स्थापित शिला-खण्ड पर बैठी कुछ देर एकटक उस दिव्य वीणा को देखती रही।

वह गत वर्ष की उस रहस्यपूर्ण भेंट को भूली नहीं थी, जब कौशाम्बी-पति उदयन रहस्यपूर्ण रीति से अम्बपाली के क्रीडोद्यान मे पहुँचे थे। उनका दिव्य रूप, गम्भीर मुखमुद्रा और अप्रतिम सौकुमार्य देख कर अम्बपाली चित्रलिखित-सी रह गई थी। और उनके इंगित पर इस वीणा के प्रभाव से अवश होकर उन्होने अपार्थिव नृत्य किया था। पहले वह नृत्य के लिये तैयार नही थी परन्तु जिस समय यह अमोघ वीणा तीन ग्रामो में उस नररत्न ने बजाई, तब उनके हस्त-लाघव तथा वीणा की मधुर झंकार से कुछ ही क्षणों में अम्बपाली आत्म-विभोर होकर नृत्य करने लगी थी। वीणा की गति के साथ ही अर्तकित रीति से उनका पद-निक्षेप भी द्रुत-द्रुततर-द्रुततम होता गया था, और अन्त में वह क्षण आया था जब अम्बपाली के रक्त की प्रत्येक विन्दु वीणा की उस झंकार के साथ उन्मत्त-असंयत हो गई थी। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे उनके अंग के ज्वालामुखी का अग्नि-समुद्र फूट पड़ा है, उससे वह तो विदग्ध नहीं हुई, किन्तु उन्हें ऐसा भास होने लगा था मानो वह अग्नि-समुद्र विश्व का विदग्ध कर रहा है। तब देवी अम्बपाली ने अपने कुसुम-कोमल गात्र को देवाविष्ट पाया था। वह मानो स्वयंभू विराट पुरुष की प्रतिमूर्ति बनी, प्रलय-काल की

महासमुद्र में उठी वाड़वाग्नि की ज्वालाओं के बीच प्रलय के ध्वंस से त्रास पाए नरलोक, द्युलोक और सात पाताल के परे परमानन्द, तृप्ति और इन्द्रियातीत आनन्द से भरी, केवल चरण के अंगुष्ट के एक नख मात्र पर वसुन्धरा का भार स्थिर कर स्वयं अस्थिर भाव से नाच रही है, और वह दिव्य गन्धर्व रूप प्रियदर्शी उदयन विद्युत-गति से उस महार्घ वीणा के तारों पर महामेघ-गर्जना के नाद से ब्रह्माण्ड को प्रकम्पित कर रहा है। कैसे वह नृत्य समाप्त हुआ था और कैसे महाराज उदयन उस दिव्य वीणा को लेकर अम्बपाली के उद्यान से सहसा अन्तर्धान हो गए थे, यह आज सब अम्बपाली के मानस-चक्षुओं में घूम गया। वह बड़ी देर तक भाव-मग्न सी जड़ बनी बैठी रही फिर चैतन्य होने पर उन्होंने अपने पुरुष-वस्त्रों के भीतर वक्षःस्थल मे धारित महाराज उदयन की प्रदत्ता, बड़े २ गुलाबी मोतियों की माला को मोह सहित स्पर्श किया। वह उस अद्भुत आश्चर्यजनक स्वप्न की-सी घटना को कभी स्वप्न में और कभी जाग्रत ही कितनी ही बार मानस-चक्षुओ से देख चुकी है। फिर भी वह अब भी उसकी स्मृति से मोह मे पड़ जाती है। वह इतना ही समझती है कि आगन्तुक पुरुष गन्धर्व-अवतार कौशाम्बीपति महाराज उदयन दिव्य पुरुष हैं।

आज इतने दिन बाद उसी असाधारण वीणा को यहाँ एकान्त कुटी में देख और यह जान कर कि यह एकान्त-वासी युवक, जो भावुक, चित्रकार, सरल, अतिथि-सेवी और दुर्धर्ष योद्धा, तथा कठिन कर्मठ होने के अपने प्रमाण कुछ ही क्षणों में दे चुका है, वास्तव में इस महामहिमा-मयी दिव्य वीणा को भी बजा सकता है और कदाचित् उसी कौशल से, जैसे उस दिन महाराज उदयन ने बजाई थी, इसी से वह मेरा नृत्य भी कराना चाहता है, परन्तु उसकी स्पर्धा तो देखनी चाहिये कि वह मेरे आवास में जाने में अपना मान-भंग मानता है, जहाँ स्वयं प्रियदर्शी महाराज उदयन ने प्रार्थी होकर नृत्य-याचना की थी।

कौन है यह लौह पुरुष? कौन है यह साधारण और असाधारण

का मिश्रण, कौन है यह अति सुन्दर, अति भव्य, अति मधुर, अति कठोर? यह पौरुष की अक्षुण्ण मूर्ति, जीवन, प्रगति और विकास का महापुञ्ज? कैसे वह उसकी अन्तरात्मा में बलात् प्रविष्ट होता जा रहा है?

अम्बपाली की दृष्टि उसी वीणा पर थी, उन्हें हठात् उस वीणा के मध्य से एक मुख प्रकट होता-सा प्रतीत हुआ, यह उसी युवक का मुख था। कैसा प्रफुल्ल गौर कैसा प्रिय, अम्बपाली ने कुछ ऐसी अनुभूति की, जो अब तक उन्हें नहीं हुई थी। अपने हृदय की धड़कन वह स्वयं सुनने लगीं। उनका रक्त जैसे तप्त सीसे की भांति खौलने और नसों में घूमने लगा। उनके नेत्रों के सम्मुख शत-सहस्र-लक्ष-कोटि रूपों में वही मुख पृथ्वी, आकाश और वायु-मण्डल में व्याप्त हो गया। उस मुख से वज्र-ध्वनि में सहस्र २ बार ध्वनित होने लगा—"नाचो अम्बपाली, नाचो, वही नृत्य, वही नृत्य।"

और अम्बपाली को अनुभव हुआ कि कोई दुर्धर्ष विद्युत-धारा उनके कोमल गात में प्रविष्ट हो गई है। वह असंयत होकर उठी। कब उनके कमनीय कुन्तलों से कृत्रिम पुरुषपने का आवरण वाला उष्णीष धरती पर गिर गया, कब वह उनका कृत्रिम पुरुष-वेश लोप हो गया, उन्हें भान नहीं रहा। उन्हे प्रतीत हुआ मानो वही प्रिय युवक उस चौकी पर बैठकर वैसे ही कौशल से वीणा पर तीन ग्रामों में अपना हस्तलाघव प्रकट कर रहा है, उसकी झंकार स्पष्ट उनके कानों में विद्युत-प्रवाह के साथ प्रविष्ट होने लगी और असंयत, असावधान अवस्था में उनके चरण थिरकने लगे। आप ही आप उनकी गति बढ़ने लगी और वह आत्म-विस्मृत होकर वही अपार्थिव नृत्य करने लगीं।

९८

अपार्थिव नृत्य

युवक ने समूचा भुना हुआ हरिण कंधे पर लाद कर ज्यों ही कुटी मे प्रवेश किया, वह वहाँ का दृश्य देखकर आश्चर्य-चकित जड़वत् रह गया, उसने देखा—पारिजात-कुसुम-गुच्छ की भांति शोभाधारिणी एक अनिद्य सुन्दरी दिव्याँगना कुटी में आत्म-विभोर होकर असाधारण नृत्य कर रही है ।

उसके सुचिक्कण, घने पादचुम्बी केश-कुन्तल मृदु पवन में मोहक रूप में फैल रहे है । स्वर्ण-मृणाल-सी कोमल भुज-लतायें सर्पिणी की भांति वायु में लहरा रही है। कोमल कदली-स्तम्भ-सी जंघाऐ व्यवस्थित रूप में गतिमान होकर पीन नितम्बो पर आघात-सा कर कटि-प्रदेश को ऐसी हिलोर दे रही हैं जैसे समुद्र में ज्वार आया हो । कुन्दकली-सा धवल गात, चन्द्रकिरण-सी उज्जवल छवि और मुक्त नक्षत्र-सा दीप्तिमान् मुख-मण्डल सब कुछ अलौकिक था। क्षण भर मे ही युवक विवश हो गया। उसने आखेट एक ओर फेंक कर वीणा की ओर पद बढ़ाया। अम्बपाली के पादक्षेप के साथ वीणा आप ही ध्वनित हो रही थी। यवक ने वीणा उठा ली, उस पर उंगली का आघात किया नृत्य मुखरित हो उठा।

अब तो जैसे ज्वालामुखी ने ज्वलित, द्रवित सत्व भूगर्भ से पृथ्वी पर उड़ेलने प्रारम्भ कर दिये हों, जैसे भूचाल आ गया हो । पृथ्वी डगमग करने लगी हो। वीणा की झंकृति पर क्षण भर के लिये देवी अम्बपाली सावधान होती और फिर भाव-समुद्र में डूब जाती ।

उसी प्रकार देवी सम पर ज्यों ही पदक्षेप करती और निमिषमात्र को युवक की अंगुली सम पर आकर तार पर विराम लेती, तो वह निमेष

भर को होश में आ जाता। धीरे २ दोनों ही बाह्य ज्ञानशून्य हो गए। सुदूर नील गगन में टिमटिमाते नक्षत्रों की साक्षी में, उस गहन वन के एकान्त कक्ष में ये दोनों ही कलाकार पृथ्वी पर दिव्य कला को मूर्तिमती करते रहे—करते ही रहे। उनके पार्थिव शरीर जैसे उनसे पृथक् हो गए। उनका पार्थिव ज्ञान लोप हो गया, जैसे वे दोनों कलाकार पृथ्वी का प्रलय हो जाने के बाद समुद्रों के भस्म हो जाने पर, सचराचर वसुन्धरा के शेष लीन हो जाने पर वायु की लहरों पर तैरते हुए ऊपर आकाश में उठते ही चले गए हों! और वहाँ पहुँच गए हों जहाँ भूः नहीं, भुवः नहीं, स्वः नही, पृथ्वी नही, आकाश नही, सृष्टि नही, सृष्टि का बन्धन नही; जन्म नही, मरण नही, एक नही, अनेक नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं।

९९

पीड़ानन्द

जब अम्बपाली की संज्ञा लौटी, तब कुछ देर तक तो वह यही न जान सकी कि वह कहाँ है, दिन निकल आया था—कुटी में प्रकाश-रेख के साथ प्रभात की सुनहरी धूप छनकर आ रही थी, सावधान होने पर अम्बपाली ने देखा कि वह भूमि पर अस्त-व्यस्त पड़ी है। वह उठ बैठी, कुटी में कोई न था। उसने पूर्व दिशा की एक खिड़की खोल दी। सुदूर पर्वतों की चोटियाँ धूप में चमक रही थी, वन पक्षियों के कलरव से मुखरित हो रहा था, धीरे २ उसे रात की सब बातें याद आने लगी। वीणा वैसी ही सावधानी से उसी चन्दन की चौकी पर रक्खी थी। तब क्या रात उसने स्वप्न देखा था? या सचमुच ही उसने नृत्य किया था। उसे स्मरण हो आया, एक गहरी स्मृति की संस्कृति उदय हो रही थी। वही युवक आत्मलीन होकर वीणा बजा रहा था। क्या सचमुच पृथ्वी पर महाराज उदयन को छोड़ दूसरा भी एक व्यक्ति वैसी ही वीणा बजा सकता है? तब कौन है वह युवक? क्या यह संसार-त्यागी, निरीह व्यक्ति कोई दैव शाप-ग्रस्त पुरुष है, अथवा कोई देव, गन्धर्व, यक्ष, असुर या कोई लोकोत्तर सत्व मानव रूप धर इस वन में विचरण कर रहा है।

देवी अम्बपाली अति व्यग्र होकर उसी युवक का चिन्तन करने लगी। क्या उसने सम्पूर्ण रात्रि अकेले ही उस कुटी में उसी के साथ व्यतीत की है? तो अब वह इस समय कहाँ है? कहाँ है वह?

अम्बपाली एक ही क्षण में उस कुटी में उस युवक के अभाव को इतना अधिक अनुभव करने लगी जैसे समस्त विश्व में ही कुछ अभाव रह गया हो। उसकी इच्छा हुई कि पुकारे—कहाँ हो, कहाँ हो तुम, अरे, ओ

अरे ओ कुसुम-कोमल, वज्र-कठिन, तुमने कैसे मुझे आक्रान्त कर लिया? देवी अम्बपाली विचारने लगी। आज तक कभी भी तो ऐसा नही हुआ था, किसी पुरुष को देखकर, स्मरण करके— जैसा आज हो रहा है। पुरुष-जाति-मात्र मेरी शत्रु है, मैं उससे बदला लूंगी, उसने मेरे सतीत्व का बलात् हरण किया है। जब से मैंने दुर्लभ सप्तभूमि प्रासाद में पदार्पण किया है, कितने सामन्त, सेट्ठिपुत्र, सम्राट् और राजपुत्र सम्पदा और सौन्दर्य लेकर मेरे चरणों में टकराकर खण्ड २ हो गए। क्या अम्बपाली ने कभी किसी को पुरुष समझा? वे सब निरीह प्राणी अम्बपाली की करुणा और विराग के ही पात्र बने। अचल हिमगिरि शृग की भांति अम्बपाली का सतीत्व अचल रहा, डिगा नही, हिला नही, विचलित हुआ नही, वह वैसा ही अस्पर्श्य अखण्ड बना रहा। यह सोचते सोचते अम्बपाली गर्व से तनकर खड़ी हो गई, फिर उसकी दृष्टि उस वीणा पर गई। वह सोचने लगी—किन्तु अब यह अकस्मात् ही क्या हो गया? वह अचल हिमगिरि-शृंग-सम गर्वीली अम्बपाली का अजेय सतीत्व आज विगलित होकर उस मानव के चरण पर लोट रहा है? उसने आर्तनाद करके कहा—"अरे मैं आक्रान्त हो गई, मैं असम्पूर्ण हो गई, निरीह नारी मैं कैसे इसदर्पमूर्ति पौरुष के बिना रह सकती हूँ? परन्तु वह मुझे आक्रान्त करके छिप कहाँ गया? उसने केवल मेरी आत्मा ही को आक्रान्त किया, शरीर को क्यों नहीं? यह शरीर जला जा रहा है, इसमें आबद्ध आत्मा छटपटा रहा है, इस शरीर के रक्त की एक २ बूंद प्यास, प्यास, प्यास चिल्ला रही है, इस शरीर की नारी अकेली रुदन कर रही है। अरे ओ, आओ ,तुम, इसे अकेली न छोड़ो; अरे ओ पौरुष, ओ निर्मम, कहाँ हो तुम; इसे आक्रान्त करो; इसे विजय करो; इसे अपने में लीन करो। अब एक क्षण भी नहीं रहा जाता। यह देह, यह अधम नारी-देह, नारीत्व की समस्त सम्पदा सहित इस निर्जन वन में अकेली, अरक्षित पड़ी है, इसे लूट लो, अपने अदम्य पौरुष से अपने में आत्म-सात् कर लो तुम ,जिससे यह अपना आपा खो दे; कुछ शेष न रहे।"

अम्बपाली ने दोनों हाथों से कसकर अपनी छाती दबा ली। उसकी आँखों से आग की ज्वाला निकलने लगी, लुहार की धौकनी की भाति उसका वक्षस्थल ऊपर नीचे उठने बैठने लगा। उसका समस्त शरीर पसीने की रुपहली विन्दुओं से भर गया। उसने चीत्कार करके कहा—"अरे ओ निर्मम, कहाँ चले गए तुम, आओ, गर्विणी अम्बपाली का समस्त दर्प मर चुका है, वह तुम्हारी भिखारिणी है, तुम्हारे पौरुष की भिखारिणी।" उसने उन्माद-ग्रस्त-सी होकर दोनों हाथ फैला दिये।

युवक ने कुटी-द्वार खोल कर प्रवेश किया, देखा कुटी के मध्य भाग में देवी अम्बपाली उन्मत्त भाव-सी खड़ी है, बाल बिखरे हैं, चेहरा हिम के समान श्वेत हो रहा है, अंग-प्रत्यंग काँप रहे हैं।

उसने आगे बढ़कर अम्बपाली को अपने आलिगन-पाश में बाँध लिया, और अपने जलते हुए ओठ उसके ओठों पर रख दिये, उसके उछलते हुए वक्ष को अपनी पसलियों में दबोच लिया, सुख के अतिरेक से अम्बपाली संज्ञाहीन हो गई, उसके उन्मत्त नेत्र मुद गए, अमल, धवल दन्तपंक्ति से अस्फुट सीत्कार निकलने लगा, मस्तक और नासिका पर स्वेद बिन्दु हीरे की भांति जड़ गए, युवक ने कुटी के मध्य भाग में स्थित शिला-खण्ड के सहारे अपनी गोद में अम्बपाली को लिटा कर उसके अनगिनत चुम्बन ले डाले। होठ पर, ललाट पर, नेत्रों पर, गण्डस्थल पर, भौहों पर, चिबुक पर। पर उसकी तृषा शान्त नही हुई। अग्निशिखा की भांति उसके प्रेमदग्ध होठ न जाने कब तक उस भाव-विभोर युवक की प्रेम-पिपासा को तृप्त करते रहे।

धीरे २ अम्बपाली ने नेत्र खोले। युवक ने सयत होकर उसका सिर शिलाखण्ड पर रख दिया, अम्बपाली सावधान होकर बैठ गई, दोनों ही लज्जा के सरोवर में डूब गए, और उनकी आँखों के भीगे हुए पलक जैसे

आनन्द-जल के भार को सहन न कर नीचे की ओर झुकते ही चले गए। युवक ही ने मौन भंग किया। उसने कहा--"देवी अम्बपाली, मुझे क्षमा करना मैं संयत न रह सका।"

अम्बपाली प्यासी आँखों से उसे देखती रही। इसके बाद सूखे होठों में हँसी भर कर उसने कहा--"अन्ततः तुमने मुझे जान लिया प्रिय।"

"कल जिस क्षण मैंने आपको नृत्य करते देखा था तभी जान गया था देवी।"

"वह नृत्य तुम्हें भाया?"

"नरलोक में न तो कोई वैसा नृत्य कर सकता है और न देख ही सकता है देवी।"

"और वह वीणा-वादन?"

"कुछ बन पडता है पर अभी अधिकारपूर्ण नही। मै तुम्हारे साथ बजा सकूंगा इसकी आशा न थी, पर तुम्हारे नृत्य ने ही सहायता दी।"

"ऐसा तो महाराज उदयन भी नही बजा सकते प्रिय" देवी ने मुस्करा कर कहा। युवक हँस दिया, कुछ देर तक दोनों चुप रहे। दोनों के हृदय आन्दोलित हो रहे थे। युवक को अम्बपाली का परिचय एवं नाम प्रगट हो गया था, पर अम्बपाली अभी तक उस पुरुष से नितान्त अनभिज्ञ थी, जिसने उनका दुर्जय हृदय जीत लिया था। किन्तु वह पूछने का साहस नही कर सकती थी। कुछ सोच विचार के बाद उन्होंने कहा--

"अब इसके बाद?"

"इसके बाद?" युवक ने यन्त्र-चालित-सा होकर कहा।

"मुझे अपने आवास में जाना होगा प्रिय, परन्तु मै तुम्हारा कुल गोत्र एवं नाम से भी परिचित नहीं अपना परिचय देकर बाधित करो।"

"मुझे तुम 'सुभद्र' के नाम से स्मरण रख सकती हो।"

"अभी ऐसा ही सही, तो प्रिय सुभद्र, अब मुझे जाना होगा।"

"अभी नहीं देवी अम्बपाली।"

अम्बपाली ने प्रश्नसूचक ढंग से युवक की ओर देखा।

युवक ने कहा--"तुम्हें फिर नृत्य करना होगा।"

"नृत्य?"

"हाँ, और उसमे कठिनाई यह होगी कि मै वीणा न बजा सकूँगा।

"परन्तु....."

"मै तुम्हारी नृत्य-छवि का चित्र खींचूँगा।"

"परन्तु अब नृत्य नही होगा।"

"निस्सन्देह इस बार नृत्य होगा तो प्रलय हो जायगी, परन्तु नृत्य का अभिनय होगा।"

"अभिनय?"

"हाँ, वह भी अनेक बार।"

"अनेक बार?"

"मुझे प्रत्येक भाव-विभाव को चित्र में अंकित करना होगा देवी!"

"और मेरा आवास में जाना?"

"तब तक स्थगित रहेगा।"

"किन्तु....."अम्बपाली चुप रही।

युवक ने कहा--किन्तु क्या देवी?"

"यहाँ क्यों? तुम आवास में आकर चित्र उतारो।"

"तुम्हारे आवास में! जो सार्वजनिक है? जो तुम्हें तुम्हारी शुल्क में दिया गया है? देवी अम्बपाली, मै लिच्छवि गणतन्त्र का विषय नहीं हूँ। मै इस धिक्कृत कानून को सहन नहीं कर सकता जिसके आधार पर तुम्हारी अप्रतिम प्रतिमा बलात् सार्वजनिक कर दी गई।"

"तो वह तुम्हारी दृष्टि में एक व्यक्ति की वासना की सामग्री होनी चाहिए थी ?"

"क्यों नहीं, और वह एक व्यक्ति तुम्हीं स्वयं, और कोई नही ।"

"यह तो बडी अद्‌भुत बात तुमने कही भद्र, किन्तु मैं अपनी ही वासना की सामग्री कैसे ?"

"सभी तो ऐसे हैं देवी, व्याकरण का जो उत्तम पुरुष है, वही पृथ्वी की सबसे बडी इकाई है, और वही अपनी वासना का भोक्ता है । उसकी वासना ही अपनी स्पर्धा के लिये, व्याकरण का मध्यम पुरुष नियत करती है ।"

अम्बपाली चुपचाप सुनती रही । युवक ने फिर कहा—"इसी से तो जब तुम्हारी वासना का भोग, तुम्हारा वह अलौकिक व्यक्तित्व बलात् सार्वजनिक कर दिया गया तब तुम कितनी क्षुब्ध हो गई थी।"

अम्बपाली इस असाधारण तर्क से अप्रतिभ हो गई, वह सोच रही थी: पृथ्वी पर एक ऐसा व्यक्ति अन्ततः है तो, जिसके तलुओं मे मेरे आवास पर आते छाले पडते हैं । जो मुझे सार्वजनिक-स्त्री के रूप में नही देख सकता । आह, मैं ऐसे पुरुष को हृदय देकर कृत-कृत्य हुई शरीर भी देती तो शरीर धन्य हो जाता । परन्तु इसे तो मैं बेच चुकी मुह-माँगे मूल्य पर, हाय रे वेश्या जीवन।"

युवक ने कहा—"क्या सोच रही हो देवी !"

"यही, कि जिसने प्राणों की रक्षा की उसका अनुरोध टाला कैसे जा सकता है ?"

सुभद्र ने मुस्करा कर रंग की प्यालियों को ठीक किया और कूची हाथ में लेकर चित्रपट को तैयार करने लगा । कुछ ही क्षणों में दोनों कलाकार अपनी २ कलाओं में डूब गए। चित्रकार जैसी २ भावभंगी का संकेत अम्बपाली को करता, अम्बपाली यन्त्र-चालिता के समान उसका

पालन करती जाती थी । देखते ही देखते चित्रपट पर दिव्य लोकोत्तर भंगिमा-युक्त नृत्य की छवि अंकित होती गई । दोपहर हो गया, दोनों कलाकार थक कर चूर २ हो गए। श्रमबिन्दु उनके चेहरो पर छा गए । हँसकर अम्बपाली ने कहा—

"अब नही, अब पेट में आँतें नृत्य कर रही है, उतारोगे तुम इनकी छवि प्रिय ।"

युवक सरल भाव से हँस पड़ा । उसने हाथ की कूची एक ओर डाल दी और अम्बपाली के पार्श्व में शिलाखण्ड पर आ बैठा । अम्बपाली के शरीर में सिहरन दौड़ गई ।

युवक ने कहा—"देवी अम्बपाली ! कभी हम इन दुर्लभ क्षणो के मल्य का भी अंकन करेंगे ?"

"उसके लिये तो जीवन के अगणित साँस है।"

"किन्तु तुम भी करोगे प्रिय ?"

"ओह, तुमने मेरी शक्ति देखी तो ?"

"देखी है । उस समय एक ही बार में अनायास ही सिह को मार डालने मे और इसके बाद उससे भी कम प्रयास से अधम अम्बपाली को आक्रान्त कर डालने में। अब और भी कुछ शक्ति प्रदर्शन करोगे ?'

"इन दुर्लभ क्षणों के मूल्य का अंकन करने में देवी अम्बपाली, आपकी अभी बखानी हुई मेरी सम्पूर्ण शक्ति भी समर्थ नही होगी ?"

वह हठात् मौन हो गया । अम्बपाली पीपल के पत्ते के समान काँपने लगी । युवक का शरीर उसके वस्त्रो से छू रहा था, मध्याह्न का सुखद पवन धीरे २ कुटिया मे तैर रहा था, उसी से आन्दोलित होकर अम्बपाली की दो एक अलकावलियाँ उसके पूर्ण चन्द्र के समान ललाट पर क्रीडा कर रही थी । युवक ने अम्बपाली का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर कहा—"देवी अम्बपाली, यदि मैं यह कहूँ कि मै तुम्हें प्यार करता हूँ तो यह वास्तव में बहुत कम है, मै जो कुछ भी वाणी से

कहुँ अथवा अंग परिचालन से प्रकट करूँ वह सभी कम है, बहुत ही कम। फिर भी मैं एक बात कहूँगा देवी, अब और फिर भी सदैव याद रखना कि मैं तुम्हारा उपासक हूँ, तुम्हारे अंग-प्रत्यंग का, रूप यौवन का, तुम्हारी गर्वीली दृष्टि का, संस्कृत आत्मा का। तुम सप्त-भूमि प्रासाद में विश्व की सम्पदाओं को चरणतल से रुँधते हुए सम्राटों और कोट्याधिपतियों के द्वारा मणिमुक्ता के ढेरों के बीच में बैठी हुई जब भी अपने इस अकिंचन उपासक का ध्यान करोगी—इसे अप्रतिम ही पाओगी।"

युवक जड़वत् अम्बपाली के चरणतल में खिसक कर गिर गया। अम्बपाली भी अर्ध-सुप्त-सी उसके ऊपर झुक गई। वह पीली पड़ गई थी, उसका हृदय धड़क रहा था। बड़ी देर बाद उसके वक्षस्थल पर अपना सिर रखे हुए अम्बपाली ने धीरे से कहा—"तुमने अच्छा नहीं किया भद्र, मेरा सर्वस्व हरण कर लिया, अब मैं जीऊँगी कैसे? यह तो कहो।" उन्होंने युवक के प्रशस्त वस्त्र मे अपना मुह छिपा लिया और सिसक २ कर बालिका की भांति रोने लगीं। फिर एकाएक उन्होंने सिर उठाकर कहा—

"मै नही जाननी तुम कौन हो, मनुष्य हो कि देव, गन्धर्व, किन्नर या कोई मायावी दैत्य हो, मुझे तुमने समाप्त कर दिया है भद्र। चलो विश्व के उस अतल तल पर जहाँ हम कल नृत्य करते २ पहुँच गए थे, वहाँ हम तुम एक दूसरे में अपने को खोकर अखण्ड इकाई की भांति रहें।"

"सो तो रहने ही लगे प्रियतमे, कल उस मुद्रावस्था में जहाँ पहुँच कर हम लोग एक हो गए हैं, वहाँ अखण्ड इकाई के रूप में हम याव-चन्द्र दिवाकर रहेंगे। अब यह हमारा तुम्हारा पार्थिव शरीर कहीं भी रहकर अपने भोग भोगे इससे क्या? और यदि हम इल्की वासना ही

के पीछे दौड़ें तो प्रिय, प्रियतमे, मैं अधम अपरिचित तो कुछ नहीं हूँ, पर तुम्हारा सारा ही वैयक्तिक महत्व नष्ट हो जायगा।"

वह धीरे से उठा, अपने वक्ष पर जड़वत् पड़ी अम्बपाली को कोमल सहारा देकर उसका मुख ऊँचा किया।

एक मृदु मधुर चुम्बन उसके अधरों पर और नेत्रों पर अंकित किया और कहा—"कातर मत हो प्रिये प्राणाधिके, तुम-सी बाला पृथ्वी पर कदाचित् ही कोई हुई होगी, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ--अपनी विजयिनी भावनाओं को विश्व की सम्पदा के चूड़पर्यन्त ले जाना, मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ रहेगी प्रिये!"

अम्बपाली के मुंह से शब्द नहीं निकला।

आहार करके सुभद्र ने कुछ समय के लिये कुटी से बाहर जाने का अनुमति लेकर कहा—

"मैं सूर्यास्त से प्रथम ही आ जाऊँगा प्रिये, तुम थोड़ा विश्राम कर लेना तब तक, यहाँ कोई भय नहीं है।"

और सूर्यास्त के समय संध्या के अस्तंगत लाल प्रकाश के नीचे गहरी श्यामच्छटा शोभा को निरखते हुए, वे दोनों असाधारण प्रेमी कुटी द्वार पर स्थित शिलाखण्ड पर बैठे अपनी २ आत्मा को विभोर कर रहे थे।

---

*

१००

अभिन्न हृदय

उसी शिलाखण्ड पर गहन-तिमिराच्छन्न नीलाकाश में हीरे की भांति चमकते हुए तारों की परछाई में दोनों प्रेमी हृदय एक दूसरे को आप्यायित कर रहे थे। युवक शिला का ढासना लगाए बैठा था, और अम्बपाली उसकी गोद में सिर रखकर लेटी हुई थी ।

अम्बपाली ने कहा—"प्रिय, क्या भोग ही प्रेम का पुरस्कार नहीं है ?"

"नहीं प्रिये, भोग तो वासना का यत्किचित् प्रतिकार है।"

"और वासना ? क्या वासना प्रेम का पुष्प नही ?"

"नही प्रिये, वासना क्षुद्र इन्द्रियों का नगण्य विकार है।"

"परन्तु प्रिय, इस वासना और भोग ने तो विश्व की सम्पदाओं को भी जीत लिया है।"

"विश्व की सम्पदायें भी तो प्रिये, भोग का ही भोग हैं।"

"जब विश्व की सम्पदायें भोग और वासनाओ को अर्पण कर दी गई तब प्रेम के लिए क्या रह गया ?"

"आनन्द ।"

"कौन-सा आनन्द प्रिय ।"

"जो इन्द्रिय के भोगों से पृथक् और मन की वासना से दूर है। जिसमें आकांक्षा भी नहीं, उसकी पूर्ति का प्रयास भी नही और पूर्ति होने पर विरक्ति भी नहीं, जैसी की भोगों में और वासना में है।"

"परन्तु प्रिय, शरीर में तो वासना ही वासना है, और भोग ही उसे सार्थक करते हैं।"

"इसी से तो प्रेम के शैशव ही में शरीर भोगों में व्यय हो

जाता है, प्रेम का स्वाद उसे मिल कहाँ पाता है ? प्रेम को विकसित होने को समय ही कहाँ मिलता है ।"

"तब तो....."

"हाँ, हाँ प्रिये, यह मानव का परम दुर्भाग्य है, क्योंकि प्रेम तो विश्व प्राणियों में उसे ही प्राप्त है, भोग और वासना तो पशु-पक्षियों में भी है, पर मनुष्य पशु-भाव से तनिक भी तो आगे नहीं बढ़ पाता है ।"

"तब तो प्रिय, यौवन और सौन्दर्य कुछ रहे ही नहीं।"

"क्यों नहीं, मनुष्य का हृदय तो कला का उद्गम है । यौवन और सौन्दर्य ये दो ही तो कला के मूलाधार हैं। विश्व की सारी ही कलायें इसी में से उद्भासित हुई है प्रिये, इसी से यदि कोई यथार्थ पौरुष-वान् पुरुष हो, और यौवन और सौन्दर्य को वासना और भोगों की लपटों में झुलसने से बचा सके तो उसे प्रेम का रस चखने को मिल सकता है प्रिये, देवी अम्बपाली, वह रस अमोघ है। वह आनन्द का स्रोत है, वह वर्णनातीत है। उसमें आकांक्षा नहीं, वैसे ही तृप्ति भी नहीं, इसी प्रकार विरक्ति भी नहीं । वह तो जैसे जीवन है, अनन्त प्रवाहयुक्त शाश्वत जीवन, अतिमधुर, अतिरम्य, अतिमनोरम । जो कोई उसे पा लेता है उसका जीवन धन्य हो जाता है ।"

अम्बपाली ने दोनों मृणाल-भुज युवक के कण्ठ में डाल कर कहा—

"प्रियतम, मैंने उसे पा लिया ।"

"तो तुम निहाल हो गई प्रिये, प्राणाधिके !"

"मैं निहाल हो गई, निहाल हो गई, अपना सुख, अपना आनन्द मैं कैसे तुम्हें बताऊँ।" उसने आनन्द-विह्वल होकर कहा ।

"आवश्यकता नहीं प्रिये, प्रेम की अथाह धारा में प्रेम की मन्दाकिनी मिल गई है, तुम्हारे अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति मैं अपने रक्त-प्रवाह में कर रहा हूँ ।"

युवक ने धीरे से नीचे झुक कर अम्बपाली के प्रफुल्ल होठों का चुम्बन लिया। अम्बपाली ने भी चुम्बन का प्रत्युत्तर देकर युवक के वक्ष-स्थल में अपना मुह छिपा लिया।

कुछ देर बाद युवक ने कहा—

"मौन कैसे हो गई प्रिये!"

"कुछ कहने को तो रहा ही नहीं अब।"

"सब कुछ जान गई?"

"सब कुछ।"

"सब कुछ समझ गई?"

"सब कुछ।"

"तुम धन्य हुई प्रिये, तुम अमर हो गई।"

युवक ने धीरे से अम्बपाली को अपने बाहुपाश से मुक्त करके कहा—

"तो अब बिदा प्रिये, कल के सुप्रभात तक।"

अम्बपाली का मुख सूख गया। उसने कहा—

"तुम कहाँ सोओगे?"

"सामने अनेक गुफाएं हैं किसी एक में।"

"किन्तु....."

"किन्तु नहीं प्रिये।" युवक ने हँसकर एक बार अम्बपाली के होठों पर और एक चुम्बन अंकित किया और भारी बर्छा कंधे पर रख कंधे का वस्त्र ठीक कर अन्धकार में विलीन हो गया।

अम्बपाली, देवी अम्बपाली उस भूमि पर—जहां अभी २ युवक के चरण पड़े थे अपना वक्ष रगड़ रगड़ कर आनन्द-विह्वल हो आँसुओं की गंगा बहाने लगी।

१०१

विदा

सात दिन के अनवरत प्रयत्न से चित्र बनकर तैयार हो गया। इसके लिये अम्बपाली को प्रत्येक भाव-विभाव के लिये अनेक बार नृत्य करना पड़ा। जो चित्र सम्पूर्ण हुआ वह साधारण चित्र न था, वह मूर्तिमान कला थी। देवी अम्बपाली की अलौकिक शरीर-छटा और कला का विस्तार ही उस चित्र में न था, उसमें अम्बपाली की असाधारण संस्कृत आत्मा तक प्रतिबिम्बित थी। वह चित्र वास्तव में सम्पूर्ण रीति पर आँखों से नही देखा जा सकता था। उसे देखने के लिये दिव्य भावुकता की आवश्यकता थी। चित्र को देखकर अम्बपाली स्वय भी चित्रवत हो गई।

चित्र की समाप्ति पर सान्ध्य भोजन के उपरान्त जब युवक गुफा मे शयन के लिये जाने लगा तब उसने कहा—

"प्रियतमे, आज इस कुटी में तुम्हारी अंतिम रात्रि है, कल भोर ही में हम नगर को चलेंगे। मै अश्व लेता आऊँगा प्रिये। तनिक जल्दी तैयार हो जाना, मै सूर्योदय से प्रथम ही तुम्हें नगर पौर पर छोडकर लौट आना चाहता हूँ। दिन के प्रकाश में मै नगर में जाना नहीं चाहता।"

कल उसे इस कुटिया से चला जाना होगा, यह सुनकर अम्बपाली का हृदय वेग से धड़क उठा, वह कहना चाहती थी—कल क्यों प्रिय, मुझे अभी और यहीं रहने दो। सदैव रहने दो। पर वह कह न सकी। उसकी वाणी जड़ हो गई।

युवक ने कहा—"कुछ कहना है प्रिये?"

"बहुत कुछ, परन्तु कहूँ कैसे?"

"कहो प्रिये, कहो।"

"तुम छद्मवेशी गूढ़ पुरुष हो, मुझे अपने निकट ले आओ प्रिय, मुझे परिचय दो।"

युवक ने सूखी हँसी हँस कर कहा—

"इतना होने पर भी परिचय की आवश्यकता रह गई प्रिये? मैं तुम्हारा हूँ यह तो जान ही गई, और जो ज्ञेय होगा, यथासमय जानोगी, उसके लिये व्याकुलता क्यों?"

कुछ देर चुप रहकर अम्बपाली ने कहा—

"तुमने कहाँ से यह अगाध ज्ञान-गरिमा प्राप्त की है भद्र, और यह सामर्थ्य?"

"ओह मैं तक्षशिला का स्नातक हूँ प्रिये, तिस पर अंग, बंग, कलिंग, चम्पा, ताम्रपर्णी और सम्पूर्ण जम्बूद्वीपस्थ पूर्वीय उपद्वीपों में मैं भ्रमण कर चुका हूँ, और मेरी यह शरीर-सम्पत्ति पैतृक है।"

क्षण भर स्तब्ध खड़ी रह कर अम्बपाली युवक के चरणों में झुक गई, उन्होंने कहा—

"भद्र, अम्बपाली तुम्हारी अनुगत शिष्या है।"

"और गुरु भी।" युवक ने अम्बपाली को हृदय से लगा कर कहा।

"गुरु कैसे?"

"फिर जानोगी प्रिये, अभी विदा, सुप्रभात के लिये।"

"विदा प्रिय।"

युवक अन्धकार में खो गया और देवी अम्बपाली अपने आप में ही खो गई।

वह रात भर भूमि पर लेटती रही, युवक की पद-धूलि को हृदय से लगाए।

एक दण्ड रात रहे, युवक ने कुटी-द्वार पर आघात किया।

"तैयार हो प्रिये!"

"हाँ भद्र!"

युवक भीतर आगया।

"क्या रात को सोई नही प्रियतमे?"

"सोना जागना एक ही हुआ प्रिय!"

युवक कुछ देर चुप रहा। फिर एक गहरी साँस छोड़कर उसने कहा—

"अश्व बाहर है। क्या कुछ समय लगेगा?"

"नहीं, चलो।"

युवक ने वह चित्र और वीणा उठा ली। उसनें सिह की खाल आगे रखकर कहा—

"यह उसी सिंह की खाल है कहो तो इसे तुम्हारी स्मृति में मैं रख लूँ।"

"वह तुम्हारी ही है प्रिय, और इस अधम शरीर की खाल, हाड़, माँस, आत्मा भी।"

अम्बपाली की आँखों से मोती बिखरने लगे।

दोनों धीरे धीरे कुटी से बाहर हुए। अम्बपाली के जैसे प्राण निकलने लगे। नीचे आकर देखा—एक ही अश्व है।

"एक अश्व क्यों?"

"तुम्हारे लिए।"

"और तुम?""

"मैं तुम्हारा अनुचर पादातिक।"

"परन्तु पादातिक क्यों?"

"तुम्हारे गुरुपद के कारण"

"यह नहीं हो सकेगा, प्रिय!"

"अच्छी तरह हो सकेगा, आओ मैं आरोहण में सहायता करूँ।"

"परन्तु तुम पादातिक क्यों भद्र?"

"मुझे देवी अम्बपाली के साथ २ अश्व पर चलने की क्षमता नहीं है प्रिये, देवी अम्बपाली लोकोत्तर सत्व है।"

युवक का कंठ स्वर काँपने लगा।

अम्बपाली ने उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप अश्व पर चढ़ गई। युवक पादातिक चलने लगा। दोनों धीरे २ उपत्यका में उतरने लगे।

ऊषा का प्रकाश प्राची दिशा को पीला रंग रहा था, वक्ष और भवन अपनी ही परछाई के अनुरूप अन्धकार की मूर्ति बने थे। उसी अन्धकार में से, वन के निविड भाग में होकर वह अश्वारोही और उसका संगी दोनों धीरे २ वैशाली के नगर-द्वार पर आ खड़े हुए।

अभी द्वार बन्द थे। युवक ने आघात किया, प्रश्न हुआ—

"कौन है यह?"

"चित्रभू, मित्र।"

"ठीक है ठहरो, खोलता हूँ। भारी सूचिका-यन्त्र के घूमने का शब्द हुआ और मन्द चीत्कार करके नगर-द्वार खुल गया।

यवक ने अश्व के निकट जा अम्बपाली से मृदु कण्ठ से कहा—

"विदा प्रिये!"

"विदा प्रियतम!"

दोनों ही के स्वर कंपित थे, वीणा और चित्र देवी को देकर युवक तीव्र गति से लौट कर वन के अन्धकार में विलीन हो गया, और अम्बपाली धीरे २ अपने आवास की ओर चली।

१०२

वैशाली की उत्सुकता

जैसे देवी अम्बपाली के सिह द्वारा आक्रान्त होकर निधन का समाचार आग की भाति वैशाली के जनपद में फैल गया था, वैसे ही देवी के अकस्मात् लौट आने से नगर मे हलचल मच गई। सप्तभूमि प्रासाद के चमकते स्वर्ण-कलशों के बीच विविध मीनध्वज वायु मे लहराने लगे। प्रासाद की सिह पौर पर महादुन्दुभी अनवरत बजने लगी। जिसका गम्भीर घोप सुनकर वैशाली के नागरिक निद्रा से जग कर आँख मलते हुए सप्तभूमि प्रासाद की ओर दौड़ चले। देवी की आज्ञा से सम्पूर्ण प्रासाद फूलों, पताकाओं, तोरणों और रत्नजटित बन्दनवारों से सजाया गया। भृत्य, बन्दी चाँदी के तूणीरों द्वारा बारम्बार गगनभेदी नाद करने लगे।

नागरिकों का ठठ अम्बपाली के बाहरी प्रांगण और सिह पौर पर एकत्रित हो गया था। सभी देवी के इस प्रकार अकस्मात् लोप हो जाने और फिर अकस्मात् ही अपने आवास में लौट आ जाने की रहस्यपूर्ण अद्भुत कहानी विविध भांति कह रहे थे। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि देवी अम्बपाली को गहन वन में क्रीड़ारत गन्धर्वराज चित्ररथ गन्धर्वलोक में ले गए थे, वहाँ गन्धर्वराज ने मंजुघोषा वीणा स्वयं बजाई थी और समस्त दिव्य-देहधारी गन्धर्वों के सम्मुख देवी अम्बपाली ने अपार्थिव नृत्य किया था। उसकी प्रतिच्छवि गन्धर्वराज ने स्वयं निर्मित की है तथा दिव्य मंजुघोपा वीणा भी देवी को गन्धर्वराज ने दी है।

दिन भर अम्बपाली अपने शयन-कक्ष में चुपचाप पड़ी रहीं। उन्होंने सन्ध्या से प्रथम किसी को भी अपने सम्मुख आने देने का निषेध कर दिया था। इससे बहुत से सेट्ठिपुत्र, राजवर्गी और सामन्तकुमार आ-आकर लौट गए थे। कुछ वहीं प्रांगण और अलिन्द में टहलने लगे थे। तब विनयावनत मदलेखा ने उन सब को स्फटिक कक्ष से मृदु मन्द मुस्कान के साथ सन्ध्या के बाद आने को कहा—अभी देवी श्रान्त, क्लान्त हैं—यह जानकर किसी ने हठ नहीं किया। किन्तु आज के सान्ध्य उत्सव की तैयारियाँ बड़े ठाठ से होने लगीं।

स्फटिक के दीपस्तम्भों पर सुगन्धित तेल से भरे स्नेह-पात्र रख दिये गए। तोरण और बन्दनवारों एवं रंग-बिरंगी पताकाओं से स्वागत-गृह सजाया जाने लगा। कोमल उपाधान युक्ति से रख दिये गए। शिवि, कोजव, क्षौम बिछाए गए। आसन्दी सजाई गई। रत्नजटित मद्य-पात्रों में सुवासित मद्य भरा गया। स्थान २ पर चौसर बिछाई गई। सुन्दर दासियाँ चुपचाप फुर्ती से सब काम करती दौड़-धूप कर रही थीं।

सन्ध्या की लाल प्रभा अस्तंगत सूर्य के चारों ओर फैल गई और वह धीरे २ अन्धकार में व्याप्त हो गई। सप्तभूमि-प्रासाद सहस्त्र दीप-रश्मियों से आलोकित हो उठा। उसका प्रकाश रंगीन गवाक्षों से छन २ कर नील पद्म-सरोवर पर प्रतिबिम्बित होने लगा। धीरे २ नागरिक अपने अपने वाहनों पर चढ़ २ कर प्रासाद के मुख-द्वार पर आने लगे। दण्डधर और दौवारिक विविध व्यवस्था करने लगे। युवक नागरिक कौतूहल और उत्साह से भरे अम्बपाली को एक बार देख भर लेने को व्याकुल हो उठे। परन्तु पहर रात गए तक भी देवी अपने एकान्त कक्ष से बाहर नहीं निकलीं। इस समय वैशाली के श्रीमन्त तरुणों से अतिथि-गृह भर गया था। डेढ़ दण्ड रात बीतने पर अम्बपाली ने प्रमोद-गृह में प्रवेश किया। इस समय उनका परिधान बहुत सादा था। उनका मुख अभी भी सफेद

हो रहा था। नेत्रों में विषाद और वेदना ने एक अप्रतिम सौन्दर्य ला दिया था। सेट्ठिपुत्र और सामन्त युवक देवी का स्वागत करने को आगे बढ़े। देवी अम्बपाली ने आगे बढ़कर मृदु मन्द स्वर में कहा—

"मित्रो, आपका स्वागत है, आप सब चिरंजीव रहें।"

"देवी चिरंजीवी हों" अनेक कण्ठों से यही स्वर निकला। देवी मुस्कराई और आगे बढ़कर स्फटिक की एक आधारवाली पीठ पर बैठ गईं। उन्होंने स्वर्णसेन को देखकर आगे हाथ बढ़ा कर कहा—

'युवराज, आगे आओ, देखो किस भांति हम पृथक हुए और किस भांति अब फिर मिले, इसी को जीवन का रहस्य कहा जा सकता है।'

स्वर्णसेन ने द्रवित होकर कहा—"किन्तु देवी, मैं साहस नहीं कर सकता। देवीं की आपदा का दायित्व तो मुझी पर है।"

"आपदा कैसी मित्र?"

"आह, उसे स्मरण करने से अब भी हृदय काँप उठता है, कैसा भयानक हिंस्र जन्तु था वह सिंह।"

"किन्तु वह तो एक दैवी प्रतारणा थी मित्र, उसके बाद तो जो कुछ हुआ वह अलौकिक ही था?"

"तब क्या यह सत्य है देवी, कि आपका वन में गन्धर्वराज से साक्षात् हुआ था?"

एक अपरिचित युवक ने तनिक आगे बढ़कर कहा—"युवक अत्यन्त सुन्दर, बलिष्ठ और गौराँग था, उसके नेत्र नीले और केश पिंगल थे, उठान और खड़े होने की छवि निराली थी, उसका वक्ष विशाल और जंघाएं पुष्ट थीं।

देवी ने उसकी ओर देखकर कहा—"परन्तु भद्र, तुम कौन हो? मैं पहिली ही बार तुम्हें देख रही हूँ।"

स्वर्णसेन ने कहा—

"यह मेरा मित्र मणिभद्र-गान्धार है, ज्ञातिपुत्र सिंह के साथ तक्ष-शिला से आया है। वहाँ इसने आचार्य अग्निवेश से अष्टांग आयुर्वेद का अध्ययन किया है और अब यह कुछ विशेष रासायनिक प्रयोगों का क्रियात्मक अध्ययन करने आचार्य गौड़पाद की सेवा में वैशाली आया है।"

"स्वागत भद्र", अम्बपाली ने उत्सुक नेत्रों से युवक को देखकर मुस्कराते हुए कहा—"प्रियदर्शी सिंह तो मेरे आवास के विरोधी हैं। उन्होंने तुम्हें कैसे आने दिया प्रिय, और आचार्य से कैसे प्रयोग सीखोगे?"

"लोहवेध और शरीरवेध सम्बन्धी।"

"क्या वे सब सत्य हैं, प्रिय भद्र, आचार्य गौड़पाद से तो मैं बहुत भय खाती हूँ।"

"भय कैसा देवी?"

"आचार्य की भावभंगी ही कुछ ऐसी है।" वह हँस पड़ी। युवक भी हँस पड़ा। अम्बपाली ने अपना हाथ फैला दिया। युवक ने देवी के हाथ को आदर से थाम कर कहा—

"तो देवी, यह क्या सत्य है कि ....."

"हाँ सत्य ही है प्रिय, उसी भांति जिस भांति तुम्हारे लोहवेध और शरीरवेध के वे विशिष्ट प्रयोग।"

स्वर्णसेन ने शंकित-सा होकर कहा—

"तो सिंह का आक्रमण क्या प्रतारणा थी?"

"निस्संदेह युवराज, क्या तुमने वह दिव्यवीणा और चित्र देखा नहीं?"

"देख रहा हूँ देवी, तो इस सौभाग्य पर मैं आपको बधाई देता हूँ।"

मणिभद्र ने कहा—"मै भी आयें!"

"धन्यवाद मित्रो, आज अच्छी तरह पान करो। आज मै सम्पूर्ण हूँ, कृतकृत्य हूँ, मै धन्य हूं। मित्रो मै देवजुष्टा हूं।"

चारों ओर से देवी अम्बपाली की जय-जयकार होने लगी। और तरुण बारम्बार मद्य पीने और 'देवी अम्बपाली की जय' चिल्लाने लगे।

१०३

दो बटारू

चम्पा, वैशाली और राजगृह का मार्ग जहाँ से तीन दिशाओं को जाता है, उस स्थान पर एक अस्थिक नाम का छोटा-सा गाँव था। गाँव में बस्ती बहुत कम थी। परन्तु राजमार्ग के इस तिराहे पर होने के कारण इस गाँव में आने जाने वाले बटारू सार्थवाह और निगमों की भीड़-भाड़ बनी ही रहती थी। गाँव राजमार्ग से थोड़ा हटकर था परन्तु राजमार्ग पर ठीक उस स्थान पर जहाँ से तीन भिन्न दिशाओं के तीन मुख्य मार्ग जाते थे, सेट्ठियो और निगमों ने अनेक सार्वजनिक और व्यक्तिगत आवास अटारी आदि बनवाई थी। एक पान्थागार भी था जिसका स्वामी एक बूढा व्रात्य था। इन सभी स्थानों पर यात्री बने ही रहते थे।

सूर्य मध्याकाश में चमक रहा था। पान्थागार के बाहर पुष्करिणी के तीर पर एक सघन वृक्ष की छाया में एक ब्राह्मण बटारू सन्ध्यावन्दन कर रहा था। स्थान निर्जन था। ब्राह्मण प्रौढावस्था का था। उसका वेश ग्रामीण था। वह पान्थागार में भरी हुई यात्रियों की भीड़ से बचकर यहाँ एकान्त में आकर पूजा कर रहा था। इस बटारू ब्राह्मण का वेश ग्रामीण अवश्य था परन्तु मुख तेजवान् और दृष्टि बहुत पैनी थी।

इसी समय एक और बटारू ने उसके निकट आकर थकित भाव से अपने इधर उधर देखा और उसी वृक्ष की छाया में बैठकर सुस्ताने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका तन मन दोनों ही थकित है। सुस्ताकर उसने वस्त्र उतार पुष्करिणी में स्नान किया, और पाथेय निकाल आहार करने बैठा तो उसने ब्राह्मण की ओर देख प्रणाम किया और पूछा—

"कहाँ के ब्राह्मण हैं भन्ते?"

"मगध के"

"तो भन्ते, मेरे पास पाथेय है––भोजन करो"

"जैसी तेरी इच्छा गृहपति, तू कौन है?"

"सेट्ठि"

"कहाँ का गृहपति?"

"वीतीभय का"

"स्वस्ति गृहपति" कहकर ब्राह्मण मौन हो गया।

जिसे ब्राह्मण ने गृहपति कह कर सम्मानित किया था उसने कुत्तक की गाँठ खोल उसमें से एक बड़ा-सा मधुगोलक निकाल कर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण के आगे धर दिया। दूसरा मधुगोलक वह वहीं वृक्ष की छाया में बैठकर खाने लगा। ब्राह्मण की ओर उसने पीठ कर ली।

ब्राह्मण भी भूखा था। नित्यकर्म से वह निवृत्त हो चुका था। उसने भी मधुगोलक को खाना प्रारम्भ किया। परन्तु ज्योंही उसने मधु-गोलक को तोड़ा—उसमें से मुट्ठी भर तेजस्वी रत्न निकल पड़े। ब्राह्मण आश्चर्य चकित हो उस बटारू के मलिन वेश और दीन-दशा की ओर देखने लगा। उसका आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। यदि यह वास्तव में इतना श्रीमन्त है कि इस प्रकार ब्राह्मण को गुप्त-दान देना चाहता है तो फिर इस प्रकार इसका भिक्षुक वेश क्यों है? क्यों पादातिक एकाकी यात्रा कर रहा है? फिर, ऐसे मूल्यवान् रत्नों के दाम तो बहुत हैं। ब्राह्मण सोचने लगा, इसमें कोई रहस्य है।

जब दोनों भोजन कर चुके तब ब्राह्मण ने प्रसन्न दृष्टि से कहा––

"बैठ गृहपति, तेरा नाम क्या है?

बटारू ने निकट बैठते हुए कहा––मैं कृतपुण्य हूं, वीतीभय के सेट्ठि धनावह का पुत्र।"

"अहा, सेट्ठि धनावह, अरे वह तो मेरा यजमान था भन्ते। तेरी जय रहे गृहपति, पर तू एकाकी कहाँ इस तरह दरिद्र बटारू की भांति यात्रा कर रहा है?"

"मैं चम्पा जा रहा हूँ भन्ते"

"चम्पा? इस भांति साधन रहित? सुनूँ तो क्यों?"

"क्या कहूँ आर्य, मैं बड़ी विपन्नावस्था में हूँ।"

"कह भद्र, मैं तेरा पुरोहित हूँ, ब्राह्मण हूँ।"

"तो आर्य, दुष्टा माता ने मुझे घर से बहिष्कृत किया है, अब मैं चम्पा जा रहा हूँ। वहाँ मेरी मध्यमा पत्नी का पिता रहता है, वहीं उसके आश्रय में।"

"परन्तु इस अवस्था में क्यों?"

"मेरे पास धन नहीं है आर्य!"

"पाथेव कहाँ पाया?"

"माता से छिपा कर मध्यमा ने दिया।"

"ब्राह्मण कुछ २ मर्म समझ गया। वह सन्देह की तीखी आँखों से बटारू को देखता रहा? फिर एकाएक अट्टहास करके हँस पड़ा।

उस हँसने से अप्रतिभ हो बटारू ने कहा—

"आर्य के इस प्रकार हँसने का क्या कारण है?"

"यही, कि गृहपति, तू भेद को छिपा नहीं सका।"

बटारू ने सूखे कण्ठ से कहा—भेद कैसा?"

"तो तू सत्य कह, भद्र, तू कौन है?"

"जो कहा, वह क्या असत्य है?"

"असत्य ही है भद्र"

"कैसे जाना आर्य?"

"तेरे नक्षत्र देखकर, तू तो सामन्तपुत्र है।"

ब्राह्मण ने अपनी पैनी दृष्टि बटारू के वस्त्रों में छिपे खड्ग की नोक की ओर ताकते हुए कहा।

बटारू ने इस दृष्टि पर लक्ष्य नहीं किया। उसने पृथ्वी में गिरकर ब्राह्मण को प्रणाम किया और कहा—"आप त्रिकालदर्शी ब्राह्मण हैं, मैं सामन्तपुत्र ही हूँ—उस दुष्टा सेट्ठिनी ने मुझे अपनी चार पुत्र-वधुओं में नियुक्त किया था तथा यथेच्छ शुल्क देने का वचन दिया था। अब पाँच संतति उत्पन्न कर मुझे उस मेधका ने छूछे हाथ खदेड़ दिया। मध्यमा ने मुझे पाथेय दे चम्पा जाने का संकेत किया है, वहाँ मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगा।"

"परन्तु तू कौन है आयुष्मान्, अपना वास्तविक-परिचय दे, मै तेरी सब इच्छा पूरी करने मे समर्थ हूँ।"

"तो आर्य, मै लिच्छवि हूँ; और वैशाली से प्रताड़ित हूँ। मैंने वैशाली को उच्छेद करने का प्रण किया है।"

ब्राह्मण चमत्कृत हुआ। उसने उत्सुकता दबा कर कहा—'तू लिच्छवि होकर वैशाली पर ऐसा क्रुद्ध क्यों है?"

"आर्य, वैशाली के गणों ने मेरी वाग्दत्ता अम्बपाली को नगरवधू बनाकर मेरे नागरिक अधिकारों का हरण किया है।

"तो आयुष्मान्, तू कृतसंकल्प होकर कैसे नियुक्त हुआ? और अब फिर तू उसी मोह में है।"

"तो आर्य, मैं क्या करूँ?"

"तू वैशाली का उच्छेद कर।"

"किस प्रकार आर्य?"

"मेरा अनुगत होकर।"

"तो मैं आपका अनुगत हूँ।"

"तो भद्र यह ले", ब्राह्मण ने वस्त्र से निकाल कर वे मुट्ठी भर तेजस्वी रत्न उसके हाथ पर रख दिए।"

रत्नों की ज्योति देख बटारू की आँखों में चकाचौध लग गई। उसने कहा—"यह रत्न मैं क्या करूँ?"

"इन्हें ले, और यहाँ से तीन योजन पर पावा पुरी है वहाँ जा। वहाँ मेरा सहपाठी मित्र इन्द्रभूति रहता है, उसे यह मुद्रिका दिखाना, वह तेरी सहायता करेगा। वहाँ उसकी सहायता से तू इन रत्नों को बेच बहुत-सी विक्रेय सामग्री मोल ले, दास-दासी कम्मकर संग्रह कर ठाट-बाट से एक सार्थवाह के रूप मे चम्पा जा और अपने श्वसुर गृहपति का अतिथि कृतपुण्य होकर बन। परन्तु वहाँ तू मध्यमा की प्रतीक्षा में समय नष्ट न करना, सब सामग्री बेच, श्वसुर से भी जितना धन उधार लेना संभव हो, ले भारी सार्थवाह के रूप मे बिक्री करता और माल मोल लेता हुआ बंग, कलिंग, अवन्ती, भोज, आन्ध्र, माहिष्मती, भृगु-कच्छ और प्रतिष्ठान का यात्रा कर। यह लेख ले और जहाँ जहाँ जिस २ के नाम इसमें अंकित हैं, उन्हे यह मुद्रिका दिखा, उनके सह-योग से वैशाली में अ[illegible]ान में योग संग्रह कर, और वैशाली में अपना पूर्व परिचित गुप्त रख 'कृतपुण्य' सार्थवाह होकर प्रवेश कर। और आदेश मैं तुझे वहीं दूँगा।"

ब्राह्मण की बात सुन और लक्षावधि स्वर्ण-मूल्य के रत्न उसके द्वारा प्राप्त कर उसने समझा—यह ब्राह्मण अवश्य कोई छद्मवेशी बहुत बड़ा आदमी है। परन्तु वह उससे पूछने का साहस नहीं कर सका। उसने विनयावनत होकर कहा—"जैसी आज्ञा, परन्तु आपके दर्शन कैसे होंगे?"

"भद्र, वैशाली की अन्तरायण मे नन्दन साहु की हट्ट है, वहीं तू बटारू ब्राह्मण को पूछना। परन्तु इसकी तुझे आवश्यकता नही होगी।

वहाँ प्रतिष्ठा योग्य-स्थान लेकर अन्तरायण में निगम-सम्मत होकर हट्ट खोल देना। तेरा वैशाली में आगमन मुझपर अप्रकट न रहेगा।"

यह कहकर ब्राह्मण ने उसे एक लिखित भूर्जपत्र दिया। और कहा—

"जा पुत्र, अपना कार्य सिद्ध कर।"

बटारू ने अपना मार्ग लिया। ब्राह्मण भी अपना झोला कन्धे पर डाल दण्ड हाथ में ले दूसरी ओर चले।

१०४

दस्यु बलभद्र

वैशाली में अकस्मात् ही एक अतर्कित भीति की भावना फैल गई। नगर के बाह्य और अन्तरायण सभी जगह दस्यु बलभद्र की दुःसाहसिक डकैतियों की अनेक आतंकपूर्ण साहसिक कहानियाँ जगह-जगह सुनी जाने लगीं। जितने मुंह उतनी ही बातें थीं। सभी पौर जन और राजवर्गी उत्तेजित हो उठे। परिषद् का वातावरण भी क्षुब्ध हो गया।

पर दस्यु बलभद्र और उसके दुर्द्धर्ष दस्युओं को कोई पकड़ नहीं सका—अट्टवी-रक्खकों को बारम्बार सावधान करने पर भी इधर उधर राह चलते धनपति लुटने लगे। ग्रामों से भी अशान्त सूचनायें आने लगीं। एक दिन परिषद् का राजस्व नगर में आते हुए मार्ग में लुट गया। और उसके कुछ दिन बाद ही दिन-दहाड़े अन्तरायण भी लूट लिया गया। इस घटना से वैशाली में बहुत आतंक छा गया। लोग नगर छोड़कर भागने लगे। बहुतों ने अपना रत्न पृथ्वी में गाड़ दिया। परन्तु नगर के सामन्तपुत्र इन सब झंझटों से उदासीन थे। वे दिन भर अलस भाव से सन्ध्या होने की प्रतीक्षा में आँखें बन्द किए पड़े रहते, सन्ध्या होने पर सज-धज कर अलंकृत हो स्वर्ण रत्न कुर्वक कोश में भरकर उत्सुक आकुल भाव से सप्तभूमि प्रासाद के स्वर्णालोक में जाकर सुरा सुन्दरी संगीत के सुख-भोग और द्यूत-विनोद में आधी रात तक डूबते उतराते। फिर आधी रात व्यतीत हो जाने पर सूना कुर्वक कोश, सूना हृदय ले उनीदी आँखों को खोलते-मीचते मद के मद में लड़खड़ाते अपने २ भृत्यों के कन्धों का सहारा लिए अपने २ वाहनों में अर्ध-मृतकों के समान पड़

कर अपने घर जाते और मृतक से भी अत्यन्त गर्हित भाव से बेसुध होकर दोपहर तक पड़े रहते थे। विश्व में कहाँ क्या हो रहा है, यह जैसे वे भूल गए थे। उन्हें एक ही वस्तु याद रह गई थी, अम्बपाली की मन्द मुस्कान, उसका स्वर्गसदन सप्तभूमि-प्रासाद, सुगन्धित मदिरा और अनगिनत अछूते यौवन।

१०५

युवराज स्वर्णसेन

स्वर्णसेन ने मद्य पीकर रिक्त मद-पात्र दासी की ओर बढ़ा दिया। और अर्द्धनिमीलित नेत्रों से उसे घूर कर कहा—"और दे"

दासी पात्र हाथ में लिए अवनत-बदन खड़ी रही। इस बार उसने मद-पात्र भरा नहीं।

स्वर्णसेन ने कहा—"मद और दे हला"

"अब और नहीं"

युवराज ने कुछ अधिक नेत्र खोल कर कहा—"अब और क्यों नही, दे हन्दजे, मद दे।"

"वह अधिक हो जायेगा भन्ते" दासी ने कातर वाणी से कहा।

युवराज उठकर बैठ गए। उन्होंने कुछ उत्तेजित होकर "दे हला, मद दे" कहते हुए वेग से हाथ हवा में हिलाया।

दासी ने एकबार फिर कातर नेत्रों से युवराज को देखा, और फिर चुपचाप पात्र भरकर युवराज के हाथ में दे दिया। इसी समय एक दण्डधर ने आकर "महाअट्टवी-रक्खक सूर्यमल्ल" के आने की सूचना दी। सूर्यमल्ल स्वर्णसेन के अन्तरंग मित्र थे। उनके लिए कोई रोक-टोक नहीं थी। वे दण्डधर के पीछे ही पीछे चले आए। स्वर्णसेन ने उद्योग करके अपनी आखें खोलकर जिज्ञासा भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा। उस देखने का अभिप्राय यह था—कि इस असमय में क्यों?

सूर्यमल्ल ने साभिप्राय दासी की ओर देखा। दासी नतमस्तक वहाँ से चली गई। सूर्यमल्ल ने कहा—"सुना है तुमने स्वर्ण, आज अन्तरायण लुट गया है।"

मद्य पात्र अभी भी स्वर्णसेन के ओठों से लगा था। अब उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। स्वर्णमल्ल ने उत्तेजित होकर कहा—

"मैं महाबलाधिकृत का संदेश लाया हूँ।"

"महाबलाधिकृत ने असमय में क्या संदेश भेजा है मित्र" स्वर्णसेन ने लड़खड़ाती वाणी से कहा।

"यही, कि हम अभी तत्काल दश शहस्त्र सेना लेकर मधुवन को घेर लें।"

"अभी क्यों? फिर कभी क्यों नहीं?" उन्होंने मद्यपात्र एक ओर फेंकते हुए कहा।

"चर ने संदेश दिया है कि दस्यु बलभद्र मधुवन में छिपा है।"

"दस्यु से तुम डरते हो सूर्यमल्ल? धिक्कार है।"

"किन्तु गणपति का आदेश है कि हम अभी दस सहस्त्र सैन्य...."

"परन्तु हम क्यों, तुम क्यों नहीं?"

"मैं भी साथ चलता हूँ"

"तो चल मित्र तनिक सहारा देकर उठा तो"

सूर्यमल्ल ने, स्वर्णसेन को उठाकर खड़ा किया। स्वर्णसेन ने लड़खड़ाते हुए कहा—"चलो अब"

"कहाँ?

"देवी अम्बपाली के आवास को!"

"और महाबलाधिकृत का आदेश?"

"वह कल सूर्योदय के बाद देखा जायगा।"

"परन्तु वह दस्यु....."

"उस भाग्यहीन दस्यु को अभी कुछ क्षण मधुवन में विश्राम करने दो मित्र, सूर्योदय होने पर मैं उसे अपने (खंग) से खण्ड २ कर दूंगा।"

सूर्यमल्ल ने क्रुद्ध होकर कहा—"ऐसा नहीं हो सकता, महाबलाधिकृत का आदेश है।"

"होने दे मित्र, मेरी बात मान—चल अम्बपाली के आवास में, पी सुवासित मद्य, चख रूपसुधा संगीतालाप और भोग स्वर्ग-सुख। चल मित्र, उसने कसकर सूर्यमल्ल का हाथ पकड़ लिया।

सूर्यमल्ल ने विरक्ति से कहा—"तब तुम जाओ देवी के आवास की ओर मैं अकेला ही मधुवन जाऊँगा।"

"अरे मित्र, तू नितान्त अरसिक है, यह चन्द्रमा की ज्योत्स्ना, यह शीतल मन्द सुगन्ध समीर. यह मादक यौवन यह तारों भरी रात? चल मित्र, चल।"

युवराज एक बारगी ही सूर्यमल्ल के कन्धे पर झुक गया, और वे दोनों अन्धकारपूर्ण राजपथ पर धीरे २ चले अम्बपाली के आवास की ओर।

१०६

प्रत्यागत

कृतपुण्य सेट्टि की वैशाली के अन्तरायण में धूम मच गई। सेट्ठियों के निगम ने उसका स्वागत सत्कार करने को गणनक्षत्र मनाया। नगर सेट्ठि ने उसे घर बुलाकर गन्धमाला से सम्मानित किया। उसके ठाट-बाट धन-वैभव तथा विक्री सामग्री को देख वैशाली का सेट्ठिनिगम सन्न रह गया। सर्वत्र यही चर्चा होने लगी कि चम्पा का यह महासेट्ठि चम्पा के पतन के बाद राजकुल की सम्पूर्ण सम्पदा लेकर वैशाली में भाग आया है। और अब वह वैशाली ही में रहकर व्यापार वाणिज्य करेगा। सेट्ठि कृतपुण्य के साथ दासों, कम्मकरों, सेवकों की बड़ी भरमार थी। उनकी धन-सम्पत्ति वाहन और अवरोध का वैभव विशाल था। घर २ इस भाग्यवान् सार्थवाह के सौभाग्य की चर्चा थी कि कलिका द्वीप में उसे स्वर्ण, रत्न की एक खान मिल गई थी और वह उससे अपने जहाज भर लाया है। परन्तु सबसे अधिक चर्चा की वस्तु उसके आठ समुद्री अश्व थे जो वायुवेग के समान चंचल और मूर्ति की भांति सुन्दर थे। इन अश्वों में से एक पर चढ़कर जब उसका पुत्र प्रातः और सन्ध्या समय वायु-सेवनार्थ अपने शिक्षकों और सेवकों के साथ राजमार्ग पर निकलता था तो सब कोई अपने २ काम छोड़ २ कर उन्हीं अश्वों की, अश्व के आरोही साक्षात् कार्तवीर्य के समान सुन्दर किशोर सेट्ठिपुत्र की और गृहपति कृतपुण्य सेट्ठि की चर्चा सत्य असत्य काल्पनिक करने लगते। बहुत लोग बहुविध अटकल अनुमान लगाते।

पाठक इस 'कृतपुण्य' को भूले न होंगे। यहभाग्य-विदग्ध हर्षदेव का

नूतन संस्करण था। यहाँ हम संक्षेप में इसके नवीन रूप में उदय होने का विवरण देते हैं।

बन में बाटरू ब्राह्मण से बिदा होकर हर्षदेव पावा पुरी गया और इन्द्रभूति ब्राह्मण से मिला। इन्द्रभूति ने उसे आदरपूर्वक अपने यहां ठहरा कर विविध वस्त्राभूषण से उसे अलंकृत कर अपने परिचितों, मित्रों और नगर निगमों से उसका परिचय कराया तथा उसे सेट्ठिपुत्र कहकर उन्हें परिचय दिया। वहाँ उसने इन्द्रभूति की सहायता और सम्मति से बहुत-सी मूल्यवान विक्रेय सामग्री मोल ले और पचास अश्वतरियों पर लाद तथा चार दास और उत्तम अश्व मोल ले अश्वारूढ़ हो चम्पा में जा पहुँचा। चम्पा के गृहपति सागरदत्त के घर पर पहुँचा और कृतपुण्य कह कर अपना परिचय दिया। सागरदत्त सेट्ठि के अनेक जलयान ताम्रलिप्त और स्वर्णद्वीपों में विविध व्यापार की सामग्री लेने बेचने जाते रहते थे। और वह अतिसमृद्ध श्रीमन्त निगमपति सेट्ठि था। उसके कोई पुत्र न था केवल एक वही मृगावती नाम की पुत्री थी जो कृतपुण्य को ब्याही थी। उसका चिरकाल से उसे कोई समाचार नही मिला था। अब वह अकस्मात् अपने जामातृ को देख परम हर्षित हुआ। उसने बड़े प्रेम-सत्कार से उसका स्वागत किया। उसकी सहायता से उसका सब माल अच्छे मूल्य में बिक गया और महान् धनराशि उसे प्राप्त हुई। श्वसुर से कहकर उसने वीतीभय नगरी से मृगावती और उसके पुत्र को भी मंगवा लिया। और वह कुछ काल स्त्री पुत्र और ससुराल का परिपूर्ण आनन्द भोगता रहा। फिर ब्राह्मण की बात को स्मरण कर तथा वैशाली को लौटने की उत्सुकता से श्वसुर से आग्रह कर विविध बहुमूल्य वस्तुओं से तीन जहाज भर अपनी स्त्री मृगावती पुत्र पुण्डरीक और दास-दासियों कम्मकरों को संग ले जलयात्रा को निकल पड़ा।

वह माल लेता बेचता लाभ उठाता बंग, कलिंग, अवन्ती, भोज, आन्ध्र माहिष्मती, भृगुकच्छ और प्रतिष्ठान जल-थल में, जैसा सुयोग मिला, घूमता फिरा। उसने ब्राह्मण की दी हुई सूची के अनुसार बंग में

वैश्रमणदत्त, कलिंग में वीरकृष्णमित्र, अवन्ती में श्रीकान्त, भोज में समुद्रपाल, आन्ध्र में सामन्तभद्र, माहिष्मती में सुगुप्त, भृगुकच्छ में सुदर्शन, और प्रतिष्ठान में सुवर्णबल से मिल कर ब्राह्मण का गूढ़ संदेश दिया और उनका गूढ़ संदेश ब्राह्मण के लिये प्राप्त किया।

इसी यात्रा के बीच जब वह पूर्वी द्वीपसमूहों में विचरण करता हुआ हस्तिशीर्ष द्वीप में पहुँचा तो उसकी भेंट कई अन्य सार्थवाहों से हो गई जो उसी की भांति विक्रेय वस्तु द्वीप-द्वीपान्तरों में बेचने जा रहे थे। हस्तिशीर्ष द्वीप से उसने उनके साथ ही मिलकर यात्रा की। दैव-संयोग से कुछ दिन समुद्र में यात्रा करते हुए उनके समुद्रयान झंझावात में फंस गए उनके सब यान और उनके साथी टूट-फूट कर समुद्र में डूब गए। केवल एक पोत, जिसमें कृतपुण्य की पत्नी-पुत्र दास और धन, स्वर्ण था, किसी भांति कई दिन तक लहरों पर उथल-पुथल होता टकराता समुद्र-बीच अज्ञात और निर्जन कालिका द्वीप के किनारे जा टकराया। किसी प्रकार भूस्पर्श करने से उन लोगों को ढारस हुआ। द्वीप में मीठा जल और स्वादिष्ट फल-मूल खाकर उन्होंने कई दिन की भूख प्यास तृप्त की। परन्तु द्वीप जनरहित है यह देख उन्हें दुःख हुआ। फिर भी फल-मूल और स्वादिष्ट जल की बहुतायत से उन्हें बड़ा सहारा मिला। उन्होंने अपने समुद्रयान की मरम्मत की। तथा अनुकूल वायु की प्रतीक्षा में वहीं पड़े रहे।

इसी द्वीप में फल-मूल की खोज में घूमते भटकते उन्हें माणिक्य और स्वर्ण की खानें मिल गई। इस प्रकार दुर्भाग्य से भाग्योदय देखकर वह उन्मत्त की भांति हर्ष से नाचने लगा। उसने दासों और कम्मकरों की सहायता से स्वर्ण और रत्न की राशि की राशि अपने जहाज में भर ली। इतना अधिक बेतोल स्वर्ण तथा सूर्य के समान तेजवान् त्रिलोक-दुर्लभ कुडव प्रस्थ भार के माणिक्य पाकर उसके रक्त की एक २ बूंद उसकी नाड़ियों में नाचने लगी। अब

वह पृथ्वी पर सबसे अधिक धन-कुवेर था। मनुष्य की दृष्टि से न देखे गए रत्न उसके चरणों में थे।

परन्तु उसके सौभाग्य की समाप्ति यहीं पर नहीं हुई। पूर्णिमा के चन्द्रोदय होने पर ज्यों ही समुद्र में ज्वार आया। बहुत से अद्भुत समुद्री अश्व जल में बह कर द्वीप के तट पर आए और द्वीप में विचरण करने लगे। उन अद्भुत और विद्युत् वेग के समान चपल तथा मनुष्य-लोक में दुर्लभ महाशक्ति-सम्पन्न वाड़व-अश्वों को देख प्रथम तो कृतपुण्य और उसके संगी साथी भयभीत होकर एक योजन दूर भाग गए। जब समुद्र में ज्वार उतर गया और वे अश्व भी समुद्र गर्भ में चले गए तब वे लोग फिर समुद्रतट पर आकर उन पराक्रमी अश्वों को देखते रहे।

कृतपुण्य ने इन अश्वों को पकड़ कर ले जाने का निश्चय किया। अन्ततः वह साहसिक सामन्त था। उसमें सुप्त आखेट-वासना जाग्रत हुई और अश्वों को पकड़ने का सम्पूर्ण आयोजक विचार वह आगामी पूर्णिमा तक समुद्र में ज्वार आने की प्रतीक्षा में उसी द्वीप में ठहर गया।

समुद्र में पूर्ण चन्द्रोदय होने पर ज्वार आया। और फिर अनगिनत वही वाड़व-अश्व समुद्र की तरंगों पर तैरते हुए द्वीप में घुस आए। कृतपुण्य ने एक ऊँचे स्थान पर बैठकर वीणा बजानी प्रारम्भ की। वीणा की मधर झंकृति से विमोहित हो वे अश्व उसी शब्द की ओर आकर्षित हो लम्बे २ अपने कान खड़े कर खड़े के खड़े रह गए। तब कृतपुण्य के संकेत से उसके दासों ने उन्हें विविध सुगन्ध द्रव्य सुंघाए, विविध स्वादिष्ट मधुर खाद्य पेय खाने पीने को दिये। इस प्रकार वीणा की ध्वनि से विमोहित तथा विविध गन्ध-खाद्य पेय से लुब्ध बने वे अश्व उन मनुष्यों से परिचित की भांति बारम्बार मुंह उठा कर खाद्य पेय माँगने तथा खड़े २ कनौतियाँ काटने लगे। समुद्र के पीछे लौटने का उन्हे भान ही न रहा। ज्वार उतर गया और कृतपुण्य के

दासों ने उन्हें युक्ति से दृढ़-बन्धन में बाँध लिया तथा जलयान पर चढ़ा लिया।

इस अद्भुत और अतर्कित रीति से देव-मनुष्य-दुर्लभ वाड़व-अश्व और अमोघ रत्ननिधि इस अज्ञेय द्वीप से लेकर कृतपुण्य ने अनुकूल वायु देख जल ईधन और फल मूल आदि भर प्रस्थान किया। तथा देश देश म होता हुआ वह भृगुकच्छ पहुँचा। भृगुकच्छ में उसने बहुत-सा माल क्रय किया तथा स्थल मार्ग-से सार्थवाह ले चला। इस समय उसका सार्थवाह एक चतुरंगिणी सेना की भांति था। भृगुकच्छ में ठहर कर उसने चतुर गुणी और शास्त्रज्ञ अश्वपालों एवं अश्वमर्दकों को नियुक्त किया। जिन्होंने अश्वों के मुंह कान बाँध, वल्गु चढ़ा, तंग खींच, चाबुक और वेत्र की मार मार कर विविध भांति आज्ञा-पालन और चाल चलने की शिक्षा दी। इस प्रकार शिक्षण प्राप्त कर और बहुमुल्य रत्नाभरणों से सुसज्जित होकर जब ये अश्व लोगों की दृष्टि में पड़े तब सब इन्हे देखते ही रह गए।

इस प्रकार भाग्य की नियति से विक्षिप्तावस्था में वैशाली को त्यागने के सात वर्ष पश्चात् जब हर्षदेव ने महासेट्ठि सार्थवाह कृतपुण्य के रूप में वहाँ प्रवेश किया और उत्तरायण में आ सहस्त्र स्वर्ण-शिखरों वाला हर्म्य श्वेत मर्मर का बनवा दास-दासियों, कम्मकरों, लेखकों, कर्णिकों, दण्डधरों, द्वारपालों, रक्खकों से सेवित हो देखते ही देखते सर्वपूजित हो वहाँ निवास करने लगा, और अपनी दिन-चर्या से ऐश्वर्य चमत्कार दिखा २ कर नगर नगर और जानपद को चमत्कृत करने लगा तो कुछ दिन को तो लोग सब कुछ भूल कर सेट्ठि कृतपुण्य की ही चर्चा वैशाली में घर २ करने लगे।

१०७

वैशाली में मगध महामात्य

वैशाली के जनपद में इस बार फिर भुकम्म हुआ। वैशाली के महान राजमार्ग पर एक दीर्घकाय ब्राह्मण पाँव-प्यादा धीर मन्थर गति से संथागार की ओर बढ़ रहा था। उसके पाँव नंगे और ल-धूसरित थे, कमर में एक शाण साटिका और कन्धे पर शुभ्र कौशेय पड़ा था जिसके बीच से उसका स्वच्छ जनेऊ चमक रहा था। इस ब्राह्मण का वर्ण गौर, मुखमुद्रा गम्भीर और तेज-पूर्ण नेत्र, दृष्टि पैनी, ललाट उन्नत, कन्धे और ग्रीवा मांसल, होठ सम्पुटित, भालपट्ट चन्दन-चर्चित, नंगे सिर पर शतधौत हिमश्वेत चोटी। वह अगल-बगल नहीं देख रहा था, उसकी दृष्टि पृथ्वी पर थी।

उसके निकट आने तथा साथ चलने की स्पर्धा वैशाली में कोई नहीं कर सकता था। उससे पचास हाथ के अन्तर पर दो सहस्त्र ब्राह्मण नंगे पैर, नंगे बदन, नंगे सिर, केवल शाटिका कमर में पहिने और जनेऊ हाथों मे ऊँचे किए चुपचाप चल रहे थे। उनके पीछे सहस्त्रों नागरिक ग्रामीण, सेट्ठि, सामन्त, विश, कम्मकर और अन्य पुरुषथे घरो के झरोखों से मिसिका और अलिन्दों मे कुलवधू,गृहपति, पत्नियाँ आश्चर्य कौतूहल और भीतमुद्रा से इस सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्माण को देख रहे थे। सब निःशब्द चल रहे थे। सभी मन ही मन भांति-भांति के विचार कर रहे थे। कोई कानों-कान फुसफुसाकर बात कर रहे थे।

यह ब्राह्मण विश्वविख्यात राजनीति का ज्ञाता मगध का पदच्युत दुर्धर्ष आमात्य वर्षकार था। उनके राजविग्रह, राजकोप तथा राजच्युति के समाचार प्रथम ही विवध रूप धारण करके वैशाली में फैल गए थे।

संथागार के प्रांगण में वैशाली-गण-संघ के अष्टकुल-प्रतिनिधियों ने

महामात्य का स्वागत किया और वे सब इस तेजस्वी ब्राह्मण को आगे कर संथागार में ले गए। जहाँ महासन्धि विग्रहिक जयराज और विदेश-सचिव ने आगे बढकर आमात्य का प्रति सम्मोदन करके अभ्यर्थना की। फिर उन्होंने उससे एक निर्दिष्ट आसन पर बैठने का अनुरोध किया। आमात्य ने अनुरोध नहीं माना। वह और दो पग आगे बढ़कर वेदी के सम्मुख आ खड़े हुए तब आमात्य ने जलद गम्भीर वाणी से कहा—"हुआ, बहुत शिष्टाचार सम्पन्न हुआ परन्तु वज्जी के अष्टकुल भ्रम में न रहें। मैं आज मगध का आमात्य नहीं, एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ। उदर के लिए अन्न की याचना करने आया हूँ। अष्टकुल के गण-प्रतिनिधि ब्राह्मण को अन्न दें तो यह ब्राह्मण राजसेवा करने को प्रस्तुत है।"

विदेश-सचिव नागसेन ने आसन से उठकर कहा—"आर्य अपने व्यक्तित्व में ही सुप्रतिष्ठित है। यह मगध का दुर्भाग्य है कि उसे आपकी राजसेवा से वंचित रहना पडा है, परन्तु राजसेवा के प्रतिदान का कोई प्रश्न नही है, वज्जीसंघ आर्य का वज्जी भूमि में सम्मान्य अतिथि के रूप में स्वागत करता है।"

"सुनकर आश्वस्त हुआ, अष्टकुल का कल्याण हो, यद्यपि मै ब्राह्मण हूँ किन्तु भिक्षोपजीवी नही, वज्जीगण यदि राजसेवा लेकर अन्न दें तो मै लूँगा नही तो नही।"

"यह आर्य का गौरव है, परन्तु आर्य यह भली भाति जानते है कि वज्जी-शासन में मान्त्र अष्टकुल के प्रतिनिधि ही सक्रिय रह सकते है। वर्णधर्मी आर्य नही। यह हमारी प्राचीन मर्यादा है।" विदेश सचिव नाग-सेन ने कहा।

"यह मैं जानता हूँ, आयुष्मान् को सशंक और सावधान रहना चाहिए। यह भी ठीक है। परन्तु शासन में सक्रिय होने की मेरी अभिलाषा नहीं है। मैं तो अन्न का मूल्य देना चाहता हूँ।

"क्यों आर्य यह आज्ञा करते हैं, जब कि वज्जियों का यह संघ आर्य को सम्मान्य अतिथि के रूप में स्वागत करने को प्रस्तुत है।"

"ठीक है, परन्तु आयुष्मान् पूज्य-पूजन की भी एक मर्यादा है। मैं अतिथि तो हूँ नहीं, जीविकान्वेषी हूँ। अर्थी हूँ।"

"तो आर्य प्रसन्न हों, वज्जीगण संघ को आशीर्वाद प्रदान करते रहें, आर्य की यही यथेष्ट राजसेवा होगी।"

"भद्र मैं राजपुरुष प्रथम हूँ और ब्राह्मण पीछे। मैं आशीर्वाद देने का अभ्यासी नहीं, राजचक्र चलाने का अभ्यासी हूँ।"

जयराज सन्धिविग्राहिक ने गणपति सुनंद का संकेत पाकर खड़े होकर कहा—

"तब आर्य यदि वज्जीगण के समक्ष मगध-सम्राट् पर आर्य के प्रति-कृतघ्नता अथवा अनाचार का अभियोग उपस्थित करते हैं तो गण सन्निपात उसपर विचार करने को प्रस्तुत है।"

"मगध-सम्राट् वज्जीगण का विषय नही है। आयुष्मान्, इसलिये वज्जीगण सन्निपात इस सम्बन्ध में विचार नहीं कर सकता। फिर मेरा कोई अभियोग ही नही है, मैं तो अन्न का इच्छुक हूँ।"

"तब यदि आर्य वज्जीसंघ में राजनियुक्त [हों और वज्जीसंघ यदि मगध पर अभियान करें तब आर्य कठिनाई में पड़ सकते है।"

"कठिनाई कैसी, आयुष्मान्"

"द्विविधा की, आर्य!"

"परन्तु वज्जीसंघ मगध पर अभियान क्यों करेगा? उसकी तो साम्राज्यलिप्सा नहीं है।"

"नहीं, वज्जीसंघ न अभियान करें, मागध ही वज्जी पर अभियान करें तब आर्य क्या करेंगे?"

"जो उचित होगा वही"

"और औचित्य का मापदण्ड क्या होगा? विवेक, न्याय या राजनीति?"

"राजनीति आयुष्मान्!"

"किसकी राजनीति आर्य?" जयराज ने हँसकर कहा।

कुटिल ब्राह्मण क्रोध से थर थर काँपने लगा। उसने कहा—

"मेरी ही राजनीति आयुष्मान्"

"तो आर्य क्या ऐसी आज्ञा देते है कि भविष्य में वज्जियों का गण-शासन आर्य की राजनीति का अनुगमन करे?"

"यदि यह ब्राह्मण उसके लिये हितकर होगा तो उसे ऐसा ही करना चाहिए।"

"तो आर्य, यह गण-नियम के विपरीत है, यह साम्राज्य-विधान में सुकर हैं, गण-शासन में नहीं; गणशासन सन्निपात के छन्द के आधार पर ही शासित हो सकता है।"

"तो वज्जीसंघ आश्रित ब्राह्मण को आश्रय नहीं दे सकता है?"

अब गणपति सुनन्द ने कहा—

"आर्य, आप भली भांति जानते हैं कि हमारा यह संघशासित तन्त्र सर्वसम्मति से चलता है इसलिये इस सम्बन्ध में सोच विचार कर जैसा उचित होगा आर्य से परामर्श करके निर्णय कर लिया जायगा। तब तक आर्य वज्जी गणसंघ के प्रतिष्ठित अतिथि के रूप में रहकर संघ की प्रतिष्ठा-वृद्धि करें।"

"तो गणपति राजन्य, ऐसा ही हो।"

आर्य वर्षकार ने हाथ ऊँचा करके कहा—"तब तक मै दक्षिण-ब्राह्मण-कुंडग्राम-सन्निवेश में आयुष्मान् सोमिल श्रोत्रिय का अन्तेवासी होकर ठहरता हूँ।"

विदेश-सचिव ने कहा—"जिसमें आर्य प्रसन्न हों, तो—तब तक आर्य की सेवा के लिये सहस्त्र स्वर्ण प्रतिदिन और यथेष्ट दास-दासी संघ की ओर से नियुक्त की जाती है।"

वर्षकार ने मौन हो स्वीकार किया। और उन्होंने संथागार त्यागा।

१०८

भद्रनन्दिनी

बहुत दिन बाद वैशाली में अकस्मात् फिर उत्तेजना फैल गई। उत्तेजना के विषय दो थे, एक मगध महामात्य आर्य बर्षकार का मगध-सम्राट् से अनादृत होकर वैशाली में आना। दूसरा विदिशा की अपूर्व सुन्दरी वेश्या भद्रनन्दिनी का वैशाली में बस जाना। जिस प्रकार आर्य वर्षकार उस समय भूखण्ड पर विश्वविश्रुत राजनीति के पण्डित प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार भद्रनन्दिनी रूप यौवन और वैभव में अपूर्व थी। देखते ही देखते उसने अपने वैभव का ऐसा विस्तार कर लिया कि अम्बपाली की आभा भी फीकी पड़ गई। नगर भर में यह प्रसिद्ध हो गया कि भद्रनन्दिनी विदिशा के अधिपति नागराज शेष के पुत्र पुरञ्जय भोगी की अन्तेवासिनी थी। वह नागकुमार भोगी के असद्-व्यवहार से कुपित होकर वैशाली आई है। उसके पास अगणित रत्न स्वर्ण और सम्पदा है। उसका रूप अमानुषिक है और उसका नृत्य मनुष्य को मूर्छित कर देता है, सभी महारागों और ध्वनिवाद्यों में उसकी असाधारण गति है, वह चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं की पूर्ण ज्ञाता, सर्वशास्त्र-निष्णाता दिव्य सुन्दरी है। वह अपने यहाँ आने वाले अतिथि से केवल नृत्य पान का सौ सुवर्ण लेती है, वह अपने को नागराज भोगी पुरञ्जय की दत्ता कहती है और किसी पुरुष को शरीर-स्पर्श नहीं करने देती। वैशाली के श्रीमन्त सेट्ठिपुत्र और युवक सामन्त उसे देखकर ही उन्मत्त हो जाते हैं। उसका असाधारण रूप और सम्पदा ही नहीं, उसका वैचित्र्य भी लोगों में कौतूहल की उत्पत्ति करता है। नागपत्नी को देखने की सभी अभिलाषा रखते हैं। जो देख पाते है वे उसपर तन मन वारने को विवश हो जाते हैं, परन्तु किसी भी मूल्य पर वह किसी पुरुष को

अपना स्पर्श नहीं करने देती है। उसकी यह विशेषता नगर भर में फैल गई है। लोग कहते हैं इसने देवी अम्बपाली से स्पर्धा की है, कुछ कहते हैं नागराज ने देवी अम्बपाली से प्रणयाभिलाषा प्रकट की थी सो देवी से अनादृत होकर उनका मानभंजन करने को यह दिव्याँगना छद्म-वेश में भेजी है। नन्दनन्दिनी का द्वार सदा बन्द रहता था। द्वार पर सशस्त्र पहरा भी रहता था, पहरे के बीच में एक बहुत भारी दर्दुर रखा हुआ था जो आगन्तुक सौ सुवर्ण देता, वही दर्दुर पर डंका बजाता, प्रहरी उसे महाप्रतिहार को सौंप देता और वह आगन्तुक को भद्र-नन्दिनी के विलासकक्ष में ले जाता जहाँ सुरा सुन्दरियाँ और कोमल उपाधान उसे प्रस्तुत किए जाते। एक नियम और था, सौ स्वर्ण लेकर एक रात्रि में वह केवल एक ही अतिथि का मनोरंजन करती थी। तरुण श्रीमन्तों का सामूहिक स्वागत करने का उसका नियम न था।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी थी। रात अंधेरी थी, पर आकाश स्वच्छ था। उसमें अगणित तारे चमक रहे थे। माघ बीत रहा था। सर्दी काफी थी। नगर की गलियों में सन्नाटा था। डेढ़ पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। एक तरुण अश्व पर सवार धीर मन्थर गति से उन सूनी वीथि-काओं में जा रहा था। भद्रनन्दिनी के सिंह-द्वार पर आकर वह अश्व से नीचे उतर पड़ा। ड्योढ़ी के एक दास ने आगे बढकर अश्व थाम लिया। प्रहरी के प्रधान ने आगे बढ़कर कहा—"भन्ते सेनापति, आप चाहते क्या है?"

जिस तरुण को सेनापति कहकर सम्बोधन किया गया था, उसने उस प्रतिष्ठित सम्बोधन से कुछ भी प्रसन्न न होकर एक भारी सी किन्तु छोटी थैली उसकी ओर फेंक दी और आगे बढ़कर डंका उठा दर्दुर पर चोट की, दूर २ तक वह शब्द गूँज उठा, प्रहरी ने आदर-पूर्वक सिर झुका कर द्वार खोल दिया।

प्रहरी विदेशी था। वह जितना शरीर से स्थूल था वैसी ही स्थूल उसकी बुद्धि भी थी। उसने डरते २ झुक कर पूछा—"सौ ही सुवर्ण

है भन्ते, कम तो नहीं"

"कुछ अधिक ही हैं। सौ तेरी स्वामिनी के लिए और शेष तेरे लिए मित्र" तरुण ने मुस्करा कर कहा—

प्रहरी खुश हो गया। उसने हँस कर कहा—"आपका कल्याण हो भद्र, यह मार्ग है, आइए।"

भीतर अलिन्द में जाकर उसने महाप्रतिहार पीड़ को पुकारा। प्रतिहार अतिथि को भद्रनन्दिनी के निकट ले गया। भद्रनन्दिनी ने उसे ले जाकर बहुमूल्य आसन पर बैठाया, और हँस कर कहा—"भद्र, कैसा सुख चाहते हैं पान, नृत्य, गीत, द्यूत, प्रहसन?"

"नहीं प्रिये, केवल तुम्हारा एकान्त सहवास, तुम्हारा मृदु मधुर वार्तालाप।"

"तो भन्ते ऐसा ही हो" उसने दासियों की ओर देखा। दासियाँ वहाँ से चली गईं, द्वारों और गवाक्षों पर पर्दे खींच दिए गए। एक दासी एक स्वर्ण-पात्र में गौडीय स्फटिक पानपात्र और बहुत-से स्वादिष्ट भुने शूल्य मांस शृंगाटक रख गई।

भद्रनन्दिनी ने कहा—"अब और तुम्हारा क्या प्रिय करूँ प्रिय?"

"मेरे निकट आकर बैठो प्रिये!"

नन्दिनी ने पास बैठ कर हंसते-हंसते कहा—"किन्तु भद्र! तुम जानते हो मैं नागपत्नी हूं, अंग से अस्पर्श्य हूँ।"

"सो मैं जानता हूँ प्रिये, केवल तुम्हारे वचनामृत का ही आनन्द लाभ चाहता हूं।"

नन्दिनी ने मद्यपात्र में सुवासित गौड़ीय उँड़ेलते हुए पूछा—

"किन्तु भद्र, यह मुझे किस महाभाग का सत्कार का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है?"

"वैशाली के एक नगण्य नागरिक का भद्रे!"

"वैशाली में ऐसे कितने नगण्य नागरिक हैं प्रिय, जो एक वारांगना से केवल वाग्विलास करने की शुल्क सौ सुवर्ण दे सकते हैं!"

"यह तो भद्रे, गणिकाध्यक्ष सम्भवतः बता सके, परन्तु उसके पास भी आगन्तुकों का हिसाब किताब तो न होगा।"

"जाने दो प्रिय, किन्तु इस प्रिय-दर्शन नगण्य नागरिक का नाम क्या है?"

"विदिशा की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी आज के शुभ मुहूर्त में उसका जो भी नाम निर्धारित करे वही।"

"उस नाम को वैशाली का गण-पद स्वीकार कर लेगा?"

"न करे, उसकी क्या चिन्ता, किन्तु विदिशा की सुन्दरी के आवास के भीतर तो उसी नाम का डंका बजेगा।"

नन्दिनी ने हँसकर मद्यपात्र, युवक के हाथ में दे दिया और हँसते हुए कहा—"समझ गई प्रिय आप छद्म-नाम धारण किया चाहते है किन्तु इसका कारण?"

"यदि यही सत्य है तो छद्म-नाम धारण करने का कारण भी ऐसा नाम धारण करने वाला भली भांति जानता है" उसने मद्य पीते हुए कहा।

"ओह, तो मित्र, तुम कोरे तार्किक ही नहीं हो?"

"नहीं प्रिये, मै तुम्हारा आतुर प्रेमी भी हूँ" उसने खाली पात्र देते हुए कहा।

नन्दिनी जोर से हँस दी और पात्र फिर से भरते हुए बोली—

"सत्य है मित्र, तुम्हारे प्रेम का सब रहस्य तुम्हारी आँखों और सतर्क वाणी में दीख रहा है" उसने दूसरा चषक बढ़ाया।

चषक लेकर हँसते हुए युवक ने कहा—"इसी से प्रिये, तुम चषक पर चषक देकर मेरे नेत्रों का रहस्य और वाणी की सतर्कता को धो बहाना चाहती हो?"

"नहीं भद्र, मेरी यह सामर्थ्य नहीं, परन्तु गणिका के आवास में आकर भी पान करने में इतना सावधान पुरुष वैशाली ही में देखा।"

"मगध में नहीं देखा प्रिये?" उसने गटागट मद्य पीकर चषक नन्दिनी

को दिया। नन्दिनी विचलित हुई। रिक्त चषक लेकर क्षण भर उसने युवक की ओर घूर कर देखा।

युवक ने हँसकर कहा—"यदि कुछ असंयत हो उठा होऊँ तो यह तुम्हारी मद्य का दोष है, किन्तु क्या तुम्हे मैने असन्तुष्ट कर दिया भद्रे?"

"नहीं भद्र, किन्तु म मगध कभी नहीं गई।"

"ओह, तो निश्चय ही मुझे भ्रम हुआ, नीचे तुम्हारे प्रहरियों के नोकदार शिरस्त्राण मागध व्रात्यों के समान थे—इसी से।" उसने मुस्करा कर तीखी दृष्टि से युवती को देखा।

युवती क्षण भर को चंचल हुई, फिर हंसती हुई बोली–हाँ उनमें एक दो मागध हैं किन्तु....."

बीच ही में उस युवक ने हँसते हुए कहा—"समझ गया प्रिये, उन्हीं में से किसी एक ने राजगृही के चतुर शिल्पी का बना यह कुण्डल तुम्हें भेंट किया होगा।"

कुण्डनी के होठ सूख गए। हठात् उसके दोनों हाथ अपने कानों में लटकते हुए हीरे के बहुमूल्य कुण्डलों की ओर उठ गए। उसने हाथों से कुण्डल ढांप लिए।

युवक ठठा कर हँस पड़ा। हाथ बढ़ाकर उसने मद्यपात्र उठा कर आकण्ठ भरा और नन्दिनी की ओर बढ़ाकर कहा—"पिओ प्रिये, इस नगण्य नागरिक के लिए एक चषक"

कुण्डनी हँस दी। पात्र हाथ में लेकर उसने वंकिम कटाक्ष युवक पर पात किया, फिर कहा—"बड़े धूर्त हो भद्र." और मद्य पी गई।

युवक ने हाथ बढ़ाकर जूठा पात्र लेते हुए कहा—

"आप्यायित हुआ प्रिये!"

"क्या गाली खाकर?"

"नहीं पान देकर"

नन्दिनी न दूसरा चषक लेकर उसमें मद्य भरा और युवक की

ओर बढ़ाकर कहा—"अब औरभी अप्यायित होओ प्रिय!"

"नागपत्नी की आज्ञा शिरोधार्य", उसने पात्र पीकर कहा—"तो प्रिये, अब मैं चला।"

"किन्तु क्या मैं तुम्हारा और कुछ प्रिय, नहीं कर सकती?"

"क्यों नहीं प्रिये, इस चिरदास को स्मरण रख कर"

युवक उठ खड़ा हुआ। नन्दिनी ने ताम्बूल-दान किया, गन्ध-लेपन किया और फिर उसके उत्तरीय के छोर को पकड़ कर कहा—"फिर कब आओगे भद्र?"

"किसी भी दिन, नागदर्शन करने"

युवक हँस कर चल दिया। नन्दिनी अवाक् प्रिय खड़ी रह गई।

युवक बाहर आ दास को एक स्वर्ण दिया और अश्व पर सवार हो तेजी से चल दिया। नन्दिनी गवाक्ष में से उसका जाना देखती रही। वह कुछ देर चुपचाप कुछ सोचती रही। फिर उसने दासी को बुलाकर कहा—"मैं अभी नन्दन साहु को देखा चाहती हूँ"

"किन्तु भद्रे, रात तीन पहर बीत रही है नन्दन साहु को उसके घर जाकर इस समय जगाने में बहुत खटपट होगी।"

"नहीं, नहीं, तू पुष्करिणी के दक्षिण तीर पर जाकर वहीं गीत गा, जो तूने सीखा है, साहु के घर के पीछे जो गवाक्ष है वहीं वह सोता है। तेरा गीत सुनते ही वह यहाँ आयेगा और कुछ करना नहीं होगा"

"किन्तु भद्रे, यदि प्रहरी पकड़ लें?"

"तो कहना—भिखारिणी हूँ, भिक्षा दो। इच्छा हो तो वे भी गीत सुनें" दासी ने फिर कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप गुप्त द्वार से बाहर चली गई।

नन्दिनी ने अपने भीतरी कक्ष में जा यत्न से एक भोजपत्र पर कुछ पंक्तियाँ लिखीं और उसे मोड़कर उसपर गीली मिट्टी की मुहर कर दी। फिर वह चिन्तित होकर साहु के आने की प्रतीक्षा करने लगी।

१०९

नन्दन साहु

वैशाली के अन्तरायण में नन्दन साहु की हट्ट खूब प्रसिद्ध थी। उसकी हट्ट में जीवन-सामग्री की सभी जिन्स बिक्री होती थी। हल्दी मिरचा और लसुन से लेकर अन्तःपुर के सुरभित करने योग्य सुदरी दासियों तक का वहाँ क्रय-विक्रय होता था। प्रातः सूर्योदय से लेकर रात के दो पहर तक उसकी दुकान पर ग्राहकों की आवा-जाही रहती थी। बढ़िया और काम-लायक सौदों की बिक्री का समय रात्रि का पिछला पहर ही होता था। उसकी विस्तृत दुकान में अनेक जिन्स अव्यवस्थित रूप से भरी रहती थी। उनकी कभी सफाई न होती थी। रात को एक दीपक हट्ट में जलता रहता था, जिसकी पीली और धीमी ज्योति में हट्ट की सभी वस्तु काँपती हुई सी प्रतीत होती थी। हट्ट, हट्ट का स्वामी, हट्ट का सारा सामान एक अशुभ और बीभत्स-सा लगता था, परन्तु गर्ज़ू ग्राहक फिर भी वहाँ आते ही थे। एक पण में सात मसाले के गाहक से लेकर सौ दाम तक के सम्भ्रान्त ग्राहक वहाँ बने ही रहते थे।

इस हट्ट में भरी हुई असंख्य निर्जीव वस्तुओं में चार सजीव वस्तु थी, चारों में एक स्वयं गृहपति नन्दन साहु, दूसरी उसकी पत्नी 'भद्रा', तीसरी बेटी सोभा और चौथा पुत्र दामक। साहु की आयु साठ को पार कर गई थी, उसके गंजे सिर पर गिनती के दो चार बाल थे जो खड़े रहते थे। सम्भव है—उसने जीवन भर पेट भर कर भोजन नहीं किया था। इसी से उसका शरीर एक प्रकार से कंकाल मात्र था। वह कमर में एक मैली धोती लपेटे प्रातःकाल से आधी रात तक अपने थड़े तक

बैठा बैठा तोलता रहता था। कभी वह रोगी नहीं हुआ, कभी अपने आसन से अनुपस्थित नही हुआ, कभी उसने किसी पर क्रोध नही किया, सबसे हँसकर बोलता , सावधानी से सौदा बेचता और कमाई के पणों को गिन २ कर सहंजना उसके जीवन का नित्यकर्म था। वह मितभाषी भी पूरा था, और बात का धनी भी। वह छोटे बड़े सबकी आवश्यकताएं पूरा किया करता था। इसी से वैशाली में सब कोई नन्दन साहु के नाम से परिचित था। परन्तु इन सब व्यवसायो के अतिरिक्त उसका और भी गूढ़ एक व्यवसाय था वह कोई नहीं जानता था।

---

*

११०

दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश

वैशाली नगर का बड़ा भारी विस्तार था। उसके अन्तरायण में तीन सन्निवेश थे जो अनुक्रम से उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ के नाम से विख्यात थे। उत्तम सन्निवेश में स्वर्ण-कलश वाले सात सहस्त्र हर्म्य थे। यहाँ केवल सेटिठ गृहपति और निगमो का निवास था। मध्यम सन्निवेश में चौदह सहस्त्र चाँदी के कलश वाली पक्की अट्टालिकाएं थी। इनमें विविध व्यापार करने वाले महाजन और मध्यम वित्त के श्रेणिक जन रहते थे। तीसरे कनिष्ठ सन्निवेश में ताँबे के कलश कंगूर वाले इक्कीस सहस्र घर थे। जहाँ वैशाली के अन्य पौर नागरिक उपजीवी जन रहते थे।

इस अन्तरायण के सिवा वैशाली के उत्तर-पूर्व में दो उपनगर और थे। एक तो उत्तर-दक्षिण-कुण्डपुर-सन्निवेश कहा जाता था। यह ज्ञातृवंशीय क्षत्रियों का सन्निवेश था। इसके निकट उनका कोल्लाग-सन्निवेश था जिसे छूता हुआ ज्ञातृ-क्षत्रियों का प्रसिद्ध द्युतिपलाश नामक उद्यान एवं चैत्य था। दूसरा उपनिवेश का दूसरा भाग दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश कहलाता था। इसमें केवल श्रोत्रिय ब्राह्मणों के घर थे, जो परम्परा से वहीं पीढ़ी दर पीढ़ी रहते चले आए थे। वैशाली की पश्चिम दिशा में वाणिज्य-ग्राम था। इसमें विश जन और कामकर रहते थे, जो अधिकतर कृषि और पशुपालन का धन्धा करते थे। इस सम्पूर्ण वस्ती को वैशाली नगरी कहा जाता था।

दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश में सोमल ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण धनिक, सम्पन्न और पण्डित था। वह ऋगादि चारों वेदों

का साँगोपाँग ज्ञाता और ब्राह्मण कार्य में निपुण था। बहुत से सेट्ठि जन और राजा उसके शिष्य थे। बहुत से बटुक देश-देशान्तरों मे आ आकर उसके निकट विद्यार्जन करते थे। वह विख्यात काम्पिल्य शाखा का यजुर्वेदीय ब्राह्मण था। वेदाध्यायियों से उसका घर भरा रहता था। उसके घर की शुक-सारिकाएं ऋग्वेद की ऋचाएं उच्चारण करती थी। वे पद-पद पर विद्यार्थियों के अशुद्ध पाठ को सुधारा करती थीं। उसका घर यज्ञ-धूम से निरन्तर धूमायित रहता था। सम्पूर्ण दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश में यह बात प्रसिद्ध थी कि श्रोत्रिय सोमिल के ऋषिकल्प पिता ऋषिभद्र के होमकालीन श्रमसीकर साक्षात् वीणाधारिणी सरस्वती अपने हाथों से पोंछती थी। श्रोत्रिय सोमल ऊषाकाल ही में हवन करने बैठ जाते; दो दण्ड दिन चढ़े तक वे यज्ञ करते, बलि देते, फिर धुएं से लाल हुई आँखों और पसीने से भरा शरीर लिए, अध्यापन के लिए कुशासन पर बैठ जाते। वेदपाठी होने के साथ ही वे अपने युग के दिग्गज तार्किक थे। उनकी विद्वत्ता और ब्राह्मण्य का वैशाली के गण-प्रतिनिधियो पर बड़ा प्रभाव था। राजवर्गी तथा जानपदीय सभी उनका मान करते थे।

इन्ही सोमिल ब्राह्मण के यहाँ मगध के निर्वासित और पदच्युत महामात्य कूटनीति के आगार आर्य वर्षकार ने आतिथ्य ग्रहण कर निवास किया था। विज्ञापना के अनुसार लिच्छवि-राजकीय-विभाग से उनके लिये नित्य एक सहस्र सुवर्ण और आहार्य सामग्री आती। नगर के अन्य गण्य मान्य सेट्ठि सामन्त भी इस ब्राह्मण के सत्कार के लिए वस्त्र, फल, स्वर्ण, मान्यपात्र निरन्तर भेजते रहते। पर यह तेजस्वी ब्राह्मण इस सब उपानय सामग्री को छूता भी न था। वह उस सम्पूर्ण सामग्री को उसी समय ब्राह्मणों और याचकों में बाँट देता था। इससे सूर्योदय के पूर्व ही से सोमिल ब्राह्मण के द्वार पर याचकों, ब्राह्मणों और बटुकों का मेला लग जाता था।

देखते ही देखते इस तेजपुंज ब्राह्मण के प्रति-दिन सहस्त्र सुवर्ण दान

माहात्म्य आर वाशष्ठ्य की चर्चा वैशाली ही में नहीं, आस-पास दूर-दूर तक फैल चली। याचक लोग याचना करने और भद्र संभ्रान्त जन इस ब्राह्मण का दर्शन करने दूर-दूर से आने लगे। ब्राह्मण स्वच्छ जनेऊ धारण कर विशाल ललाट पर श्वेतचन्दन का लेप लगा एक कुशासन पर बहुधा मौन बैठा रहता। एक उत्तरीय मात्र उसके शरीर पर रहता। वह बहुत कम भाषण करता, तथा सोमिल की यज्ञशाला के एक प्रान्त में एक काष्ठफलक पर रात्रि को सोता था। वह केवल एक बार हवि-ष्यान्न आहार करता। वह यज्ञशाला के प्रान्त में बनी उस घास की कुटीर के बाहर केवल एक बार शौच कर्म के लिए ही निकलता था।

सहस्र सुवर्ण नित्य दान देने की चर्चा फैलते ही अन्य श्रीमन्त भक्तों ने भी सुवर्ण भेंट देना प्रारम्भ किया--सो कभी कभी तो प्रतिदिन दस सहस्र सुवर्ण नित्य दान मिलने लगा। ब्राह्मण याचक आर्य वर्षकार का जय जयकार करने लगे और अनेक सत्य-असत्य, कल्पित-अकल्पित अद्भुत कथाएं लोग उसके सम्बन्ध में कहने लगे। बहुमूल्य उपानय के समान ही यह ब्राह्मण भक्तों की तथा राजदत्त सेवा भी नही स्वीकार करता था। वज्जीगण के वैदेशिक खाते से जो दास दासी और कर्णिक सेवा में भेजे गए थे वे बैठे २ आनन्द करते। ब्राह्मण उनसे वार्ता तक नहीं करते, पास तक आने नहीं देते। केवल ब्राह्मण सोमिल ही आर्य वर्षकार के निकट जा पाता, वार्तालाप कर पाता। वही उन्हें अपने हाथ से मध्यान्होत्तर हविष्यान्न भोजन कराता--जो सूद-पाचकों द्वारा नहीं स्वयं गृहिणी सोमिल की ब्राह्मणी रसोड़े से पृथक् अत्यन्त साव-धानी से तैयार करती थी; और जिसे सोमिल-दम्पत्ति को छोड़ कोई दूसरा छू या देख भी नहीं सकता था। ऐसी ही अद्भुत दिनचर्या इस पदच्युत आमात्य ब्राह्मण की वैशाली में चल रही थी।

१११

हरिकेशीबल

इसी समय वैशाली मे एक और नवीन प्राणी का आगमन हुआ था। यह एक आजीवक परिव्राजक था। वह अत्यन्त लम्बा, काला, कुरूप और एक आँख से काणा था। उसकी अवस्था बहुत थी—वह अति कृशकाय था; परन्तु उसकी दृष्टि पैनी, वाणी सतेज और शरीर का गठन दृढ था। वह कभी स्नान नहीं करता था इससे उसका शरीर अत्यन्त मलीन और दूषित दीख पडता था। उसने अंग पर पाँशु-कूलिक धारण किए थे, जो श्मशान मे मुर्दों पर से उतार कर फेंक दिए गए थे वे भी फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गए थे और गंदे होकर मिट्टी के रंग मे मिल गए थे।

यह आजीवक निर्द्वन्द्व विचरण करता। गृहस्थो के द्वार पर, वीथी हट्ट पर, राजद्वार और राजपथ पर सर्वत्र अबाध रूप से निरन्तर, घूमता रहता था। उसका सोने, बैठने, ठहरने का कोई स्थान न था। उसकी जीवन यात्रा मे सहायक सामग्री भी कुछ उसके निकट न थी। इस प्रकार यह कृशकाय, घृणित और कुत्सित मलिन भूत-सा व्यक्ति जहाँ जाता वही लोग उसे तिरस्कार-पूर्वक दुत्कार देते, उसे अशुभ रूप समझते। परन्तु उसे इस तिरस्कार घृणा की कोई चिन्ता न थी। वह जहाँ से भिक्षा माँगता, वहाँ जाकर कहता मैं चाण्डालकुलोत्पन्न हरि-केशीबल हूं। मैं सर्वत्यागी संयमी ब्रह्मचारी हूँ। मैं अपने हाथ से अन्न नहीं राँधता, मुझे भिक्षा दो। भिक्षा मेरी जीविका है।' बहुत लोग उसे मारने दौड़ते, बहुत मार बैठते, बहुत उसे दुत्कार कर भगा देते; पर वह किसी पर रोष नहीं करता था। वह मार, तिरस्कार और धक्के

खाकर हँसता हुआ दूसरे द्वार पर वही शब्द कह कर भिक्षा माँगता था। कभी कभी लोग उसपर दया करके उसे कुछ दे भी देते थे; पर उसे बहुधा निराहार किसी वृक्ष के नीचे पड़ा रहना पड़ता था।

वह घूमता हुआ एक दिन कुण्ड ग्राम के दक्षिण-ब्राह्मण-सन्निवेश में सोमिल श्रोत्रिय के द्वार पर जा पहुँचा। वहाँ ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों श्रोत्रियों और वेदपाठी बटुकों की भीड़ लगी थी। आर्य वर्षकार एक छप्पर के नीचे बाँस की बनी मीड पर बैठे अपनी आँखों स्वर्ण, वस्त्र बाँटना देख रहे थे। अनेक श्रोत्रिय बटुक इस आयोजन में हाथ बटा रहे थे। इसी समय आजीवक हरिकेशीबल उन ब्राह्मणों की भीड में मिलकर जा खड़ा हुआ।

इस अशुभ, अशुचि, घृणित श्मशान से उठाए हुए चीथड़े अंग पर लपेटे, काणे मनुष्य को देखकर सब ब्राह्मण, बटुक, श्रोत्रिय दूर हट गए। बहुतों ने मारने को दण्ड हाथ में लेकर कहा—

"तू कौन है रे भाकुटिक, कहाँ से तू ब्राह्मणों में घुस आया? भाग यहाँ से!"

उसने सहज शान्त स्वर में कहा—"मैं चाण्डाल-कुलोत्पन्न हरिकेशी-बल हूँ। मैं त्यागी ब्रह्मचारी हूँ। मैं अपना अन्न राँधता नहीं। भिक्षा मेरी जीविका है, मुझे भिक्षा दो।"

बहुत ब्राह्मण अपना स्वच्छ जनेऊ हाथ में ले लेकर उसे मारने दौडे। भाग रे चाण्डाल भाग, भाकुटिक, ब्राह्मणों में घुस आया पलित।

परन्तु हरिकेशी भागा नहीं। विचलित भी नहीं हुआ। उसने कहा—'मैं संयमी हूँ, दूसरे लोग अपने लिए जो अन्न राँधते है, उसी में से बचा हुआ थोड़ा अन्न मैं भिक्षाकाल में माँग लेता हूँ। आप लोग यहाँ याचकों को बहुत स्वर्ण, वस्त्र, अन्न दे रहे है। मुझे स्वर्ण नहीं चाहिए उससे मेरा कोई काम नहीं सरता। वस्त्र मैं श्मशान से उठा लाता हूँ नहीं तो दिगम्बर आजीवक हूँ अन्न चाहिए। मुझे अन्न दो। आपके

पास बहुत अन्न है, आप लोग खा पी रहे हैं, मुझे भी दो, थोड़ा ही दो मैं तपस्वी हूँ। ऐसा समझ कर जो बच गया हो वही दो।"

एक ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे मूर्ख यहाँ ब्राह्मणों के लिए अन्न तैयार होता है, चाण्डालों के लिये नहीं, भाग यहाँ से।"

"अतिवृष्टि हो या अल्पवृष्टि, तो भी कृषक ऊँची नीची सभी भूमि में बीज बोता है, और आशा करता है खेत में अन्न पाक होगा; उसी भांति तुम भी मुझे दान दो। मुझ जैसे तुच्छ चाण्डाल मुनि को अन्न दान करने से तुम्हें पुण्यलाभ होगा।"

इसपर बहुत से ब्राह्मण एक बार ही आपे से बाहर होकर लगुड़-हस्त हो उसे मारने को दौडे। उन्होंने कहा—"अरे दुष्ट चाण्डाल, तू अपने को मुनि कहता है। नही जानता, पृथ्वी पर केवल हम ब्राह्मण ही दान पाने के प्रकृत-अधिकारी है, ब्राह्मणों ही को दिया दान पुण्य-फल देता है।'

"क्रोध-मान-हिसा-असत्य-चोरी और अपरिग्रह से युक्त जनों को जाति तथा विद्या से रहित ही जानना चाहिए। ऐसे जन दान के पात्र नहीं हो सकते, वेद पढ़कर भी उसके अभिप्राय को न जानने वाला पुरुष कोरा गाल बजाने वाला कहाता है, परन्तु ऊँच-नीच में समभाव रखने वाला मुनि दान के योग्य सत्पात्र है।"

"अरे काणे चाण्डाल, तू हम ब्राह्मणों के सम्मुख वेदपाठी ब्राह्मणों का निन्दा करता है, याद रख हमारा बचा हुआ यह जलपान भले ही सड जाय और फेंकना पड़े, पर तुझ निगंठ चाण्डाल को एक कण भी नहीं मिल सकता, तू भाग।"

'सत्यवृत्ति एवं समाधि सम्पन्न, मन वचन कार्य से असत्य प्रवृत्तियो मे युक्त, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी को यदि तुम अन्न नहीं दे सकते तो फिर तुम पुण्य भी नहीं पा सकते हो।"

इतनी देर बाद श्रोत्रिय सोमक ने चिल्लाकर कहा—

"अरे कोई है, इसे डण्डे मारकर भगाओ यहाँ से, मारो धक्के। गर्दन नापो गर्दन।"

इस पर कुछ बटुक दण्ड ले लेकर हरिकेशी को मारने लगे। हरिकेशी हँसता हुआ निष्क्रिय पिटता रहा।

इसी समय एक परम रूपवती षोड़सी बाला, बहुमूल्य मणि, सुवर्ण रत्न धारण किए, विविध बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित दौड़ी आई, और हरिकेशी के आगे दोनों हाथ फैलाकर खड़ी हो गई। उसे इस प्रकार खड़ी देख हरिकेशी को मारने वाला ब्राह्मण बटुक रुक गया। युवती ने कहा—"अलम् अलम्। मैं पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा महापद्म की पुत्री जयन्ती हूँ, मेरे पिता ने मुझे इस महात्मा को प्रदान कर दिया था, परन्तु इस इन्द्रिय-विजयी ने स्वीकार नहीं किया। यह महातपस्वी, उग्र ब्रह्मचारी घोर व्रत और दिव्य शक्तियों का प्रयोक्ता है। इसे क्रुद्ध या असन्तुष्ट न करना, नहीं तो यह तुम सब ब्राह्मणों को अपने तेज से जलाकार भस्म कर डालेगा।"

उस तथाकथित राजकुमारी षोड़शी बाला की ऐसी अतर्कित वाणी सुनकर सब ब्राह्मण आश्चर्य-चकित रह गए। बहुत-से तो भयभीत होकर उस घृणित चाण्डाल मुनि को देखने लगे। बहुत-से अब भी अपशब्द बकते रहे। इसी समय नन्दन साहु बहुत-सी खाद्य सामग्री गाड़ी में भरे वहाँ आ उपस्थित हुआ। जब से आर्य वर्षकार का वहाँ सदाव्रत लगा था—नन्दन साहु सब रसद पहुँचाता था। साहु ने ज्यों ही वहाँ खड़े निगंठ चाण्डाल मुनि को देखा—वह दौड़कर उसके चरणों में लोट गया। उस महाकलुषित अशुभ चाण्डाल के चरणों में साहु को लोटता हुआ देख ब्राह्मणों को और भी आश्चर्य हुआ। उनके आश्चर्य तथा भीति को बढ़ाता हुआ साहु बोला—"आर्यो, यह साक्षात् तेजःपुंज तपस्वी हैं। आप जानते नहीं है, मन्द कान्तार यक्ष की चौकी पर यह उग्र मुनि तप करते हैं। वह भीषण यक्ष, जिसके भय से वैशाली का कोई जन रात्रि को उस दिशा में नहीं जाता, इस मुनि की नित्य चरण

सेवा करता है। यह मैंने आँखों से देखा है। आपने अच्छा नहीं किया जो भिक्षाकाल में इस मुनि को असन्तुष्ट कर दिया। आर्यो, मेरा कहा मानो, आप इन महातेजःपुंज तपस्वी के चरणों में गिरकर इसकी शरण जाओ, नही तो आपकी जीवन-रक्षा ही कठिन हो जायगी।"

परन्तु साहु की ऐसी भयानक बात सुनकर भी ब्राह्मण जडवत् खड़े रह गए। इस काले चाण्डाल के चरण छूने का किसी को साहस नहीं हुआ।

साहु ने फिर चाण्डाल मुनि के चरण छुए और कहा—क्षमा करो, हे महापुरुष, इन ब्राह्मणों को जीवनदान दो। आइए समर्थ भदन्त, मेरे साथ मेरी भिक्षा ग्रहण कर मेरे कुल को कृतार्थ कीजिए।

इतना कहकर नन्दन-साहु उस काणे तपस्वी चाण्डाल को बडे आदर-पूर्वक राह-मार्ग की अपने उत्तरीय से झाडता हुआ अपने साथ ले चला। सब ब्राह्मण तथा पौरगण जडवत् इस व्यापार को देखते रहे। प्रतामी मगध महामात्य भी निश्चल बैठे देखते रह।

———

११२

चाण्डाल मुनि का कोप

हरिकेशीबल के वहाँ से चले जाने पर भी वह तथाकथित राज-कन्या वहां से नहीं गई। वह बहुत प्रकार से ब्राह्मणों को डराती धमकाती रही। उसने कहा—"हे ब्राह्मणों, तुमने अच्छा नहीं किया जो चाण्डाल मुनि को भिक्षा के काल में भिक्षा नही दी, उसे अपशब्द कहे, पीटा, उसे विरत किया। अब भी समय है तुम उसके चरणो में पड़कर प्राण-भिक्षा माँग लो नही तो मन्दकान्तार का यक्ष आज आप लोगों को जीवित नहीं छोड़ेगा।"

बहुत ब्राह्मण डर गये बहुत संदिग्ध भाव से उस रूपसी वाला की बात सुनते रहे। कुछ ही देर में वे सब फिर कहने लगे—"वाह यह सब माया यहाँ नही चलेगी। हम ब्राह्मण वेदपाठी क्या उस काणे चाण्डाल के पैर छएंगे?"

सुन्दरी क्रुद्ध होती हुई चली गई। बहुत जन रूपसी के रूप की और कुछ उसकी अद्भुत वार्ता की आलोचना करते रहे। भोजन की वेला हुई और ब्राह्मण पंक्ति में बैठे, ब्राह्मण-भोजन प्रारम्भ हुआ। भोजन के बाद स्वर्ण वस्त्र उन्हें बाँटे गए। परन्तु यह क्या आश्चर्य चमत्कार हुआ देखते ही देखते सभी ब्राह्मण उन्मत्तों की सी चेष्टा करने लगे। वे हँसने नाचने और अट्टहास करने लगे, अपने भूषण वस्त्र उतार-उतार कर नंगे हो वीभत्स और अश्लील चेष्टाएं करने लगे। बहुत लोग रक्तवमन कर मूर्छित होने लगे। बहुत जन कटे काष्ट के समान भूमि पर गिरकर. पटापट मरने लगे।

सोमिल ने भयभीत होकर आर्य वर्षकार से कहा—"आर्य, यह सब क्या हो गया?"

"ठीक नहीं हुआ सोमिल, चाण्डाल मुनि का कोप ब्राह्मणों पर हुआ। सम्भवतः यक्ष ने कुपित होकर ब्राह्मणों को मार डाला है।"

"तो आर्य, अब करना क्या चाहिए?"

"सोमिल, सब ब्राह्मणों को लेकर तुम नन्दन साहु के घर जाकर उस जितेन्द्रिय मुनि की स्तुति करके उसे प्रसन्न करो, इसी में कल्याण देखता हूँ।"

तब सोमिल बहुत से ब्राह्मणों को संग ले नन्दन साहु के घर पहुँचा--जहाँ वह कुत्सित चाण्डाल मुनि उच्चासन पर बैठा आनन्द से विविध पक्वान्न और मिष्टान्न खा रहा था। उसे देख हाथ जोड़कर सोमिल को आगे कर सब ब्राह्मणों ने कहा—

"हे भदन्त, हमें क्षमा करो, हम मूढ़ और अज्ञानी बालक के समान हैं। हम सब मिलकर आपकी चरण-वन्दना करते हैं। हे महाभाग, हम आपका पूजन करते हैं। आप हम सब ब्राह्मणों के पूज्य हो। यह हम विविध प्रकार के व्यंजन अन्न और पाक आपके लिये लाए हैं। इन्हें ग्रहण कर हमें कृतार्थ करो। हे भदन्त! हे महाभाग!! हम सब ब्राह्मण आपकी शरणागत हैं।"

चाण्डाल मुनि ने सुनकर कहा—"हे घमण्डी ब्राह्मणो! यदि सत्य ही तुम्हें अनुताप हुआ है तो जाओ मन्दकान्तार जा, साणकोष्ठक चैत्य में शूलपाणि यक्ष की अभ्यर्थना पूजन करो। उसे प्रसन्न करो। नहीं तो सम्पूर्ण वैशाली ही का नाश हो जायगा। हे ब्राह्मणो! अपने पाप से वैशाली को नष्ट न करो।"

यह सुनकर सब ब्राह्मण, बटुक ब्रह्मचारी, वेदपाठी श्रोत्रिय जन सहस्रों भीत-विस्मित, चमत्कृत नागर पौर जनों की भीड़ के साथ विकट विजन मदकान्तार वन में साणकोष्ठक चैत्य में जा अतिभयानक शूलपाणि यक्ष की मूर्ति के सामने भूमि पर गिरकर 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कहने लगे। तब उस अन्ध गुफा से मूर्ति के पीछे से रक्ताम्बर धारण किए और शूल हाथ में लिए वही सुन्दरी बाला बाहर आई और उच्च स्वर से कहने

लगी—"अरे मूढ़ जनो! मैं तुम सब ब्राह्मणों का आज भक्षण करूँगी। मैं यक्षिणी हूँ। तुमने ब्राह्मणत्व के दर्प में मनुष्य-मूर्ति का तिरस्कार किया है, क्या तुम नहीं जानते कि ब्राह्मण और चाण्डाल दोनों में एक ही जीवन सत्व-प्रवाहित है, दोनों का जन्म एक ही भांति होता है, एक ही भांति मृत्यु होती है, एक ही भाति सोते है, खाते हैं; इच्छा, द्वेष, प्रयत्न के वशीभूत हो सुख-दुख की अनुभूति करते है। अरे, मूर्खो! तुमने कहा था कि तुम्हारा तपःपूत अन्न फेक भले ही दिया जाय पर चाण्डाल याचक को नहीं मिलेगा? तुम मनुष्य-हिसक मनुष्य-शत्रु, मनुष्य-हित-बाधक हो, तुम मनुष्य-विरोधी हो। मरो तुम आज सब।"

"त्राहि माम्, त्राहि माम्, हे देवी, हे यक्षिणी मातः! हमारी रक्षा करो। हमने समझा था— हमारा पूत अन्न.....।"

"अरे मूर्खो तुम जल से शरीर की बाह्य शुद्धि करके उसे ही महत्व देते हो, तुम अन्तरात्मा की शुद्धि को नही जानते। अरे, यज्ञ करने वाले ब्राह्मणो, तुम दर्भ, यज्ञ, यूप, आहवनीय, गन्ध, तृण, पशुबलि, काष्ठ और अग्नि तक ही अपनी ज्ञानसत्ता को सीमित रखते हो; तुमने असत्य का, चोरी का, परिग्रह का त्याग नही किया। तुम स्वर्ण दक्षिणा और भोजन के लालची पेटू ब्राह्मण हो, तुम शरीर को महत्व देते हो, शरीर की सेवा में लगे रहते हो। तुम सच्चे और वास्तविक यज्ञ को नहीं जानते।"

"तो यक्षिणीमातः, हमें यज्ञ की दीक्षा दो।"

"अरे मूर्ख ब्राह्मणो! कष्टसहिष्णुता तप है, वही यज्ञाग्नि है, जीवन तत्व यज्ञाधिष्ठान है। मन वचन कर्म की एकता यज्ञाहुति है। कर्म समिधा है और आत्मातुष्टि पूर्णाहुति है। विश्व के प्राणियों में आत्मानुभूति का अनुभव कर समदर्शी होना स्वर्गप्राप्ति है।"

"धन्य है मातः! धन्य यक्षकुमारी!! हम ब्राह्मण तेरी शरण हैं, हमारी रक्षा करो! हमारी रक्षा करो!!"

"इसी प्रकार रुदन करते, वे सब ब्राह्मण फिर भूमि पर उस सुन्दरी

के चरणों में गिर गए। तब ब्राह्मण सोमिल के सिर को शूल से छूकर उस यक्षकुमारी ने कहा—"उठ रे ब्राह्मण, अभी तुम्हें जीवन दिया।"

इतना कह वह तेजी से यक्ष मूर्ति के पीछे गुहाद्वार में जा अन्धकार मे लोप हो गई; और वे ब्राह्मण तथा पौर जानपद भय, भक्ति और विविध भावनाओं से विमूढ़ बने नगर की ओर लौटे।

११३

सन्निपात-भेरी

फसल कट चुकी थी और वर्षा प्रारम्भ हुआ चाहती थी। वैशाली में युद्ध की चर्चा फैलती जाती थी। मगध-सम्राट् बिम्बसार की भीषण तैयारियों की सूचना प्रतिदिन चर ला रहे थे। परिषद की गणसंथा ने युद्ध-उद्वाहिका की विशिष्ट बैठक की सन्निपात-भेरी का आवाहन किया था। संथागार में वज्जीगण के अष्टकुल-प्रतिनिधि, नवमल्ल-संघों के और अठारह कासी-कोलों के गणराज्यों के राजप्रमुख आमन्त्रित थे। सम्पूर्ण उद्वाहिका सदस्य उपस्थित थे।

गणपति ने उद्वाहिका का उद्घाटन किया। उन्होंने खड़े होकर कहा—"भन्ते गण सुनें, आज जिस गुरुतर कार्य के लिए वज्जी-मल्ल-कासी-कोल, के गणराज्यों का यह संयुक्त सन्निपात हुआ है, उसे मैं गण को निवेदन करता हुँ। गण को भली भांति विदित है कि मगध-सम्राट् बिम्बसार वज्जी के अष्टकुलों के गणतन्त्र को नष्ट करने पर कटिबद्ध है। वज्जीगण संघ से मल्लों के नौ संघराज और कासीकोलों के १८ गणराज्यों का भाग्य भी बँधा है। गण को सन्धि वैग्राहिक आयुष्मान् जयराज बताएंगे कि शत्रु ने किन २ कूट चालों से हमें युद्ध के लिए विवश किया है। कोशलपति महाराज प्रसेनजित् से परास्त होकर सम्राट् बिम्बसार का उत्साह भंग हो जायगा हमने यही आशा की थी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। हमें अभी यह सुविधाएं है कि पड़ोसी राज्यों के समाचार हमें समय पर ठीक-ठीक मिल जाते ह। इसी से हमसे मगध की यह विकट समर-सज्जा छिपी नहीं रही है। भन्ते गण, आज वज्जीगण के

अष्टकुल पर और मल्ल, कासी, कोल गण राज्यों पर संकट के बादल मंडरा रहे है। और हम कह सकते है कि अब किसी भी क्षण वज्जीसंघ की राजधानी वैशाली पर मगधसेना का आक्रमण हो सकता है।"

इतना कहकर गणपति बैठ गए। पर राष्ट्रसचिव नागसेन ने अब खड़े होकर कहा—

"भन्ते गण सुनें, गणपति ने जो सत्य विभीषिकापूर्ण सूचना दी है उसकी गम्भीरता एक और घटना से और बढ़ जाती है। भन्ते गण जानते है कि कौशाम्बीनरेश शतानीक ने पूर्वकाल में चम्पा पर आक्रमण करके उसे आक्रान्त किया था, आप यह भी जानते है कि चम्पा की तटस्थता एवं मित्रता का वज्जी के साथी गण-राज्यों से कैसे गम्भीर स्वार्थ है। साथ ही यह बात भी नहीं भुलाई जा सकती कि चम्पा का स्वतन्त्र राज्य मगध की आँखों का पुराना शूल था, क्योंकि वह उसकी पूर्वी सीमा से मिला था। और जब तक वह स्वाधीन था, मगधसम्राट् बंग, कलिग की ओर आँख उठाकर भी नही देख सकता था। अंग, स्वंग, कलिग वास्तव में राजनैतिक एकता में पूरे आबद्ध है। इधर हमारा लगभग आधा वाणिज्य चम्पा ही के मार्ग से स्वर्णद्वीप और मलय-द्वीप-पुंज तक जाता है। इससे अंग की राजधानी चम्पा हमारे वाणिज्य ही के लिए केन्द्र नहीं थी, प्रत्युत मगध-सम्राट् के लिए भी कण्टक-रूप थी। इसी से कौशाम्बीपति उदयन से जब हमारी संधि हुई तब हमने उन्हें विवश किया था, कि वे अंग को स्वतन्त्र राज्य घोषित करें। और उन्होंने भी प्रसेनजित् और मगध-सम्राट के बीच व्यवधान रखने ही मे कल्याण समझ कर हमारा प्रस्ताव मान लिया था, और दधिवाहन को अंगपति मानकर चम्पा में उसका अभिषेक कर दिया था। अब मगध-सम्राट् ने चम्पा के इस दुर्बल असहाय राजा दधिवाहन को मार कर अंग-राज्य को मगध-साम्राज्य में मिला लिया है। इससे न केवल पूर्व में

बंग और कलिंग के लिए भय उत्पन्न हो गया है, प्रत्युत हमारा पूर्वी वाणिज्य ही समाप्त हो गया है।"

नागसेन यह कह कर बैठ गए। अब जयराज सन्धि-वैग्राहिक ने खड़े होकर कहा—

"भन्ते गण ने गणपति और परराष्ट्रसचिव के भाषण सुने, मैं गण का ध्यान अअपनेष्टकुल के संगठन और उस पर आने वाली विपत्ति की ओर आकर्षित किया चाहता हूँ। मगध-साम्राज्य में अब से कुछ ही वर्ष प्रथम केवल ८० सहस्र ग्राम थे; और उसकी परिधि २३ सौ मील थी। परन्तु आज उसका विस्तार आसमुद्र सम्पूर्ण भारतखण्ड पर है। उसके साम्राज्य में जो दो चार छिद्र है उनमें हमारे गणराज्य ही सबसे अधिक उसकी आँख में खटक रहे हैं। प्रसेनजित् ने उसे हरा दिया था, पर वास्तव में उसका कारण बन्धुलमल्ल और उसके पुत्रों का पराक्रम था। बूढ़ा कामुक प्रसेनजित् आज आकाश से टूटे तारे की भांति लोप हो गया। इसी से बिम्बसार को इतना साहस हुआ कि वह हम पर अभियान कर रहा है। अब तक हमारे अष्टकुलों में मिथिला के विदेह, कुण्डपुर के क्षत्रिय, कोल्लाग के उग्र, और ऐक्ष्वाकु लिच्छिवि आदि अपना ठीक संगठन बनाए रहे है। पावा और कुशीनारा के मल्लों के नौ गण-संघ भी आज हमारे साथ है, और कासी कोलों के अष्टदश गण-राज्य भी। इस प्रकार कासी-कोल-राज्य-वज्जी-गण-राज्य संघ और मल्ल-गण-राज्य-संघों का त्रिपुट हमारा सम्पूर्ण संगठन है। मगध-सम्राट् ने हमारे संयुक्त गण-राज्य पर अब अभियान किया है इसी से हमने आज मल्लों, अष्टकुल वज्जियों तथा कासी कोशलों के १८ गण राज्यों का यह सन्निपात भेरी का आवाहन है।"

इतना कहकर सन्धिवैग्राहिक जयराज कुछ देर चुप रहे, फिर उन्होंने उपस्थित गण सन्निपात की ओर देखकर कहा—

"भन्ते गण, आप जानते हैं कि आज भरतखण्ड में षोडश महाजन

पद हैं। इन सोड़श जनपदों से कासी, कोल, वज्जी, मल्ल इन चारों गण-संघों के छत्तीस राज्यों का हमारा संयुक्त सन्निपात एक ओर है। अब चेतिय के दोनों उपनिवेशों के उपचर अपचर से हमें सन्धि करने की आवश्यकता है। चेतिय की राजधानी सुत्तिमती को जो मार्ग काशी होकर जाता है, उसमें दस्युओं का भय है। और हमें वहाँ सुरक्षा का सम्पूर्ण प्रबन्ध करके अपना चर भेजना आवश्यक है।

"रही कौशाम्बीपति उदयन की बात, वे अभी हमारे मित्र हैं। कुरु के कौरव प्रधान राष्ट्रपाल और पांचाल ब्रह्मदत्त हमारे गण के समर्थक हैं। य दोनों गण भली भांति सुगठित हैं। निस्सन्देह मथुरा के महाराज अवन्ति वर्मन् और अवन्ती के चण्डमहासेन हमारे पक्ष में नहीं हैं। परन्तु वे चण्डमहासेन कभी भी अपने जामाता उदयन के विरोधी नहीं होंगे। फिर इन दोनों में मगध का विग्रह है। यद्यपि मगध-सम्राट ने भी उदयन को अपनी कन्या देकर भारी राजनीति प्रकट की है और कुटिल वर्षकार ने यौगन्धरायण को भरमा कर मैत्री-सूत्र में बाँधा है, फिर भी अनेक गम्भीर कारण ऐसे हैं, कि वत्स के महामात्य यौगन्धरायण के कुशल कौटिल्य से ये दोनों महाराज्य इस युद्ध में सर्वथा उदासीन ही रहेंगे। परन्तु हमें इसी पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। महाराज उदयन से हमारी मित्रता के सूत्र और भी दृढ रखने चाहिए; और इसके लिए हमें भन्ते गण, देवी अम्बपाली का अनुरोध प्राप्त करना होगा। देवी अम्बपाली ही का ऐसा प्रभाव महाराज उदयन पर है, कि वे आँखें बन्द करके यौगन्धरायण के परामर्श की अवहेलना कर सकते हैं।

"भन्ते गण, अब मैं आपका ध्यान सुदूर राज्यों की ओर आकर्षित किया चाहता हूँ; दक्षिण के अस्सकराज अरुण और गान्धार के महा-गणपति पुक्कणति। आप जानते है कि गान्धारपति पुक्कणति ने मगध-सम्राट् बिम्बसार को पठौनी भेजी थी। वह चाहते थे, कि पर्शुपुरी के शासानुशास को बिम्बसार सहायता दे। उनकी कठिनाइयाँ भी बड़ी

पेचीली एवं दुःखप्रद हैं। उनका छोटा-सा गण पार्श्वों का अब देर तक सामना नहीं कर सकता। पार्श्व शासानुशास दारयोश ने पश्चिम गान्धार को अभी-अभी अपने साम्राज्य में मिला लिया है। वह अब सम्पूर्ण तक्षशिला गान्धार के जनपद को आक्रांत किया चाहता है। वास्तव में पर्शपति दारयोश पश्चिम का बिम्बसार है। इसी से सहायता की इच्छा से गान्धार के गणपति ने मगध-सम्राट् बिम्बसार को पठौनी भेजी थी। परन्तु मगध-सम्राट् के लिए अपनी ही उलझनें थोड़ी नहीं थी। गान्धार का मगध पर कुछ ऋण भी है। मगध के अनेक मागध तरुण तक्षशिला के सर्वोत्कृष्ट स्नातक हैं। उन्होंने गान्धारराज को बहुत कुछ आश्वासन वहाँ से आती बार दिय था; परन्तु मित्रसिंह ने भी उन्हीं के साथ तक्षशिला छोड़ा था, और उन्होंने गान्धारपति को समझा दिया था, कि मगध-सम्राट बिम्बसार पूर्व का दारयोश है। ऐसे साम्राज्य लोलुपों से आशा मत कीजिए। वज्जियों का अष्टकुल पूर्वी गान्धार-तन्त्र है, वह आपका मित्र है। इसलिए वैशाली गान्धार के अपने ऋण को उतारेगा।"

कुछ देर चुप रह कर जयराज फिर बोले—"इसलिए मित्रो, हमने मित्रसिंह के परामर्श से गान्धारपति को, जो सम्भव हुआ, सहायता भेजी। और आपको अभी मित्र काप्यक बताएंगे कि जिस काल मगध-सम्राट् चम्पा और श्रावस्ती में व्यस्त थे—वैशाली के तरुणों ने सुदूर सिन्धुनद के तीर पर अपने संघ की धार से वज्जियों के अष्टकुल का कैसा मनोरम इतिहास लिखा था।

"परन्तु मैं अभी कुछ और भी बातें कहूँगा; भन्ते गण सुनें! अस्सक का राजा अरुण कलिंग-गणपति सत्तभु पर आक्रमण किया चाहता है। कलिंग गणपति ने वज्जियों के अष्टकुलों की सहायता माँगी है, और पूर्व समुद्र में अपनी स्थिति ठीक रखने के विचार से हमने उसे स्वीकार कर लिया है, तथा कलिंगराज से हमारी संतोषप्रद संधि

हो गई है। रहा अस्सक, सो कभी वैशाली के तरुणों की खड्ग मे उसका भी निर्णय हो जायगा। अब काम्बोजों के बर्बरो का ही वर्णन रह गया है। वे थोड़े मे स्वर्ण और उत्तम शस्त्र पाकर ही अपना रक्त-दान हमें दे सकते है। इस प्रकार भन्ते गण, हमने सोलह महाजनपदो में अपनी स्थिति यथासंभव ठीक कर ली है।"

जयराज महासंधि-वैग्राहिक यह कहकर बैठ गए। अब गान्धार काप्यक ने खड़े होकर कहा—"भन्ते गण सुनें, अष्टमहाकुल के वज्जियों ने जो कुछ सिंधुनद पर अपनी कीर्ति विस्तार की है, उसी का बखान करने मै यहाँ आया हूँ, गान्धार-गणपति की ओर से साधुवाद और कृतज्ञता का संदेश लेकर।"

"वज्जीगणों के नागरिको की सेना मे सम्मिलित होने का मुझे सम्मान मिला था। आचार्य बहुलाश्व ने स्वय उनका निरीक्षण किया था। अश्व-संचालन और शार्ङ्ग, धनुष, खड्ग, शल्य, गदा और शक्ति के युद्ध में वैशालीसंघ के तरुण गान्धार तरुणो से किसी प्रकार कम न थे। भन्ते गण, ऐसे मित्रों को पाकर हमे गर्व हुआ। आचार्य बहुलाश्व ने उन्हें पुष्कलावती से आने वाले राजमार्ग के सम्पूर्ण सिंधु-तट की रक्षा का भार सौंपा था। शास के शिरवी, सौवीर, पख्त, भलानस और वक्षु नदी के उत्तर तथा पर्शुपुरी के पूर्व के सम्पूर्ण जनपद को ध्वंस करने की बड़ी भारी तैयारी की थी। परन्तु उसकी सबसे बड़ी कठिनाई यह थी, कि वह सिंधु को जहाँ से चाहे पार नही कर सकता था। उसे वैशाली के तरुणों से अरक्षित-गोपित घाटों ही से नदी पार करना अनिवार्य था। भन्ते, मै अत्युक्ति नही करता, इन वीर तरुण वज्जियो के कौशल और शौर्य ही के कारण वह अपने सम्पूर्ण जनबल से लाभ नहीं उठा सका, और हमने उसके खण्ड-खण्ड करके सदैव के लिये उसको दलित कर दिया। वह बहुत कम बल लेकर पीछे लौट सका। वज्जी वीरों ने गान्धार तरुणों के साथ सिंधु पार कर पुष्कलावती, सुवास्तु और

कुंभा तक उसका पीछा किया और शत्रुवाहिनी-पति को जीवित पकड लिया। तब हमारे प्रधान सेनानायक प्रियमेघ ने अश्रु-गद्गद होकर कहा था--"तक्षशिला सदा के लिये वैशाली का ऋणी रहेगा' और आज अपने सेनापति के वे ही शब्द मै भी संथागार में दुहराता हूँ।"

प्रचण्ड करतल ध्वनि और साधु-साधु की ध्वनि के बीच काप्यक चुपचाप खड़े रहे। फिर कुछ ठहर कर बोले—"गान्धार मे वज्जियों के अष्टकुलों की कीर्तिध्वजा फहराने वाले, शासानुशास की वाहिनीपति को जीवित बन्दी बनाने वाले मेरे सुहृद प्रिय-दर्शी सिंह यहाँ आपके सम्मुख उपस्थित है, जिनके नेतृत्व में वैशाली-तन्त्र तरुणों ने वह कीर्ति कमाई थी। वहाँ हमारे संघ ने वयस्क सिंह को गान्धार जनपद का नागरिक और गान्धार गणसंघ का आजन्म सदस्य चुना था। परन्तु भन्ते गण, मुझे और भी कुछ कहना है। जब हर्षध्वनि के बीच आचार्य बहुलाश्व ने गान्धार-गण के समक्ष यह घोषणा की–कि उनकी सुकुमारी कुमारी रोहिणी का वीरवर सिंह के प्रति सात्विक प्रेम है और वे उसका अनुमोदन करते है, तब सम्पूर्ण गणजन में आनन्द और उल्लास का समुद्र हिलोरें लेने, लगा और गणजन ने इच्छा प्रकट की–कि रोहिणी और सिंह का पाणिग्रहण गण के समक्ष वहीं हो।"

"गणपति की इस आज्ञा को पालन करने जब सुश्री रोहिणी वक्षकोष्ठक में बैठी, सखियों के बीच से उठ लज्जा और हर्ष से आरक्त-अवनतमुखी अपनी माता के पीछे-पीछे शाला के भीतर आई, तो सदस्यों की उत्सुक दृष्टियों के भार से जैसे वह दब गई। उसके सुनहरी तार के समान बालों में अंगूर के ताजे गुच्छों का और जवाकुसुमों का शृंगार था, उसने कण्ठ में मुक्तामाल और कान में हीरक कुण्डल पहिने थे। वह सुन्दर कौशेय और काशिक के उत्तरीय अन्तरवासक और कंचुकी से सुसज्जिता थी। उस समय वह गान्धार जनपद की कुलदेवी-सी प्रतीत होती थी। गान्धारराज ने अपने हाथों उसे सिंह को समर्पित किया; और

समस्त जनपद ने दूसरे दिन गण-क्षण मनाया। जो हम जातीय त्योहार के दिन ही मनाते हैं। भन्ते, इस प्रकार गान्धार जनपद ने अष्टकुल के वज्जियों की वीरता का—जो अधिक से अधिक सम्मान किया जा सकता था—किया। परन्तु फिर भी गान्धार-गणपति ने घोषित किया था—कि यथेष्ट नहीं है। और फिर गान्धार गणसंघ ने एक नागरिक मण्डल इस अकिंचन की अध्यक्षता में इस लिए भेजा कि हम लोग वैशाली गणतंत्र के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करें। भन्ते, अंत में मैं यह और कहना चाहता हूँ कि दो ही चार दिन में युद्ध में भाग लेने गान्धार से चिकित्सकों और तरुणों का एक सुदृढ़ बल वैशाली में आ रहा है।"

बडी देर तक हर्ष-ध्वनि होती रही। काप्यक गान्धार चुपचाप आसन पर बैठ गये।

अब गणपति उठे और सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उन्होंने कहा—

'भन्ते गण सुनें, आयुष्मान् नाग व जयराज और काप्यक के वक्तव्य आपने सुने। आयुष्मान् सिंह के शौर्य की जितनी प्रशंसा की जाय, थोडी है। परिस्थिति पर आपने विचार किया है। अब मैं आपके सामने चार प्रस्ताव रखता हूं। प्रथम, प्रान्त और कोष की रक्षा। दूसरे, अश्वारोही, पादातिक और नौसेना संगठन। तीसरे, राजस्व-कोष और युद्धोपादान उत्पादन, चौथा कूटनीति प्रचार और गुप्तचर।

"भन्ते गण, प्रथम वार मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रान्त और कोष की रक्षा के लिए आयुष्मान् सूर्यमल्ल का निर्वाचन हो। आयुष्मान् सूर्यमल्ल महाअटटवी-रक्खक के पद पर सुचारु कार्य करते रहे ह। वे समस्त सीमा-प्रान्तों, नगर-दुर्गों एवं घाटों तथा राजमार्गों से परिचित हैं। अब जो आयुष्मान् को इस पद पर चुनते हैं वे चुप रहें।"

परिषद में सन्नाटा था। गणपति ने थोड़ा ठहर कर कहा—"दूसरी बार भी भन्तेगण सुनें—जिसे यह पद आयुष्मान् के लिए स्वीकृत हो वे चुप रहें।"

थोड़ी देर फिर सन्नाटा रहा। गणपति फिर बोले—"तीसरी बार भी भन्तेगण सुनें—जिसे प्रान्त और कोष्ट की रक्षा के लिए आयुष्मान् सूर्यमल्ल का निर्वाचन स्वीकृत हो वे चुप रहें, न बोलें।"

क्षणभर ठहर कर गणपति ने घोषित किया कि "सूर्यमल्ल उस पद पर चुन लिये गए।"

अब गणपति ने कहा—"अब भन्तेगण, प्रथम बार सुनें। मैं आयुष्मान् सिंह को छत्तीस गणराज्यों की संयुक्त समस्त चतुरंगिणी, पादाति, अश्वारोही और नौसेना के लिए सेनापति का प्रस्ताव रखता हूं, जो सहमत हों वे चुप रहें।"

सभा में सन्नाटा था। क्षणभर ठहर कर गणपति ने फिर कहा—"भन्तेगण, दूसरी बार सुनें—मैं सिंह आयुष्मान् को सेनापति पद के लिये चुनने का प्रस्ताव रखता हूं जो सहमत हों चुप रहें।"

इस पर भी सन्नाटा रहा। गणपति ने कहा—"तीसरी बार भन्तेगण सुनें—समस्त सेनापति के पद पर आयुष्मान् सिंह के लिये मैं प्रस्ताव करता हूं।"

इसी समय सिंह धीरे से परिषद भवन के बीचोंबीच आ खड़े हुए। गणपति ने कहा—"आयुष्मान् कुछ कहा चाहता है, कहें।"

सिंह ने कहा—"भन्तेगण सुनें, गणपति और जनसंघ जो सम्मान मुझे दिया चाहता है उसके लिए मैं आभार मानता हूं। परन्तु मेरी अभिलाषा है कि इस पद के उपयुक्त पात्र वज्जीगण के महाबलाध्यक्ष सुमन हैं। अतः मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस सेनापति पद पर वही रहें, और हम लोग उनकी अधीनता में युद्ध करें।"

एक दो सदस्यों ने कहा—"साधु, साधु!"

तब गणपति ने कहा—"परिषद में सेनापति पद के लिए थोड़ा मतभेद है। इसलिए छन्द लेने की आवश्यकता है। भन्तेगण, आप सावधान हों। शलाकाग्राहक छन्द शलाकाएँ लेकर आपके पास आ रहे हैं। उनके एक हाथ की डालियों में लाल

शलाकाएँ हैं, दूसरी में काली। लाल शलाका 'हां' के लिए है और काली 'नहीं' के लिये। अब जो आयुष्मान् मेरे मूल प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं—अर्थात् सिंह को प्रधान सेनापति-पद देना चाहते हैं वे लाल शलाका लें और जो आयुष्मान सिंह द्वारा संशोधित प्रस्ताव सेनापति सुमन को चाहते हैं—वे काली शलाका लें।"

सिंह ने फिर खडे होकर कुछ कहने की इच्छा प्रकट की। गणपति ने कहा—"आयुष्मान् फिर कुछ कहना चाहता है, कह।"

सिंह ने कहा—"भन्तेगण सुनें। मेरा प्रस्ताव गणपति के मूल प्रस्ताव का विरोधी नहीं है। सेनापति सुमन हमारे श्रद्धास्पद, वृद्ध अनुभवी सेनानायक हैं। उनका अनुभव बहुत भारी है। उन्होंने बड़े-बड़े युद्ध जीते हैं। वैशालीगण के लिए इनकी सेवायें असाधारण हैं। इसलिए हम सब तरुणों को उनके वरद हस्त के नीचे युद्ध करना सब भांति शोभायोग्य है, उचित भी है। कम से कम मेरे लिये उनकी अधीनता में युद्ध करना सेनापति होने की अपेक्षा अधिक सौभाग्यमय है। इससे मैं अनुरोध करता हूं कि आप भन्तेगण काली शलाका ही ग्रहण करें।"

परिषद में फिर 'साधु-साध' की ध्वनि गूंज उठी। शलाका-ग्राहक छन्द-शलाका लेकर एक-एक सदस्य के पास गए। सबने एक-एक शलाका ली। लौटने पर गणपति ने गिना। काली कम लौटी थीं। गणपति ने घोषित किया—"काली शलाकाएँ कम लौटी हैं। तो भन्तेगण, आयुष्मान सिंह के प्रस्ताव से सहमत हैं। तब सेनानायक सुमन सम्पूर्ण सयुक्त सेना के सेनापति निर्वाचित हुए।

"अब भन्तेगण सुनें, प्रथम बार मैं राजस्व कोष और युद्धोत्पादन के लिए आयुष्मान् भद्रिय का प्रस्ताव करता हूँ।"

फिर तीन बार गणपति ने परिषद की स्वीकृति लेने पर कूटनीति और गुप्त-विभाग का अधिपति संधि-वैग्राहिक जयराज को बनाया।

इसके बाद सिंह सेनापति, गान्धार काप्यक नौसेनापति, आगार-कोष्ठक स्वर्णसेन नियत हुए। यह सब कार्य-सम्पादन होने पर गणपति ने कहा—"भन्तेगण सुनें, हमने युद्ध-उद्वाहिका का संगठन कर लिया। अब हमें कुछ भीतरी बातों पर विचार करना है। सबसे प्रथम हमें धन और अन्न की आवश्यकता है। राजकोष में युद्ध-संचालन के योग्य यथेष्ट धन नहीं है। यदि राजकोष का स्थायी कोष सन्तोषजनक न हुआ तो इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

सूर्यमल्ल ने खड़े होकर कहा—"तब धन आवेगा कहां से? धन के बिना शस्त्र, नौका, अश्व और दूसरे उपादान कैसे जुटेंगे?"

"नहीं जुटेंगे, इसी से भन्तेगण, हमें सेट्टियों से धन ऋण लेना होगा"—भद्रिय ने कहा।

"सेट्ठिजन ऋण क्यों देंगे?" स्वर्णसेन ने कहा।

"नहीं क्यों देंगे, क्या गण के साथ उनकी सुख-समृद्धि संयुक्त नहीं है? क्या वे गण की व्यवस्था ही से अपने वाणिज्य-व्यापार नहीं कर रहे हैं? क्या श्रेणिक बिम्बसार का उदाहरण हमारे सम्मुख नहीं है?"

महासेनापति सुमन ने कहा—"भन्तेगण सुनें, जो संकट आज हमारे सम्मुख है, ऐसा वैशाली पर कभी नहीं आया था। शत्रु को यही छिद्र मिल गया है, कि हमारी सेना और कोष अव्यवस्थित और अपर्याप्त हैं, तभी वह साहस कर रहा है; और यह झूट भी नहीं है। हमें नियमित राजस्व नहीं मिल रहा है। दुर्ग-प्राकारों और नगर-प्राकारों का भी संस्कार कराना आवश्यक है। परिधि में जल नहीं है, और उसमें मिट्टी भर गई है। वे खेत हो रही हैं।"

भद्रिय ने खड़े होकर कहा—"भन्तेगण सुनें, सेट्ठि और सार्थवाह परिषद को कोटि सुवर्ण धन ऋण दें। और यह ऋण उन्हें बारह वर्ष

में चुकाया जायगा। मैं आशा करता हूँ कि वे गण को प्रसन्नता से धन देंगे।"

सिंह ने खड़े होकर कहा—"भन्तेगण सुनें, धन की व्यवस्था हो जाय तो और विषयों में युद्ध उद्वाहिका अपने मोहनगृह के गुप्त अधिवेशनों में निर्णय करे, जिससे शत्रु को छिद्रान्वेषण का अवसर न मिले।"

इस पर कोलियगण राजप्रमुख विश्वभूति ने कहा—"कासी कोल के १८ गणराज्य इस युद्ध में अर्द्ध अक्षौहिणी सेना और तीन कोटि सुवर्ण भार देंगे। अपनी सैन्य की रसद-व्यवस्था वे स्वयं करेंगे।"

सन्निपात ने प्रसन्नता प्रकट की। मल्लों के प्रमुख रोहक ने कहा—"तो एक सहस्र हाथी, इतने ही रथ, बीस सहस्र अश्वभट और पचास सहस्र पादाति मल्लों के नौ गण राज्य देंगे। तथा अपना सब व्यय-भार उठावेंगे। मल्ल युद्ध-उद्वाहिका को अपने सम्पूर्ण तटों, दुर्गों और युद्धोपयोगी स्थलों को उपयोग करने का भी अधिकार देते हैं।"

महाबलाधिकृत ने अब युद्ध-उद्वाहिका का इस प्रकार संगठन किया—"महाबलाधिकृत सुमन सेनापति, सिंह उपसेनापति, नौ बलाध्यक्ष गान्धार काप्यक, राजस्वकोष और युद्धोत्पादन भद्रिय, रसदाध्यक्ष स्वर्णसेन, प्रान्तकोष्ट-रक्षक सूर्यमल्ल। कासीकोल प्रतिनिधि विश्वभूति, और मल्लप्रतिनिधि रोहक।"

इसके बाद सन्निपात-भेरी का कार्य समाप्त हुआ।

---

*

११४

मोहनगृह की मन्त्रणा

संथागार के पिछले भाग से संलग्न निशान्त हर्म्य थे, जिनमें चारों ओर अनेक अटटालिकायें ऐसी चतुराई से बनाई गई थी जिनकी भीत और निकास के मार्गो का सरलता से पता ही नहीं लगता था। एक बार अपरिचित जन उन टेढ़े तिरछे मार्गो में फँसकर फिर निकल ही नही सकता था। इसी निशान्त के बीचों-बीच भूगर्भ में यह मोहनगृह था। इसके द्वार के समीप ही चैत्य देवता का थान था। इस चैत्य में आने जाने वालों का ताता लगा ही रहता था। इससे इस ओर आने जाने वालों की ओर किसी की दृष्टि नहीं जाती थी। चैत्य के देवता की विशाल मूर्ति पीली धातु-निर्मित थी। इसी मूर्ति के पृष्ठ भाग में सिहासन के नीचे मोहनगृह का गुप्त द्वार था। जो यन्त्र के द्वारा खुलता था, तथा जिसे यत्नपूर्वक गुप्त रखा जाता था। इस गुप्त द्वारा के अतिरिक्त मोहनगृह में आने जाने के लिये अनेक सुरंगें भी थीं, जिनका सम्बन्ध उच्च राजप्रतिनिधि जनों के आवास में था। उनके आवास में से इन सुरंगों का मार्ग या तो किसी खम्भे के भीतर था या भीत के भीतर होकर। ये द्वार इतने गुप्त थे कि निरन्तर सेवा करने वाले दास-दासी और भृत्य भी उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे। वज्जी-संघ का यह कठोर विधान था कि मंगल-पुष्करिणी में स्नात लिच्छवि राजपुरुष को छोड़ अन्य जो कोई भी किसी भांति इन द्वारों से परिचित हो, या इन द्वारों के भीतर चरण रखे तो तुरन्त उसी समय उसका वध कर दिया जाय, फिर वह अपराधी चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो। इन सब कारणों से इस मोहनगृह के सम्बन्ध में बहुत कम लोग जानते थे। जिन लोगों

ने मोहनगृह का नाम भी सुन रखा था, वे भी उसके सम्बन्ध में विविध किम्वदन्तियाँ कहते थे। वह किस उपयोग में आता है, यह भी लोग नही जानते थे। वहाँ जाने की चेष्टा करने वालों, जिज्ञासा करने वालो को जिन्होंने तुरन्त मृत्यु-दण्ड पाते देखा था वे वहाँ की विविध काल्पनिक विभीषिकाएं सुना-सुनाकर लोगों को भयभीत करते रहते थे।

इसी मोहनगृह में आज वज्जीसंघ के विशिष्ट जनों की मन्त्रणा बैठी थी। मन्त्रणागृह में घृत के सात द्वीप दीपाधारों पर जल रहे थे। और सब मिलाकर कुल नौ पुरुष वहाँ गम्भीर भाव से मन्त्रणा में व्यस्त थे। इन नौ पुरुषों में एक गणपति सुनन्द, दूसरे महाबलाध्यक्ष सुमन, तीसरे सेनापति सिंह, चौथे विदेश-सचिव नागसेन, पाँचवें संधिविग्राहिक जयराज, छठे नौबलाध्यक्ष काप्यक, सातवें अर्थ सचिव भद्रिय, आठवें आगार-कोष्ठक स्वर्णसेन और नवें महाअट्टवी रक्खक सूर्यमल्ल थे। विदेशसचिव नागसेन ने मन्त्रणा का प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—"भन्तेगण सुनें, यह मोहनमन्त्रणा अत्यन्त अनिवार्य होने पर मैंने आमन्त्रित की थी। मेरे पास इस बात के पुष्ट प्रमाण संगृहीत हैं कि अतिनिकट भविष्य में मगध सम्राट् वैशाली पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं, और उनके आमात्य ब्राह्मण वर्षकार मन्त्रयुद्ध का संचालन करने वैशाली में आए हैं। सम्राट् द्वारा उनका कलह और बहिष्कार केवल कपट-योजना है, उन्होंने मन्त्रयुद्ध का वैशाली में प्रारम्भ कर दिया है, और वे उसमें सर्वतोभावेन सफल होते जा रहे हैं। उनके सैकड़ों गुप्तचर विविध रूप धारण कर वैशाली में आ बसे हैं। अनेक नट, विट, वेश्याएँ, कुटनियें, विदूषक और सत्री और तीक्ष्ण सभ्य नागरिकों के वेश में शिल्पी, दूत, वणिक, सार्थवाह, सेट्ठि बनकर वैशाली में फैल गये हैं। विविध प्रकार के धूर्त चर चारों ओर भर गये हैं और यह ब्राह्मण कुण्डग्राम के ब्राह्मण-सन्निवेश में एक टूटे छप्पर के नीचे बैठ उनके द्वारा मन्त्रयुद्ध का संचालन कर रहा है।

गणपति सुनन्द ने कहा—"आयुष्मान् के पास इन सब बातों

के सम्बन्ध में क्या क्या प्रमाण हैं?"

"क्या भन्तेगणपति, आपने अभी जो कुण्डग्राम के ब्राह्मण-सन्निवेश में घटना हुई, उसे नही सुना?"

"क्या आयुष्मान् उन चाण्डाल मुनि और यक्षकन्या की बात कह रहे है?"

"वही बात है भन्ते. मैं कहता हूँ यह कोरा इस कुटिल ब्राह्मण का मन्त्र युद्ध है, इसमें वैशाली जनपद के सौ से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। और अब सम्पूर्ण वैशाली भयभीत हो उस काणे कपटमुनि के चरणों में गिर गिर कर अपने सुख-दुःख भावना आकांक्षा तथा गोपनीय बातें भी बता रहे हैं। क्या आप नहीं सोच सकते, कि ये सब छिद्र और जन-जन की जीवनगाथा उस कुटिल ब्राह्मण के कान में पहुँचकर वैशाली के विनाश का साधन बन रही है।"

"परन्तु आयुष्मान्, इसका क्या प्रमाण है, कि वह भदन्त कोई भाकुटिक वंचक है, त्यागी समर्थ ब्रह्मचारी नहीं?"

"भन्ते, वह जो कुछ है उसे हमने जान लिया है।"

"तो कौन है वह?"

"वह जयराज कहेंगे, इन्हीं ने वैशाली में अनुसन्धान-सूत्र-ग्रहण किया है।"

"तो आयुष्मान् जयराज कहें!"

"भन्ते, वह काणा राजगृह का प्रसिद्ध नापित धूर्त प्रभंजन है। वैशाली के बहुत जनों ने राजगृह में उससे बाल मुड़वाए है।" जयराज ने कहा।

"क्या कहा? राजगृह का नापित?"

"हाँ भन्ते, उसका नाम प्रभञ्जन है, और वह महाधूर्त है।"

"और वह यक्षिणी?"

"वह राजगृह की प्रसिद्ध वेश्या मागधिका है।"

"किन्तु ब्राह्मण-उपनिवेश के ब्राह्मणों के उन्मत्त होकर मरने का कारण क्या है?"

"पूर्व-नियोजित योजना, नन्दन साहु ने विष-मिश्रित खाद्य उन्हें दिया है। वह दुष्ट इसी कुटिल ब्राह्मण का चर है, और उसकी सम्पूर्ण योजनाओ का माध्यम वाहक है।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

"यही नही भन्ते, आपने क्या विदिशा की वेश्या भद्रनन्दिनी का नाम नही सुना, जिसके हाथ मे आज वैशाली के प्राण हैं।"

"वह कौन है?"

"मागध विषकन्या कुण्डनी, उसमें ऐसी सामर्थ्य है भन्ते, कि जिस पुरुष को वह छू लेगी, उसकी तुरन्त मृत्यु हो जायगी। चम्पा की विजय का श्रेय इसी विषकन्या को है, इसी ने चम्पा के महाराज दधिवाहन के प्राण लिए हैं भन्ते!"

"ओह, ऐसी भयंकर सूचना, क्या तुमने उसके सम्बन्ध में यथा-तथ्य जाना है भद्र!"

"भन्ते, मैं उससे मिल लिया हूँ। अब तक जो लिच्छवि उसके द्वारा मरे नहीं यह उसकी कृपा है, नहीं तो कोई दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन वह सौ सुवर्ण देने वाले किसी लिच्छवि तरुण का अपने आवास में स्वागत न करती हो। यह भी सम्भव है कि वह किसी महती योजना की प्रतीक्षा में है।"

"यह तो अतिभयंकर बात है आयुष्मान्!"

नागसेन ने कहा—अभी अर्थसचिव भद्रिय और महाअट्टवी-रक्षक सूर्यमल्ल भी कुछ सूचनाएँ देंगे।"

"आयुष्मान् भद्रिय कहें!"

"भन्ते, आपको ज्ञात है कि चम्पा का कोई धनकुवेर कृतपुण्य सेट्ठि

गृहपति अन्तरायण में कहीं से आकर बस गया है।"

उसके ऐश्वर्य और सम्पदा तथा वाड़व अश्वों के सम्बन्ध में मैंने सुना है, उसकी क्या बात है?"

"वह भी इसी कुटिल ब्राह्मण का चर है, वह देश-देशान्तरों से वैशाली निगम के नाम हुंडिया मोल ले लेकर संचित कर रहा है, उसका विचार किसी भी दिन ब्राह्मण का संकेत पाते ही वैशाली के सब सेट्ठियों के टाट उलटवाने का है।"

"यहाँ तक भद्र?"

"अब भन्ते, सूर्यमल्ल की सूचना भी सुनें।"

"आयुष्मान् बोलें!"

"भन्ते, मुझे यह सूचना देनी है, कि जिस दस्यु बलभद्र के आतंक से आजकल वैशाली आतंकित है वह भी एक मागध सेनानी है, और उसके अधीन दस सहस्र साहसी भट मधुवन में छिपे हैं। एवं पचास सहस्र सैन्य वज्जीगण के विविध प्रान्तों में गुप्त रूप से व्यवस्थित है। उसके सेनानायक, सामन्त और नायकगण वैशाली के उत्तर-क्षत्रिय-कुण्डपुर-सन्निवेश, वाणिज्य-ग्राम, चापाल-चैत्य, सप्ताम्रचैत्य, बहुपुत्र-चैत्य, कपिनह्य-चैत्य आदि स्थानों में छद्मवेश और छद्म नामों से बस रहे हैं।

"तो इसका अभिप्राय यह है, कि अब वैशाली में कौन शत्रु है, और कौन मित्र, इसका जानना ही कठिन है।" महाबलाधिकृत सुमन ने कहा।

भन्ते नागदन्त ने कहा—"अब वैशाली विजय करने को सम्राट् के यहाँ आने की और सैन्य अभियान की आवश्यकता ही नहीं है। जो कुछ हो गया है वैशाली को जय करने के लिए यही यथेष्ट है।"

अब सेनापति सिंह ने खड़े होकर कहा—

"भन्ते गणपति, यह आपने शत्रुओं की विकट योजना का एक अंश सुना, अब अपने बल को भी देखिए। वैशाली का सम्पूर्ण राष्ट्र आज

मदिरा और विलास में डूबा हुआ है। उसके प्राण अम्बपाली के आवास में पड़े रहते हैं। ये सेट्ठिजन, जो असंख्य सम्पदा के साथ सम्पूर्ण व्यापार-विनिमय के भी एक मात्र स्वामी है, आवश्यकता पड़ने पर हमें युद्ध में कोई सहायता नहीं देंगे। हमारे कोश की दशा शोचनीय है, अर्थ-सचिव इस पर प्रकाश डाल सकते है। सैन्य-संगठन का ढाँचा ढीला है। तरुण कामुक और विलासी है। उन्होंने तीखी दृष्टि स्वर्ण-सेन पर डाली, जो चुपचाप विमन भाव से सब बाते सुन रहे थे।

गणपति ने कहा—"भद्र, भद्रिय क्या कुछ कहेंगे?"

भद्रिय ने कहा—"केवल यही कि यदि हमें तत्काल ही युद्ध करना पड़ा तो राजकोश को कोई सहायता नहीं मिल सकती। बलि-संग्रह नही हो रहा; और जब से दस्यु बलभद्र का आतंक बढा है इसमें और भी वृद्धि हो गई है। सम्भव है, आगार-कोष्ठक मित्र स्वर्णसेन, सेना को अन्न और सामग्री दे सकें।" उन्होंने भी मुस्कराकर स्वर्णसेन की ओर देखा।

स्वर्णसेन ने खड़े होकर कहा—"दस्यु बलभद्र का दमन यदि तत्काल नहीं हुआ तो फिर आगार की सारी व्यवस्था नष्ट हो जायगी।"

अब नौबलाध्यक्ष समदक ने खड़े होकर कहा—

"भन्ते गणपति, एक महत्वपूर्ण सूचना मुझे भी देनी है, मागधों ने गंगा के उस पार पाटलिग्राम में सेना का एक अड्डा बनाया है। वे जब तब आकर ग्रामवासियों को घर से निकल कर स्वयं वहाँ रहने लगते है, और वे गंगा और मिही के तीर पर दो-दो लीग के अन्तर पर काष्ठ के कोट बनवाते जा रहे हैं। पाटलि ग्राम का गंगातट नौकाओं से पटा पड़ा है। इस प्रकार वैशालि की ऐन नाक पर यह पाटलिग्राम मगधों का सैनिक स्कन्धावार बनता जा रहा है, और कभी वह वैशाली को नौबल की बहुत बड़ी बाधा प्रमाणित हो सकता है।"

"तो आयुष्मान् नागसेन कहें, कि सब बातों को विचार कर हमें क्या करणीय है?"

स्वर्णसेन ने बीच ही में खड़े होकर कहा—

"मेरा मत है कि इस कुटिल ब्राह्मण को तुरन्त बन्दी बना लिया जाय, और उन सब गुप्तचरों को भी।"

"यह तो खुला रण-निमन्त्रण होगा, आयुष्मान्"—महाबलाधिकृत सुमन ने कहा। "और इसका परिणाम भीषण हो सकता है।"

नागसेन ने कहा—

"मेरा मत है कि हमें त्रिसूत्रीय योजना विस्तार करनी चाहिए। एक सूत्र यह कि—हमें निस्रष्टार्थ दूत मगध को प्रेषित करना चाहिए। यह दूत कुलीन, बहुश्रुत, बहुबान्धव, बहुकृत, बहुविद्य, बुद्धि-मेधा-प्रतिभा-सम्पन्न, मधुरभाषी, सभाचतुर, प्रगल्भ, प्रतिकार और प्रतिवाद करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, कष्टसहिष्णु, निरभिमानी तथा स्थिर-स्वभाव वाला पुरुष हो। उसके साथ सब यान-वाहन पुरुष परिवाय हो, करणीय विषय का ऊहापोह करने योग्य हो।"

"वह सम्राट् को मैत्री संदेश दे, उसकी गति विधि देखे, शत्रु के आटविक, अन्तपाल, नगर तथा राष्ट्र के निवासी प्रमुख जनों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे, मागध सैन्य का संगठन, व्यूह-परिपाटी-संख्या देखे समझे। शत्रु के दुर्ग, उसका कोष, आय के साधन, प्रजा की जीविका और राष्ट्र की रक्षा एवं उसके छिद्रों को भी देखे।

"दूसरा सूत्र यह कि—हमें अपने इंगित, चेष्टा, आचार, विचार किसी से भी ऐसा प्रकट नहीं करना चाहिए जिसमें वैशाली में व्याप्त मागध दूतों को यह ज्ञात हो जाय कि हम सावधान हैं और हमारी योजना क्या है।"

"तीसरा सूत्र यह कि—हमें कोष, अन्न और सैन्य का भली भांति संगठन और व्यवस्था करनी चाहिए।"

महाबलाधिकृत ने कहा—"मुझे योजना स्वीकृत है। आयुष्मान् नागसेन का कथन यथार्थ है, मैं प्रस्ताव करता हूं कि स्वयं नागसेन ही मगध जायँ।"

"नहीं भन्ते, यह ठीक नही होगा, मैं यहां नियुक्त हूं, मेरी अनुपस्थिति तुरन्त प्रकट हो जायगी, मेरा प्रस्ताव है कि मित्र जयराज जायं।"

"मैं स्वीकार करता हूं; परन्तु योजना मेरी अपनी होगी। प्रकट में कोई अन्य व्यक्ति बहुत-सी उपानय सामग्री लेकर चले, और मै गुप्त रूप में। दूत का जाना वर्षकार की सम्मति से उनके लिए सम्राट् से अनुनय करने के लिए हो। हम लोग सब भांति से दबे हुए हैं, भय-भीत हैं, असंगठित है, असावधान है, यही भाव प्रकट हो। मेरी अनुपस्थिति भी प्रकट न हो। मेरे स्थान पर मेरा मित्र काप्यक मेरा अभिनय करे।"

"यह उत्तम है आयुष्मान्"—महाबलाधिकृत सुमन ने कहा। "सैन्य संगठन का कार्य मै आयुष्मान् सिह को सौंपता हूं।"

"मै स्वीकार करता हूं। मेरी भी अपनी स्वतन्त्र योजना होगी। और वह अभी गुप्त रहेगी।"

"तो ऐसा ही हो आयुष्मान्, अब रह गया कोष, धान्य और साधन; इसके लिए आयुष्मान् भद्रिय उपयुक्त हैं। फिर हम सब सबकी सहायता करेंगे। आयुष्मान् जयराज एक मास में लौट आएं, तभी दूसरी बार मोहनगृह मन्त्रणा हो"—गणपति सुनन्द ने कहा। तथा मन्त्रणा समाप्त हुई।

११५

पारग्रामिक

काप्यक गान्धार ने बहुत-सी बहुमूल्य उपानय समग्री ले, दास, सैनिक और पथप्रदर्शकों के साथ ठाठ और आडम्बर के साथ राजगृह को प्रस्थान किया। सम्राट् से महामात्य वर्षकार का विग्रह शमन कराने के लिए यह आयोजन किया गया है, यह सुनकर ब्राह्मण वर्षकार ने एक शब्द भी 'हाँ' या 'ना' नहीं कहा। हर्ष विषाद भी कुछ उसने नहीं प्रकट किया। परन्तु उसी दिन उसने मध्यरात्रि में कुछ आदेश लेख लिखे, और उन्हें ब्राह्मण सोमक को देकर कहा—यह लेख नन्दन साहु के पास अभी पहुँचने चाहिए। नन्दन साहु ने वह लेख पाकर उसी रात्रि को एक दण्ड रात्रि रहते अपने घर से प्रस्थान किया, और वैशाली उपनगर में आकर उपालि कुम्भकार के घर आया। उपालि कुम्भकार श्रावस्ती से आकर अभी कुछ दिन हुए यहाँ बसा था। आकर नन्दन साहु ने वे लेख उसे दिए और कुछ भाण्ड उपालि से क्रय कर उनका मूल्य चुका, सूर्योदय से पूर्व ही घर लौट आया। परन्तु वैशाली के तीन द्वारों से तीन पुरुष सूर्योदय के साथ ही तीन दिशाओं को निकले। तीनों पादातिक थे। एक ने उत्तर पूर्व में कुण्डपुर जाकर एक हर्म्य में मगध सेनापति उदापि को एक लेख दिया। दूसरे ने पश्चिम में वाणिज्य-ग्राम जाकर मागध सन्धिवैग्राहिक ध्रुववर्ष को एक लेख दिया। तीसरे ने कोल्लोग-सन्निवेश में स्थित मागध सेनानायक सुमित्र को तीसरा लेख दिया। वे अपना-अपना कार्य पूर्ण करके अपने-अपने स्थान पर फिर वैशाली में लौट आए। परन्तु इन तीनों ही व्यक्तियों के पीछे छाया की भांति तीन और व्यक्ति भी उपर्युक्त स्थानों पर उनके पीछे-पीछे जा पहुंचे थे।

वे तीनों वैशाली नहीं गए। पूर्वोक्त व्यक्तियों के वैशाली लौट जाने पर वे लम्बा चक्कर काट कर टेढ़े तिरछे मार्गों में घूमते फिरते हुए द्युति-पलाश चैत्य में जा एकत्रित हुए। वहाँ एक ग्रामीण तरुण एक वृक्ष की छाया में बैठा सुस्ता रहा था। तीनों ने उसके निकट पहुँचकर अभिवादन करके अपने-अपने संदेश दिए। ग्रामीण तरुण ने उनमें से प्रत्येक को कुछ मौखिक संदेश देकर भिन्न दिशाओं में चलता किया। फिर वह कुछ देर बैठा कुछ सोचता रहा। उसने वस्त्र से कुछ लेख-मान चित्र निकाल कर उन्हें ध्यान से भली भांति देखा, फिर उन्हें नष्ट कर दिया। इसके बाद वह मन ही मन बडबड़ा कर हँसा, और उसके मुंह से निकला—"बस यह खड्ग और मैं।" एक बार उसने अपने चारों ओर देखा और फिर उठकर राजगृह के मार्ग पर चल दिया। इस समय दोपहर दिन चढ़ गया था; और वह मार्ग विजन वन में होकर था। दूर-दूर तक बस्ती का नाम न था; कहीं सघन वन और कहीं एकाध ग्राम। परन्तु वह सूर्यास्त तक बिना कहीं रुके चलता ही चला गया। उसने यथेष्ट मार्ग पार किया। अन्ततः वह भिण्डि-ग्राम की सीमा में आया। यह एक सम्पन्न ग्राम था, जो वैशाली गणराज्य और मगध की सीमा पर था। यहाँ एक चैत्य में उसने विश्राम करने का विचार किया। वह बहुत थक गया था, साथ ही भूख प्यास से व्याकुल भी था। चैत्य के निकट ही एक गृहस्थ का घर था। वहाँ जाकर उसने कहा—"गृहपति, क्या मैं तेरे यहाँ आज ठहर सकता हूँ? मैं पारग्रामिक हूँ मुझे ,भोजन भी चाहिए। मेरे पास पाथेय नहीं है। परन्तु तुझे मैं स्वर्ण दे सकता हूँ।"

गृहपति ने कहा—"तो तेरा स्वागत है मित्र, वहाँ गवाट् में और भी दो पारग्रामिक टिके हैं, वहीं तू भी विश्राम कर, वहाँ स्थान यथेष्ट है। आहार्य मैं तुझे दूंगा। स्वर्ण की कोई बात ही नहीं है।"

"तेरी जय रहे गृहपति!"—ग्रामीण ने कहा। और धीरे-धीरे गवाट्

में चला गया। गवाट् के प्रांगण के एक ओर छप्पर का एक ओसारा था। वहाँ दो पुरुष बैठे बाते कर रहे थे। उन्हीं के निकट जाकर उसने कहा—"स्वस्ति मित्रो, मैं भी पारग्रामिक हूँ, आज रात भर मुझे भी आपकी भांति यही विश्राम करना है।"

"तो तेरा स्वागत है मित्र, बैठ।" दोनों में से एक ने कहा। परन्तु उन्होंने परस्पर नेत्रों मे ही एक गुप्त संदेश का आदान-प्रतिदान किया। आगत ने भी उसे देखा। परन्तु निकट बैठते हुए कहा—"कहाँ से मित्रो?"

"वाणिज्य-ग्राम को?"

"किन्तु कहाँ से?"

"ओह, चम्पा से ?"

"परन्तु चम्पा से इस मार्ग पर क्यों?"

"प्रयोजनवश मित्र !"

"ऐसा है तो ठीक है"—ग्रामीण ने हँस कर कहा।

उस हँसी से अप्रसन्न हो एक ने कहा—

"इसमें हँसने की क्या बात है मित्र!"

"बात कुछ नही मित्र, मुझे कुछ ऐसी ही टेव है। हाँ, क्या मित्रो, आपमें से कोई अच्छी कहानी कहना भी जानता है ?"

"कहानी ?"

"कहानी सुनने की भी मुझे टेव है"—वह फिर हँस दिया।

इस पर दोनों चिढ़ गए। उनके चिढ़ने पर भी वह ग्रामीण हँस दिया। एक ने तीखा होकर कहा—"यह बात-बात पर हँसना क्या ? तू मित्र, ग्रामीण है।"

"ग्रामीण तो हूँ और तुम ?"

"हम नागरिक हैं।"

इस बार ग्रामीण जोर से हँस पड़ा। उस नागरिक ने उसपर क्रुद्ध होकर पास का दण्डहत्थक उठाया। उसके साथी ने उसे रोक कर—"यह क्या करता है, उसे हँसने दे, उससे हमारा क्या बनता बिगड़ता है।"

साथी की बात मान कर वह व्यक्ति नवागन्तुक को क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगा।

इसी समय गृहपति भोजन-सामग्री लेकर वहाँ आया। उसने कहा—"भन्ते गण, कुछ सैनिक ग्राम की उस ओर किन्हीं को खोजते फिर रहे है, कही वे आप ही को तो नहीं खोज रहे है।"

सुनकर तीनों व्यक्ति चौकन्ने हो शंकित दृष्टि से एक दूसरे को देखने लगे। इस पर पीछे आए पुरुष ने कहा—"मै उन्ही की प्रतीक्षा कर रहा हूँ मित्र, हम लोग उन छद्मवेशी मागध गुप्तचरों को ढूँढ रहे हैं जिन्हे सूली पर चढ़ाने का आदेश वैशाली मे प्रचारित हुआ है।" उसने तिरछी दृष्टि मे दोनों पुरुषों को देखा जो शंकित से उसे देख रहे थे।

पारग्रामिक ने कहा—"मित्र, वे किधर गए हैं मुझे बता, मैं उन्हें अभी लाता हूँ" इतना कह—वह द्रुतगति से गृहपति की बताई दिशा की ओर चल दिया। उसके बाद ही दोनो बटारू भी उद्विग्न-से हो—'हम भी देखें कौन है'—कह कर उठ कर उसकी विपरीत दिशा को भाग खड़े हुए, गृहपति अवाक् खड़ा यह अद्भुत व्यापार देखता रहा।

११६

छाया पुरुष

इन्हीं दिनों वैशाली मे एक और नई विभीषिका फैल गई। लोग भय-विस्फारित नेत्रों से एक दूसरे को देखते हुए परस्पर कहने लगे—"एक भयानक और अद्भुत काली छाया उन्होंने कभी-कभी नगर के बाहर प्रान्त भाग में संध्या के धूमिल अन्धकार में घूमती फिरती देखी है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, लोग इसका समर्थन करते गए। बहुत जन भय से दबे हुए स्वर मे कहने लगे। उस छाया में केवल गति है, किन्तु वह अशरीरी है। किसी ने कहा—वह छाया बोलती भी सुनी गई है। वह मनुष्याकार तो है, किन्तु मनुष्य कदापि नहीं है। इतना लम्बा मनुष्य होता ही नही। अशरीरी होने पर भी वह छाया वायु-वेग से अधर में उड़ती है, पृथ्वी को छूती नहीं, उसकी गति अबाध है; पर्वत, नद, गह्वर कुछ भी उसकी गति में बाधक नही हो सकता। अनेकों ने देखा है, कि स्वच्छ चाँदनी रात में वह छाया सुदूर पर्वत-शृंगों के ऊपर होती हुई, वायु में तैरती-सी वैशाली के निकट आती, और कभी धीरे-धीरे और कभी अति वेग से नगर के चारों ओर चक्कर काटती हुई लोप हो जाती है। बहुत लोग बहुत भांति के अटकल उसके सम्बन्ध में लगाने लगे। जिन्होंने देखा नहीं था वे अविश्वास करते, और जिन्होंने देखा वे प्रतीत कराने लगे। फिर भी विश्वास हो चाहे न हो, यह सूचना कहने वालों और सुनने वालों सभी के लिये भय का कारण बन गई थी। स्त्रियों में से भी कुछ ने देखा, और वह भय से चीत्कार करके मूर्छित हो गईं। बच्चे उस छाया की बात सुनते ही सक्ते की हालत में हो गए। एक बात अवश्य थी, इस छाया ने किसी का अनिष्ट नहीं किया

था। नगर अन्तरायण में भी वह नहीं घुसी थी। उसका दर्शन अधिकतर मर्कट ह्रद-पलाशवन और वैघंटिक-यक्षनिकेतन के निकट ही बहुधा होता था। किसी-किसी ने उसे यक्षनिकेतन में प्रविष्ट होते भी देखा था। इससे लोग उसे यक्ष ही कहने लगे थे। युद्ध की विभीषिकाएँ दिन-दिन बढ़ती जाती थीं, इससे वैशाली में घर बाहर सर्वत्र एक घबराहट-सी फैलती जाती थी; और यह लोकचर्चा होने लगी थी, कि कोई न कोई अप्रिय अशुभ घटना होने वाली है।

एक बात इस सम्बन्ध में और विचारणीय थी, प्रतिदिन चम्पा के सेट्ठि कृतपुण्य का पुत्र भद्रगुप्त सान्ध्य भ्रमण के लिए जिस ओर वड़वाश्व पर घूमने जाया करता था, उसी ओर वह छाया बहुधा देखी जाती थी। सबसे प्रथम सेट्ठिपुत्र के साथियों ही ने उसे देखा भी था। सेट्ठिपुत्र उसे देख अति भयभीत हो गया था। एक बार तो वह छाया सेट्ठिपुत्र के निकट आकर उसे छू भी गई थी। उस स्पर्श ही से सेट्ठिपुत्र भय से मूर्छित हो गया था, कृतपुण्य ने बहुत उपचार कराया तब वह स्वस्थ हुआ था, तब से सेट्ठिपुत्र ने बाहर भ्रमणार्थ जाना ही बन्द कर दिया था। इससे वह छाया-पुरुष जैसे अति उद्विग्न हो वेग से बहुधा वैशाली के चारों ओर घूमा करती थी। हाल ही में चाण्डाल मुनि और यक्षकन्या के प्रादुर्भाव और कृत्या-प्रभाव से भयभीत वैशाली की जनता इस छाया-पुरुष से अत्यधिक भयभीत शंकित और उद्विग्न हो गई थी।

११७

विलय

कृत्यपुण्य सेट्ठि ने पुत्र के विवाह का आयोजन किया। आयोजन असाधारण था। वैशाली ही के सेट्ठि जेट्ठक धनञ्जय की सुकुमारी कुमारी से कृत्यपुण्य सेटिठ के पुत्र का विवाह नियत हुआ था। कृत्यपुण्य सेट्ठि के धन-वैभव का अन्त नहीं था। उधर सेट्ठि जेट्ठक धनञ्जय भी उस समय जम्बूद्वीप भर में विख्यात धन-कुबेर था। उसकी किशोरी कन्या मृणाल केले के नवीन पत्ते की भांति उज्ज्वल कोमल और सुशोभनीय किशोरी थी। सेट्ठि जेट्ठक के भण्डार में सहस्र कोटि भार स्वर्ण था, ऐसा सारा ही वैशाली का जनपद कहता था। इस विवाह की वैशाली में बड़ी धूम थी, बड़ी चर्चा थी। दूर-दूर के कलानिपुण पुरुष, नृत्य संगीत में विलक्षण वेश्याएँ और विविध भांति के आमोद-प्रमोद और शोभा के आयोजन एकत्र किए गए थे। इस विवाह की धूमधाम, मनोरंजन और व्यस्तता के कारण एक बार वैशाली की जनता का ध्यान उस छाया-पुरुष से सर्वथा ही हट गया था।

विवाह सम्पन्न हो गया। कृत्यपुण्य पुत्रवधू को लेकर मंगल उपचार करता और वधू पर रत्न लुटाता हुआ घर आ गया। पुत्र और पुत्रवधू की मधु-रात्रि मनाने के लिये उसने सर्वथा नवीन एक कौमुदी-प्रासाद निर्माण कराया था। उस प्रासाद में उसने समस्त जम्बूद्वीप में प्राप्य सुख-सामग्री संचित की थी। उसी कौमुदी-प्रासाद में वधू के गृह-प्रवेश का उत्सव मनाया जा रहा था। नगर के गण्य मान्य सेट्ठि सामन्तपुत्र और राजपुरुष आ आकर हंस-हंस कर सेट्ठिपुत्र को बधाई देते, भेंट देते और गंध-पान से सत्कृत होते अपने-अपने घर जा रहे थे। पौर जानपद जनों का षड़रस व्यंजन परोसकर भोज हो रहा था।

ब्राह्मणों को कौशेय शाल, दुधार गाय, स्वर्णालंकृता दासियाँ और स्वर्ण बाँटा जा रहा था। कृत्यपुण्य सेट्ठि के वैभव और चमत्कार एवं दान-शीलता को देख-देख कर लोग शत सहस्र मुखों से प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। अन्तःपुर में सेट्ठिनी नागरिक महिलाओं से घिरी पुत्र-वधू का परछन कर रही थी। स्त्रियाँ वधू पर से रत्नाभरण न्यौछावर कर रही थीं। मंगलगान की मधुर ध्वनि अन्तःपुर की रत्नखचित भीतों का आन्दोलित करती-सी प्रतीत हो रही थी। सेट्ठिपुत्र समवयस्कों के बीच विविध हास्यों और व्यंगों का घात-प्रतिघात मुस्करा कर सह रहा था। गुणीजन बन्दी और वारवधुएँ अपनी-अपनी कलाओं का विस्तार कर रही थी।

एक दण्ड रात्रि व्यतीत हो गई। आगत समागत जन अपने-अपने घर बिदा होने लगे। जाने वाले वाहनों का ताँता बँध गया। धीरे-धीरे भीड कम होते-होते कौमुदी-प्रासाद में केवल परिजन-परिचारक और घनिष्ठ मित्र ही रह गए। मधुरात्रि के उपचार होने लगे। कौमुदी-प्रासाद का शयन-गृह और मधु-शैया पर श्वेत पुष्पों का मनोरम शृंगार किया गया था। मित्रों से विदा होकर सेट्ठिपुत्र सुभाषित ताम्बूल चबाता हुआ शयन-कक्ष में प्रविष्ट हुआ। अनंगदेव का प्रथम सुखद प्रहार उसके प्राणों को विह्वल कर रहा था। उसका स्वस्थ सुन्दर स्वर्ण सुवर्ण अंग पर धवल क्रौशेय और धवल ही पुष्पमाल सुशोभित थी। उसके नेत्र औत्सुक्य, आनन्द और काममद से विह्वल हो रहे थे। नववधू को समवयस्का सखियों ने लाकर शयन-कक्ष में एक प्रकार से ढकेल दिया, वे कपाट-सन्धि से झांक झांककर एक दूसरी को नोचने लगी। पुष्पभार से नमित धनंजय सेट्ठि जेटठक की सुकुमार कुमारी द्वितीया के चन्द्र की शोभा धारण करती हुई-सी शयन-कक्ष में व्रीड़ा से जड-सी खड़ी की खड़ी रह गई। आँख उघार कर प्रियदर्शन पति को देखने का उसका साहस ही न हुआ।

इसी समय कौमुदी-प्रासाद में एक भीति का आभास हुआ। गान-वाद्य

एकबारगी ही रुक गए, लोगों का जनरव भी स्तब्ध हो गया। जो जहाँ था जड़ हो गया। किसी के मुंह से हल्की चीत्कार-सी निकली। ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे कौमुदी-प्रासाद में कोई जीवित सत्व उपस्थित ही नहीं है, सबने भय और आतंक से देखा, छायापुरुष ने कौमुदी-प्रासाद में प्रवेश किया है। छाया को देखकर बहुत लोग मूर्च्छित होकर गिर पड़े, बहुत पत्थर की मूर्ति की भाँति जड़ हो गए। लोगों की जीभ तालु से सट गई। छाया-मूर्ति धीरे धीरे स्थिर चरणों से पृथ्वी से कुछ ऊपर ही वायु में तैरती हुई सी एक के बाद दूसरा कक्ष अलिन्द पार करती हुई सेट्ठपुत्र के शयन-कक्ष के द्वार पर आ पहुँची। उसे देखते ही सखी दासी पौर कन्या जो जहाँ थी भयभीत एवं मूर्च्छित हो भूमि पर गिर गई।

नव दम्पति ने भी, प्रासाद में कोई अशुभ बात हुई है, इसका आभास अनुभव किया। सेट्ठिपुत्र ने आगे बढ़कर द्वार खोला, द्वार खोलते ही छायापुरुष शयन-कक्ष मे आ प्रविष्ट हुआ। उसे देखते ही सेट्ठिपुत्र भय से आँखें फाड़े निर्जीव की भाति पीछे हट कर भीत में चिपक गया। वधू चीत्कार करके मूर्च्छित हो गिर पड़ी। छायापुरुष ने उसी भांति पृथ्वी से अधर स्थिर गति से जाकर सेट्ठि-पुत्र को छुआ। उसके छूते ही सेट्ठिपुत्र मूर्च्छित होकर नीचे गिर गया। छायापुरुष ने उसे अनायास ही दोनों हाथों में उठाकर पुष्प-शैया पर लिटा दिया। इसके बाद उसने द्रुत गति से शयन-कक्ष में चारों ओर चक्कर लगाना प्रारम्भ किया। चक्कर लगाते-लगाते वह शैया की परिक्रमा-सी करने लगा। प्रत्येक बार उसकी परिक्रमा परिधि छोटी होने लगी। अन्ततः वह शैयातल्प को चारों ओर से छूता हुआ नथने फुला-फुला कर कुछ सूंघता हुआ-सा घूमता रहा। इस समय उसके नेत्रों से विद्युत प्रवाह के समान एक सतेज धारा प्रवाहित हो होकर सेट्ठिपुत्र के शरीर में प्रविष्ट होने लगी; बीच-बीच में वह रुक-रुक कर, सेट्ठिपुत्र के बिल्कुल ऊपर झुककर देखता और फिर द्रुत वेग से शैया के ऊपर नीचे चारों

ओर घूम जाता। प्रासाद में ऐसा सन्नाटा था जैसे यहाँ एक भी जीवित पुरुष न हो। अब उसने मुंह से एक प्रकार की हुंकृति-ध्वनि प्रारम्भ की। फिर वह कंदुक की भांति एक बार ऊपर को उछला। उसने धुएँ के बादल के समान सिकुडकर मूर्छित सेट्ठिपुत्र के ऊपर अधर में लटक कर अपना मुह उसके मुंह के एकदम निकट लाकर मुंह से मुंह मिला कर उसके मुंह में फूंक मारना प्रारम्भ किया। फूंक मारने से सेट्ठिपुत्र का मुंह खुल गया, वह अधिकाधिक खुलता चला गया, तब अद्भुत चमत्कारिक रूप से वह छायापुरुष एक द्रव-सत्व की भांति समूचा ही सेट्ठिपुत्र के मुंह में धँस गया। सेट्ठिपुत्र अति गहन नींद में सो गया। धीरे-धीरे उसके सफेद मृतक के समान मुंह पर लाली दौड़ने लगी। लकडी के समान अकड़े हुए अंग हिलने डुलने और सिकुड़ने लगे। उसके मुह की विकृति भी दूर हो गई। उसने सुख से कर्वट ली और सो गया। मूर्च्छिता वधू भूमि में पड़ी रही। छायापुरुष का कोई चिह्न कक्ष में न रह गया। इस अद्भुत अतर्क्य घटना का कोई साक्षी भी न था।

११८

असमंजस

बहुत भोर में वधू की निद्रा तन्द्रा या मूर्छा भंग हुई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। उसने अकचका कर रात की अकल्पनीय घटना पर विचार किया, फिर उसने भयभीत दृष्टि कक्ष में घुमाई : कोई भी अप्रिय असाधारण बात नहीं थी। रात में देखे हुए छायापुरुष का वहाँ कोई चिह्न भी न था। उसकी दृष्टि सब ओर से हटकर मृदुल पुष्प-शैया पर सोते हुए सेट्ठिपुत्र पर गई, उसे गाढ़ निद्रा में सोता देख वह कुछ आवस्त हुई। उसने अपने वस्त्र ठीक किए, कक्ष के एक गवाक्ष से झांक कर बाहर देखा, उषा का उदय हो रहा था। वह डरती-डरती सेट्ठिपुत्र की शैया के निकट गई। जब उसे भली भांति विदित हो गया कि वह प्रगाढ़ निद्रा मे सो रहा है, तो वह आँख भर कर पति को देखती रही। उसके सौन्दर्य पर वह मोहित हो गई, उसकी मुख-मुद्रा से भय की रेखाएँ दूर हो गईं। वह वहाँ से हटकर गवाक्ष के निकट बड़े-से मुकुर के सामने आ खड़ी हुई। पुष्पिता लता के समान अपनी ही शोभा पर मन ही मन वह गर्वित हुई। उसने एक बार शैया पर सोते हुए पति के सुकुमार शोभा के खान अंग पर दृष्टि डाली, एक मधुर उज्ज्वल हास्य-रेखा उसके होठों में फैल गई। इसी हास्य-रेखा मे उसकी उस भयानक मधुरात्रि का सब लेखा जोखा समाप्त हो गया। वह शान्त, स्निग्ध और शुभ दृष्टि से कक्ष की बहु-मूल्य सजावट को देखने लगी। इसी समय दासी ने द्वार पर आघात किया, वधू ने धीरे से आकर द्वार खोल दिया। वधू को मुस्कराता तथा सेट्ठिपुत्र को सोता देख दासी ने मृदु हास्य हँसकर वधू से बाहर आने का संकेत किया। बाहर आने पर स्त्रियों के झुरमुट ने उसे घेर लिया। सबके मुंह

ार औत्सुक्य घबराहट और चिन्ता की रेखाएँ थीं, सभी ने एक दूसरे से आँखों ही आँखों में कुछ पूछा, सभी ने वधू की भाव-भंगिमा से समझा, रात की विभीषिका से वधू सर्वथा अज्ञात प्रतीत होती है। इसी समय सेट्ठि कृतपुण्य 'हा पुत्र हा पुत्र' करता हुआ वहाँ आया और पुत्र के शयन-कक्ष में घुस गया। वहाँ पुत्र को सुख से सोते हुए और वधू को स्वाभाविक देख वह हर्षोन्माद से नाच उठा। प्रथम संकेत से और फिर खुलकर अब रात की बातें होने लगीं। जिस जिसकी मूर्छा भंग होती गई, उठकर वहीं एकत्र होने लगा। प्रश्न यह था.-कि वह छायामूर्ति थी क्या? वह वहाँ वास्तव में आई भी थी, या भ्रम या स्वप्न था। यदि वह आई थी तो गई गहाँ? सारा ही घर प्रथम फुसफुसाहट और फिर कोलाहल से भर गया। उस कोलाहल को सुनकर सेट्ठिपुत्र की नींद भी खुल गई। वह मद्यपों के से भारी-भारी डग भरता हुआ, अपरिचितों की भांति आँखें फाड़-फाड़ कर इधर उधर देखता, वहाँ आया। कृतपुण्य पुत्र को देखकर दोनों हाथ फैलाकर उसकी ओर दौड़ा, और उसका आलिगन करके कहा—"पुत्र, क्या तूने भी रात को कोई विभीषिका देखी?"

सेट्ठिपुत्र ने विचित्र दृष्टि से सेट्ठि की ओर देखा, तनिक मुस्कराया। ब्राह्मण पुरोहित ने कहा—"गृहपति, वह छायापुरुष वास्तव में एक दुःस्वप्न था, मैं अभी पुरश्चरण करता हूँ, तथा अथर्व पाठ करके उसकी शान्ति करता हूँ, तुम पुत्र और वधू को अधिक असुविधा में मत डालो।"

सेट्ठि ने बहुत ऊंच-नीच दिन देखे थे, उसने भी जब देखा कि घर में सब कुछ ठीक-ठाक है, कुछ कहना-सुनना ठीक नहीं समझा, वह पुत्र और वधू के अग-संस्कार स्नान आदि की सुविधा देने के विचार से अपने कक्ष में चला गया।

पीठमर्दकों, अबमर्दकों और सेवकों द्वारा सेवित स्नान वसन भूषण सज्जित सेट्ठिपुत्र जब प्रासाद के बाहर अपने कक्ष में आया, तब सब वयस्कों ने उसका सस्मित प्रीति-सम्मोदन किया। कुछ ने संकेत

से रात्रि का हाल-चाल पूछा। उनमें से जो रात की विभीषिका से अवगत थे, उन्होंने संकेत से सेट्ठिपुत्र से रात की बात पूछने से निषेध किया। सेट्ठिपुत्र ने केवल मन्द मुस्कान ही से मित्रों के प्रश्नों का उत्तर दिया। परन्तु उसकी दृष्टि में कुछ विचित्रता सभी ने लक्ष्य की।

एक ने कहा—"मित्र, क्या इतना आसव ढाल लिया?"

दूसरे ने कहा—"नहीं नहीं रे, जागरण का प्रभाव है, कह मित्र, सुख से रात बीती?"

अब सेट्ठिपुत्र ने मुंह खोला, उसने कहा—"बढ़वाश्व"

यह शब्द सुनकर सब समुपस्थित चौंक उठे। बिल्कुल अपरिचित स्वर था, उसका घोष भी अमानुष था, जैसे सुदूर पर्वत-शृंगों को चीर कर कोई ध्वनि आई हो। मित्रगण सेट्ठिपुत्र के मुंह की ओर देखने लगे।

उसने एक बार फिर उसी भांति "बड़वाश्व" कहा, और उठ खड़ा हुआ, उसकी रुखाई और चेष्टा ऐसी थी, जैसे वह किसी को नहीं पहचानता हो, अथवा वह उन सबकी उपस्थिति ही से अज्ञात हो। सभी एक दूसरे की मुंह की ओर देखने लगे, पर सेट्ठिपुत्र उठकर कक्ष से बाहर चल दिया। दो एक पार्श्वद पीछे दौड़े। उसके चलने का ढब भी निराला था। पार्श्वदों ने समझा कि सेट्ठिपुत्र ने बहुत मद्य ढाल ली है, इसी से पैर डगमगा रहे हैं, वह कहीं गिर न जाय, इसी से एक ने उसे थाम लिया। उसे संकेत से निवारण करके उसने उसी स्वर में फिर कहा—"बड़वाश्व"।

इधर जब से छायापुरुष की विभीषिका फैली थी, तथा भ्रमण-काल में एक बार छायापुरुष ने उसे छू लिया था, तब से सेट्ठिकुमार का वड़वाश्व पर वायु-सेवनार्थ भ्रमण रोक लिया गया था। आज अकस्मात् ही अतर्क्य रीति से वड़वाश्व की इच्छा इस आग्रह से व्यक्त करने

पर सेवक विमूढ़ हो गया, एक बात और थी, सेट्ठिपुत्र में पूर्ण मार्दव विनयशील संकोच न था, एक अभूतपूर्व दवंगता और दुर्धर्ष वेग उसकी वासना-शक्ति का उसके नेत्रों से प्रवाहित हो रहा था । सेवक उस आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सका, वह अश्व लाने को दौड़ गया। दूसरा सेवक भयभीत होकर गृहपति को सूचित करने दौड़ गया, गृहपति सेट्ठि दौड़ा आया, उसने पुत्र को भ्रमण के लिए जाने का निषेध किया, पर सेट्ठिपुत्र ने मुस्करा कर गृहपति की ओर देखा—उस विलक्षण दृष्टि से सेट्ठि घबरा गया, वह सोचने लगा—क्या मेरा पुत्र उन्मत्त हो गया है? यह कैसी दृष्टि है, इतने ही में सेट्ठिपुत्र पिता की उपस्थिति की अवहेलना करके अश्व की ओर चल दिया। सेवक अश्व ले आया था, एक अभूतपूर्व लाघव से सेट्ठिपुत्र अश्व पर चढ गया और द्रुतगति से उसने अश्व छोड़ दिया।

ऐसा पहिले कभी भी नहीं हुआ था। पुत्र का यह परिवर्तन कैसा है? क्या उसने रात अधिक मद्य पी है? या कोई और बात है। छाया-पुरुष की विभीषिका मन में होते हुए भी किसी ने भी यह नहीं सोचा कि इस घटना से छाया भी किसी भाँति सम्बन्धित है।

परन्तु सहसखियों से सेट्ठिपुत्रवधू ने उस भयानक छाया का शयन-कक्ष में आना वर्णित किया। सहसखियाँ सहम गईं, उन्होंने कहा—तब यह स्वप्न नहीं सत्य है, वह छायामूर्ति हमारे सामने ही शयनकक्ष में गई थी, परन्तु फिर उसका क्या हुआ? वह कहाँ गई? इसका कोई उत्तर न दे सका। वधू ने लजाते हुए कहा—कि वह उसे देखते ही मूर्छित हो गई थी और रात भर वह मूर्छिता ही भूमि पर पड़ी रही। तब सब स्त्रियाँ तथा सेट्ठिनी भी भय-चिन्ता से व्याकुल हो गईं। प्रासाद में सभी कोई मूर्छित हो गए थे और सभी रात्रि भर माया मूर्छित रहे, यह तो अद्भुत बात है। इसी समय सेट्ठि कृतपुण्य ने भीतर आकर पत्नी से एकान्त में कहा—कह नहीं सकता क्या बात है, पर पुत्र में

बड़ा अन्तर पाता हूँ। क्या उसने रात बहुत मद्य पी थी? सेटिठनी ने शयन-कक्ष का जो विवरण वधू से सुना वह सेट्ठि को सुना दिया। सुनकर सेट्ठि बहुत भयभीत हुआ, उसने कहा—आर्य वर्षकार को सूचना देनी होगी, मैं अभी नन्दन साहु को बुलाता हूँ।

११९

देवजुष्ट

वह सेट्ठिपुत्र पुण्डरीक वाडवाश्व पर चढकर अतक्य वग स निकल गया, अश्व-संचालन मे ऐसा नैपुण्य कभी उसका देखा नहीं गया था। पार्श्वचर अनुचर अपने अपने अश्वों को ले उसके पीछे दौडे, परंतु सेट्ठि पुत्र को न पा सके। सेट्ठिपुत्र का वह वाडव अश्व आज शतगुण वेग से वन, पर्वत, कन्दरा पार करता वायु मे तैर रहा था। अनुचर चिन्तित थकित वन उपत्यका में खडे निरुपाय सुदर पर्वतों के मध्य में वायु में तैरते सेट्ठि पुत्र को देखते रहे। किसी की कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, बहुत देर बाद अश्व लौटा। निकट आने पर सेट्ठिपुत्र ने अश्व की गति सरल की। उसने मुस्करा कर अनुचरो की ओर देखा, सब आश्वस्त हो उसे घेर कर चल दिए। अश्वारोहण का यह अभूतपूर्व कौशल उन्होंने सेट्ठि को जाकर बताया। सेट्ठि अधिक चिन्तित हो गया। पुत्र का असाधारण परिवर्तन वह स्पष्ट देख रहा था। एक-दो बार उसने पुत्र से बात करने की भी चेष्टा की, पर वह पिता को देख मुस्करा दिया। उसकी अनोखी दृष्टि से ही घबरा कर वह भाग गया। सेट्ठिनी ने यह कह कर समाधान किया—विवाह का, कामज्वर का यह आवेश है, सब ठीक हो जायगा। उसने पुत्र के विश्राम-शयन-आहार की और भी यत्न से व्यवस्था करने के आदेश दिए। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसने मित्र-मण्डली से मिलना भी बन्द कर दिया। अनेक मित्र रुष्ट हो गए। अनेकों ने हंस-कर कहा—"यह सुहागरात का उन्माद है।' माता-पिता और निकटवर्ती पार्श्वदो दासियों से भी वह कम बोलता, केवल मुस्कराता। उसकी दृष्टि तो सहन ही नहीं होती थी। एकाध वाक्य जो वह बोलता, स्वर अपरिचित

उच्चारण विचित्र। उसने शयन-कक्ष में ही डेरा जमाया, उसमें नववधू को छोड़ और किसी का आना-जाना निषिद्ध कर दिया। बहुत खोद-खोद कर पूछने पर वधू ने बताया—केवल सोते हैं, आसवपान करते हैं, बहुत कम बोलते हैं, बहुत कम खाते हैं।

नन्दन साहु के द्वारा यह सब समाचार यथासमय ब्राह्मण वर्षकार के पास भी पहुँच गया। सब घटना सुनकर वर्षकार भी विचार में पड़ गए। छायापुरुष का वैशाली के प्रान्त भाग में चक्कर लगाना उन्होंने सुना था। बहुत विचार करने पर उन्होंने सोमिल को एकान्त में बुलाकर कहा—"भद्र सोमिल, क्या वह छाया अब भी वैशाली में कहीं घूमती दीख पड़ती है?"

"नहीं आर्य, सुना तो नहीं।"

"तो तुम इसका ठीक-ठीक पता लगाओ और नन्दन साहु से कहो, कि वह सेट्ठि कृतपुण्य से कहें कि पुत्र पर कड़ी दृष्टि रखें।

सेट्ठिपुत्र पुण्डरीक का यह परिवर्तन एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में होता हुआ वैशाली भर में फैल गया, विशेषकर उसका अद्भुत अश्वारोहण वैशाली की चर्चा का विषय बन गया। उसका समय एकांत, अत्यल्प भाषण, मर्मभेदिनी दृष्टि सब कुछ कृत विकृत होकर घर-घर की चर्चा का विषय हो गईं। बहुत निषेध करने पर भी सेट्ठिपुत्र ने सान्ध्य-भ्रमण-सम्बन्धी पिता की बात नहीं मानी। पुत्र के दुर्विनय पर खिन्न हो सेट्ठि नाना प्रकार की चिन्ताओं में विलीन हो गया।

१२०

कीमियागर गौड़पाद

विश्वविश्रुत कीमियागर गौड़पाद अपनी प्रयोगशाला में बैठे देश-विदेश के आए बटुकों को रसायन के गूढ़ रहस्य बता रहे थे। विविध भ्राष्टियों और क्यूप्यकों पर अनेक रसायन सिद्ध किए जा रहे थे। बटुकों में चीन, तातार, गान्धार, तिब्बत, कपिशा, शकद्वीप, पारसीक, यवन, ताम्रपर्णी, सिंहल आदि सभी देशों के बटुक थे।

कपिशा के बटुक धन्वन ने कहा—"भगवन्, इस विस्तृत संसार के सब सजीव और निर्जीव पदार्थ किस प्रकार बने हैं?"

आचार्य ने कहा—"सौम्य धन्वन्, वे सब मूलतत्त्वों के परस्पर संयोग से बने हैं। इनके तीन वर्ग हैं। कुछ पदार्थ तत्त्व रूप ही में विद्यमान हैं, इनमें एक ही जाति के परमाणु मिलते हैं, इन्हें मूलतत्त्व कहते हैं। कुछ दो या अधिक तत्त्वों के रासायनिक संयोग से बने हैं, ये यौगिक कहाते हैं। कुछ अधिक तत्त्वों और यौगिकों के भौतिक मिश्रणों से बने हैं, ये भौतिक मिश्रण कहाते हैं।"

"और भगवन्, अणु परमाणु क्या है?" लम्बी चोटी वाले पीतमुख चीनी बटुक ने कहा।

"पदार्थ के कल्पनागम्य सूक्ष्मतम उस विभाग को जिसमें उस पदार्थ के सब गुणधर्म उपस्थित हों, किन्तु उसके फिर विभाजन से मूल पदार्थ के वे गुण-धर्म नष्ट होकर उसके अवयवों के परमाणु में मिल जायँ, वह 'अणु' कहाता है। 'परमाणु' का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे सदा संयुक्त अवस्था में 'अणु' के रूप ही में रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व 'अणु' की अवस्था ही में रहता है, परमाणु की अवस्था में नहीं। ये अणु,

परमाणु भारयुक्त है, और भिन्न-भिन्न परमाणुओं और तत्त्वों में 'बन्धन-क्षमता' है, जो परिस्थिति के अनुरूप बदलती रहती है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व से उसकी 'परमाणे-बन्धन-क्षमता' की समानता होने पर ही स्थिर संयोग बना सकता है।"

"तो भगवन् ! इस प्रकार भूमण्डल के समस्त पदार्थ, जो परमाणुओं के संयोग से बने हैं, क्या हमें सुलभ हैं ? वे हमारे लिये सतत व्यवहार्य हैं ?"--एक सिंहल छात्र ने बद्धाजलि हो कर पूछा।

"नहीं भद्र, इनमें से कुछ हमें सुलभ हैं और कुछ विरल।"

"तो भगवन् क्या परमाणु नित्य अविभाज्य है ?"--एक यवन बटुक ने पूछा।

"नहि नहि भद्र, कुछ परमाणु स्वयं ही टूट कर दूसरी जाति के परमाणु बन जाते हैं, तथा उन्हें रासायनिक रीति से तोड़ा जा सकता है; नाग के परमाणु तोड़ कर हम उसे पारदीय रूप दे सकते और पारद से सुवर्ण बना सकते हैं, आवश्यकता यही है, कि लघु परमाणु-भार को अपेक्षित गुरू परमाणु-भार में स्थापित किया जाय !"

"किन्तु भगवन्, परमाण कैसे खण्डित किया जा सकता है ? कैसे लघु-भार परमाणु को गुरु-भार परमाण के रूप में व्यवस्थित किया जा सकता है ?"--गान्धार छात्र कपिश ने पूछा।

"रश्मिक्षेपण द्वारा। पदार्थों और अणु परमाणुओं के संगठन विघटन का प्रकृत साधन परमाणु में विद्युत्-सत्त्व है, तथा उस संगठन को स्थायित्व प्राप्त होता है। रश्मिपुञ्ज से जब परमाणु का विस्फोट किया जायगा, तो विद्युत-सत्व और रश्मिपुंज-क्षेपण करना होगा। उसके बाद जब फिर से परमाणु-संगठन करना होगा तो विद्युत्-आवेश और रश्मिपुंज का विकास करना होगा।"

"यह किस प्रकार भगवन्।"

"इस प्रकार, कि प्रत्येक तत्त्व का प्रत्येक परमाणु एक छोटी-सी सूर्य-

माला है। तुम जानते हो भद्र, कि पृथ्वी आदि सम्पूर्ण ग्रह अपने विशिष्ट वृत्तों में सूर्य की परिक्रमा करते है। सूर्य रूप भी स्थिर नहीं है। इसी प्रकार समस्त विद्युत्-सत्व रश्मिपुंज की परिक्रमा करते रहते है। इससे रश्मिपुज और विद्युत्-सत्व परमाणुओं का अत्यल्प स्थान व्याप्त कर पाते है। उस व्याप्त स्थान की अपेक्षा परमाणु का बहुत-सा अन्तराकाश ठोस मे ठोस परमाणु में शून्य रहता है। इसी से तो हम कहते है—अणोरणीयान् महतो महीयान्।"

'भगवन्, हम क्या शून्य को ही आकाश समझे ? शून्य तो 'नही' है पर तत्त्व 'नहीं' नही है, आकाश यदि तत्त्व है तो वह 'नहीं' नही 'है' है। फिर भगवन्, वही आकाश परमाणु मे भी व्याप्त व्याख्यात, हुआ है। सो यदि वह 'शून्य' है तो वह आकाश तत्त्व नही है।"—एक मागध छात्र ने शंका की।

"नही भद्र, 'आकाश' शून्य का नाम नहीं है। आकाश तत्त्व एक अति सूक्ष्म तरल पदार्थ है। यह तरल पदार्थ भूमण्डल के बाहर भी व्याप्त है, भीतर भी है। ग्रहो, नक्षत्रों और उनके मध्यवर्ती आकाश से लेकर ठोस से ठोस पदार्थों के अणुओं में, यहाँ तक कि परमाणु मे भी वह व्याप्त है। यह सब सचराचर विश्व उसी द्रव-सत्त्व के अथाह समुद्र में रह रहा है। उसी से विद्युत्-सत्त्व में शक्ति, प्रकाश मे आलोक-प्रवाह और भूतत्त्व में स्थिर आकर्षण स्थापित है।"

"तो भगवन्, जड पदार्थ और शक्ति में सामञ्जस्य किस प्रकार है ?"—तिब्बत के एक छात्र ने पूछा।

"पदार्थो के पुत्र, दो ही तो स्वरूप है। या तो जड़ स्वरूप या शक्ति-स्वरूप। जड़ पदार्थ वे हैं, जिनमें भार और विस्तार, ये दो गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। शक्ति में कार्यक्षमता है, पर वह जड़ पदार्थ के आश्रय से रहती है। प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएँ हो सकती हैं। घन, द्रव और वाष्प। ये तीनों अवस्था ताप-शक्ति के कारण हैं। घन का

प्रधान गुण काठिन्य है, द्रव का समतल होना और वाष्प का जितना स्थान उसे मिले सबमें व्याप्त हो जाना। ये जड़ पदार्थ अविनाशी हैं। उनके केवल रूपों का परिवर्तन होता है।"

"शक्ति स्वरूप पदार्थ क्या हैं भगवन्?" ताम्रपर्णी के एक छात्र ने कहा।

"बल, ताप, प्रकाश और विद्युत्-सत्त्व ये चार प्रमुख शक्ति पदार्थ हैं। पदार्थ के अणुओं की गतिज शक्ति को ताप कहते हैं। प्रकाश सीधी रेखा में गमन करता है, उस रेखा को रश्मि कहते हैं। विद्युत्-सत्त्व और बल नियामक पदार्थ हैं।

"तो भगवन्! जब हम विद्युत्सत्त्व और रश्मिपुञ्ज क्षेपण से नाग के 'परमाणु' तोड़ कर पारद और पारद से सुवर्ण बना सकते हैं, तो फिर पारद ही से सुवर्ण क्यों न बना लिया जाय? पारद तो सुलभ है।"

"है, किन्तु सौम्य, जब नाग परमाणु विघटन होगा, तो हमें पारद परमाणु उसमें विघटित प्राप्त होगा, पारद में वह संगठित है। अतः उसे विघटन करने में हमें बड़ी बाधा यह है, कि वह विघटन होते-होते, और ताम्र में लय होते-होते, रश्मिपुंज क्षेपण प्रक्रिया के कारण उड़ जाता था, उसे अग्नि स्थिर करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है, इसी से नाग परमाणु विघटन करके और उस विघटित पारद पर परमाणु के रूप देकर ताम्रविलय करना अधिक उपादेय है। फिर वह नाग पारद-विघटित परमाणु विद्युत्-सत्त्व एवं रश्मिपुंज प्रतिवाहित हो शक्ति-बल और अवस्थान के अनुक्रम से शत-सहस्र-लक्ष-कोटिवेधी हो जाता है?।"

"किन्तु यदि पारद ही को अग्नि-स्थिर किया जाय?"

"तो पहले उसे क्षार, अम्ल, लवण, मूत्र, पित्त, वसा, विषवर्ग में स्नान करना होगा, उसे केंचुली रहित और बुभुक्षित करना होगा। बुभिक्षित होने पर उसे स्वर्ण में दग्ध करा कर उसका बीजकरण करना होगा। तब वह भी शत-सहस्र-लक्ष-कोटिवेधी होगा। उसके लिए उसे खोट-बद्ध करना होगा। फिर वह ताम्र-तार वंग को वेध करेगा।"

"लोह वेध क्या रसायन की इति है भगवन्?"

"ना पुत्र, वह तो परीक्षण-माप है। रस सिद्ध होने पर जब देखो कि उसने लोहवेध कर लिया तब उसे भक्षण करो, देहवेध सिद्ध हो गया।"

"देहसिद्ध पुरुष के क्या लक्षण हैं भगवन्?"

"पुत्र, देहसिद्ध पुरुष अत्यक्त शरीर होते हैं, यह शरीर ही भोगों का आश्रय-स्थल है, परन्तु वह स्थिर नहीं है। यह देहलोह सिद्ध रसायन ही उसे स्थैर्य देता है, काष्ठौषध नाग में, नाग वंग में, वंग ताम्र में ताम्र तार में, तार स्वर्ण में और स्वर्ण पारद में लय होता है, सो यह सिद्ध धातुवेधी-शरीरवेधी पारद शरीर को अजर अमर करता है, स्थिर-देह पुरुष अभ्यासवश अष्टसिद्धियों का अनुष्ठाता, परम ज्योतिस्वरूप, अमल, गलितानल्प-विकल्प, सर्वार्थविवर्जित होता है। उसकी भृकुटी के मध्य में प्रकाशतत्त्व और विद्युत्सत्त्व अधिष्ठित हो जाता है। उसी में दृष्टि को केन्द्रित करके वह सचराचर सब जगत् को प्रत्यक्ष देख जाता है। वह सब क्लेशों से रहित, शान्त और स्वयं वंद्य और अमितायु हो जाता है।"

"किन्तु भगवन्, क्या वृद्धावस्था और मृत्यु जीवन का अवश्यंभावी परिणाम नहीं? क्या वह नियत समय पर शरीर को आक्रान्त नहीं करतीं? क्या वह किसी प्रकार टाली जा सकती हैं?" तिब्बत के पीतकेशी एक बटुक ने प्रश्न किया।

आचार्य ने कहा—"सौम्य, वृद्धावस्था और मृत्यु एक रोग हैं, शरीर के अवश्यंभावी परिणाम नहीं। वे युक्ति और रसायन द्वारा टाले जा सकते हैं। शरीर जिन अवयवों से बना है, उनमें अनेक धातु और खनिज पदार्थ है, जिनका शरीर के पोषण में निरन्तर व्यय होता रहता है। सौम्य, युक्ति से इन पदार्थों के मल अवयव शरीर में जीर्ण करने से यही शरीर चिरकाल तक अमितायु हो जाता है।"

१२१

अप्रत्याशित

महारासायनिक कीमियागर गौड़पाद जिस समय देश-विदेश के बटुकों को रसायन के गुह्य गहन तत्त्व समझा रहे थे, और अजर अमर होने के मूल सिद्धान्तों की गूढ़ व्याख्या कर रहे थे; तभी उन्हें हठात् एक अप्रत्याशित कण्ठस्वर सुनाई दिया।

शताब्दियों पूर्व श्रुत, विश्रुत अप्रत्याशित कण्टस्वर सुनकर आचार्य गौड़पाद चमत्कृत हुए, उन्होंने आँख उठाकर देखा—सेट्ठिपुत्र पुण्डरीक भद्रवसन धारण किए सम्मुख खडा मुस्करा रहा है, आचार्य के दृष्टि-निक्षेप करते ही सेट्ठिपुत्र की आँखों मे एक विद्युत्प्रभा निकल कर आचार्य को आन्दोलित कर गई। उन्हें फिर वही अप्रत्याशित, शताब्दियों पूर्व श्रुत कण्ठस्वर सुनाई दिया—

"सोऽहं सोऽहं गौडपाद!"

"एक चुम्बकीय आकर्षण के वशीभूत होकर गौडपाद भ्रात हो दौड़ कर सेट्ठिपुत्र के चरणों में लकड़ी के कुन्दी की भांति गिर गए।

युवक सेट्ठिपुत्र ने लाल लाल उपानत से अपना कमनीय चरण निकाल अंगुष्ठ के नख से आचार्य का भूपतित मस्तिष्क छूकर कहा—

"उत्तिष्ठ"

गौड़पाद उठकर बद्धांजलि हो स्तवन करने लगे। बटुक आश्चर्य से मूढ़ बने खड़े रहे, और यह अघटित घटना देखने लगे।

सेट्ठिपुत्र ने हाथ उठाकर बटुकों को वहाँ से चले जाने का संकेत किया। भय, विस्मय और आश्चर्य से हतबुद्धि बटुक वहाँ से भाग गए। एकान्त होने पर सेट्ठिपुत्र ने एक आसन पर बैठकर गौड़पाद को भी

सामने बैठने का आदेश दिया। दोनों में अपरिष्कृत संस्कृत में बातें होने लगी। यहाँ हम अपनी भाषा मे लिखेंगे। गौड़पाद ने कहा—

"देवाधिदेव यहाँ?"

"तूने क्या देखा नही था?"

"देखा था देव!"

"तो आया क्यों नही?"

"मन्देह में रहा देव!"

"सोचता था—अब म नही रहा।"

"नही देव, यही विचारता रहा—देव यहाँ क्यों?"

"क्या वैशाली मेरे लिए अगम्य है रे?"

"देव के लिए ब्रह्माण्ड गम्य है, परन्तु वैशाली का भाग्योदय क्यों?"

"यह भण्ड कृतपुण्य कालिकाद्वीप से मेरा बहुत-सा रत्न-भण्डार और मेरे वाडव अश्व हरण कर लाया है।"

"इसी लिए देव-दैत्य-पूजित श्रीमन्थान भैरव का इस लोक के मर्त्य शरीर में आगमन हुआ!

"नही रे गौड़पाद, मैं कौतूहलाक्रात भी हू।"

"कैसा देव?"

"अम्बपाली का रे अभिरमणीय है न?"

"है तो, किन्तु 'काकिणी' नही है।"

"देख लिया तूने?"

"ठीक देखा है देव!"

"तो दर्शनीय ही सही"

"दर्शनीय तो है।"

"देखूंगा, फिर।"

"एक और स्त्री है देव।"

"काकिणी है?"

"है, किंतु अभिरमणीय नहीं है।"

"क्यों रे?"

"विषकन्या है।"

"अच्छा, अच्छा, उसका मदभंजन करूंगा, कौन है वह!"

"मागधी है, छद्म-वेष में यहाँ भद्रनन्दनी वेश्या बनी बैठी है।"

"अभिरमण करूंगा।"

"मर जायगी देव!"

"मरे, युद्ध कब होगा?"

"नातिविलम्ब।"

"उत्तम है, रक्तपान करूंगा, कुरु-संग्राम के बाद रक्तपान किया ही नहीं है। कितनी सेना का विनाश होगा?"

"सम्भवतः तीन अक्षौहिणी देव!"

"बहुत है, आकण्ठ तृप्ति होगी।" सेट्ठिपुत्र मृदुल भाव से मोहक मुस्कान कर आसन से उठ खड़ा हुआ। गौड़पाद ने पृथ्वी में गिरकर प्रणति-पात किया सेट्ठि ने हंस कर कहा--"रहस्य ही रखना गौड़पाद?"

"जैसी देव की आज्ञा!"

वह देवजुष्ट सेट्ठिपुत्र चल दिया। गौड़पाद बद्धांजलि खड़े रहे।

१२२

अनाहूत

अम्बपाली का जन्म-नक्षत्र था। वैशाली में उसका उत्सव मनाया जा रहा था। सम्पूर्ण नगर तोरण-ध्वजा और विविध पताकाओं से सजाया गया था। संथागार की छुट्टियाँ कर दी गई थीं। गत ८ वर्षों से लिच्छविगण तन्त्र का यह एकजातीय त्यौहार-सा हो गया था।

अम्बपाली के आवास सप्तभूमि प्रासाद ने भी आज शृंगार किया था; परन्तु यह कोई नहीं जानता था कि यह उसका अन्तिम शृंगार है। सहस्रों दीपों की झिलमिल ज्योति नीलपद्म सरोवर में प्रतिबिम्बित होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, कि मानों स्वच्छ नील गगन अगणित तारागण सहित सदेह ही भूमि पर उतर आया है। उस दिन देवी की आज्ञा से आवास के सम्पूर्ण द्वार खोल दिये गए थे, और जन-साधारण को बे-रोक-टोक वहाँ आने की स्वच्छन्दता थी। आवास में आज वे लोग भी आनन्द से आ जा रहे थे जो कभी वहाँ आने का साहस नहीं कर सकते थे।

सातवें अलिन्द में देवी अम्बपाली अपनी दासियों, सखियों और नर्तकियों सहित नगर के श्रीमन्त सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों का हँस हँस कर स्वागत एवं मनोरंजन कर रही थीं। बहुमूल्य उपहारों का आज ढेर लगा था, और भी तांता लग रहा था। सुदूर चम्पा, ताम्रपणी, सिंहल, श्रावस्ती, कौशाम्बी और विविध देशों से अलभ्य भेंट ले लेकर प्रतिनिधि आए थ। उनमें गज, अश्व, मणि, मुक्ता, रजतपात्र, शस्त्र-अस्त्र कौशय सभी कुछ थे। उनको एक कक्ष में सुसज्जित किया गया था और प्रदर्शन किया जा रहा था। उन्हें देख देखकर लोग कौतूहल और आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। बहुत सेट्ठिपुत्र और सामन्तगण अपने

अपने भेंटों को उनके समक्ष नगण्य देखकर लज्जा की अनुभूति कर रहे थे। जिन्हें देवी अम्बपाली अपने स्वच्छ हास्य एवं गर्मागर्म सत्कार से संतुष्ट कर रही थी।

सुगन्धित मद्य ढाली जा रही थी। और विविध प्रकार के भुने और तले हुए मांस भक्ष्य भोज्य स्वच्छन्दता से खाए पीए जा रहे थे। दीपाधारों पर सहस्र सहस्र दीप सुगन्धित तेलों के कारण सुरभि विस्तार कर रहे थे। सैकडो धूप-स्तम्भों पर सुगन्ध द्रव्य जलाए जा रहे थे। सुन्दरी युवती दासियाँ पैरों में पैजनियाँ पहने, कमर में मणिमुक्ता की करधनी लटकाए, मृणाल भुजदण्डों में बडे-बडे रतनों के वलय पहिने, कानों में हीरे के मकर-कुण्डल झुमाती, इठलाती, मुस्काती, बल खाती, फुर्ती और चुस्ती से मद्य ढालती चन्दन का लेप करती, नागर जन को पुष्पहार पहनाती, द्यूत के आसन बिछाती, उपाधान लगाती और विविध भोज्य पदार्थ इधर से उधर पहुंचाती फिर रही थी। स्वयं देवी अम्बपाली एक भव्य शुभ्र कौशेय धारण कर चारों ओर अपने हंस की-सी चाल से चलती हुई मन्द मुस्कान और मृदु कोमल विनोद वाक्यों से अतिथियों का मन मोहती फिर रही थी।

मध्य रात्रि व्यतीत होने लगी। पान आहार समाप्त होने पर आया। अनावश्यक भीड़ छँट गई। केवल बडे-बड़े सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र अब निराला पा सुख से उपधानों पर उठँग गए। उनकी अलस देह, अध-मुंदी आँखें और गद्गद वाणी प्रगट कर रही थी, कि वे आज इस लोक में नहीं, प्रत्युत मायापूरित किसी अलौकिक स्वर्गलोक में पहुंच चुके हैं।

मद्य की झोंक में युवराज स्वर्णसेन ने कहा—"देवी, इस परमानन्द के अवसर पर एक ही अभिलाषा रह गई।"

"तो समर्थ युवराज, अब उसे किस अवसर के लिए अवशिष्ट रखते हैं, पूरी क्यों नहीं कर लेते।"

"खेद है पूरी नहीं कर सकता। उन्होंने हाथ का मद्यपात्र खाली करके मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने उसमें और मद्य ढाल दी।

अम्बपाली ने मन्द मुस्कान करके कहा—"क्यों नहीं युवराज।"

युवराज ने ठण्डी सांस लेकर कहा—"ओह, बड़ी अभिलाषा थी।'

"हाय, हाय, ऐसी अभिलाषा की वस्तु यो ही जा रही है। परन्तु युवराज प्रिय, क्या उसकी पूर्ति एक बार परिपूर्ण छलकने मद्यपात्र को पीने से नही हो सकती?"

"नही, नही, सौ पात्रों से भी नही, सहस्र पात्रों से भी नहीं।" यह कहकर उन्होंने वह प्याला भी रिक्त करके मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने देवी का इंगित पा उसे फिर आकंठ भर दिया। देवी ने कृत्रिम गाम्भीर्य धारण करके कहा—"प्रियसूर्य मल्ल, प्रियव्रत, अरे, प्राणसखाओ यहाँ आओ, भाई युवराज की एक अभिलाषा आज अपूर्ण ही रही जाती है, वह सौ मदपात्र पीने से भी नहीं, सहस्र पात्र पीने से भी नहीं पूरी हो रही।'

दो चार मित्र अपने-अपने मदपात्र लिए हँसते हुए वहाँ आ जुटे। स्वर्णसेन खाली मदपात्र हाथ मे लिए ठण्डी सास ले रहे थे।

सोमदत्त ने कहा—"क्या मेरा यह पात्र पीने से भी नहीं मित्र?"

"नहीं रे नहीं, ओफ, अन्तस्तल जला जा रहा है।"

"अरे ढाल री दाक्षा-रस ढाल, युवराज का अन्तस्तल जला जा रहा है।" देवी अम्बपाली ने हसकर मदलेखा से कहा।

सभी मित्र हँसने लगे। प्रियवर्मन ने कहा—"युवराज की उस अपूर्ण अभिलाषा के समर्थन में एक-एक परिपूर्ण पात्र और पिया जाय।"

सब ने पात्र भरे, स्वर्णसेन ने भी रिक्त पात्र मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने दाक्षारस ढाल दिया।

सोमदत्त ने कहा—"मित्र युवराज, आपकी वह अभिलाषा क्या है?"

"यही, कि इस समय दस्यु बलभद्र यहाँ यदि आमन्त्रित किया गया होता, तो इस मद्य में अपने खड्ग को डुबोकर इसे उसके वक्ष के आर-पार कर देता।"

"तो देवी अम्बपाली, आपने यह अच्छा नहीं किया, दस्यु बलभद्र को निमन्त्रित करना ही भूल गईं।"

"भूल नहीं गई प्रिय, मैं तो केवल नागरिकों को ही निमंत्रित कर सकती हूँ, दस्यु बलभद्र तो अनागरिक है" अम्बपाली ने हँसकर कहा।

सूर्यमल्ल ने हँसकर कहा—"अरे मित्र, यह कौन बड़ी बात है। आज सूर्योदय से पूर्व ही तुम अपनी अभिलाषा पूर्ति कर लेना।"

देवी अम्बपाली ने कहा—"मित्रो, क्या तुम में से किसी ने दस्यु को देखा भी है?"

नहीं, नहीं देखा है"

"तो यदि वह छद्म-वेश धारण करके यहाँ आया हो, आकार पान गोष्ठी का आनन्द लूट ले रहा हो तो?"

"तो, तो यह तो बड़ी दूषित बात होगी"—सूर्यमल्ल ने कहा।

"दूषित किस लिए प्रिय?"

"हम भद्र नागरिकों के साथ एक दस्यु पान करे?"

"परन्तु मैं सोचती हूं भद्र, कि किसी भांति हम जान जायँ कि वन्य पशु-पक्षी हम लोगों के विषय में क्या सोचते होंगे—तो सम्भव है, हम जानकर आश्चर्य करें, कि वे हम भद्र नागरिकों में बहुत से दोषों का उद्घाटन कर लेंगे।"

"किन्तु देवी, यदि उस दस्यु को एक बार देख पाएं?"

"तो मैं उसे स्वयं एक पात्र भरकर दूँ और अपने को प्रतिष्ठित करूं"

"प्रतिष्ठित?"—सूर्यमल्ल ने चिढ़ कर कहा।

"क्यों नहीं, मित्र, अन्ततः वह एक साहसिक और वीर पुरुष तो है ही।"

"यह तो तभी कहा जा सकता है जब एक बार हमारे खड्ग का पानी पी जाय।"

"तो जब उसने बज्जीभूमि में चरण रखा है, तो यह एक दिन होगा ही, और यदि सूर्यमल्ल की भविष्यवाणी सत्य हो तो आज ही।"

"आपके इस प्रश्न का उत्तर जाननेवाले को गणपति ने दस सहस्र स्वर्णभार देने की घोषणा की है।"

"तो यह भी हो सकता है भद्र, कि यह दस सहस्र स्वर्णभार उस सूचना देने वाले पुरुष के सिर का ही मोल हो।"

इसी समय कक्ष की एक ओर से किसी ने शान्त स्निग्ध किन्तु स्थिर वाणी में कहा—

"देवी अम्बपाली अपने हाथों से एक पात्र मद्य देकर यदि अपने को सुप्रतिष्ठित करना चाहें तो यह उनके लिए सर्वोत्तम अवसर है!"

सबने आश्चर्य-चकित होकर उधर देखा। एक स्तम्भ की ओट से दीर्घ-काय, बलिष्ठ पुरुष नग्न खड्ग हाथ में लिए धीर गति से आगे बढ़ रहा था। उसका सर्वांग काले वस्त्र से आवेष्ठित था और मुख पर भी काला आवरण पड़ा हुआ था।"

यह अतर्कित असम्भाव्य घटना देख क्षण भर के लिए सब कोई विमूढ़ हो गए। अम्बपाली उस कण्ठ-स्वर में कुछ-कुछ परिचित ध्वनि पाकर सन्देह और उद्वेग से उस आगन्तुक को देखने लगी। इसी समय सूर्यमल्ल ने खड्ग लेकर आगे बढ़कर कहा—"यदि तुम वही दस्यु हो, जिसकी हम अभी चर्चा कर रहे थे, तो तुम्हें इसी क्षण मरना होगा।"

"जल्दी और व्यवस्था-क्रम-भंग मत करो मित्र सूर्यमल्ल, मैं वही हूं, जिसकी तुम लोग चर्चा कर रहे थे। परन्तु मैं तुमसे अभी बात करूंगा, पहले देवी अम्बपाली एक चषक मद्य अपने हाथों मुझे प्रदान कर मुझे सुप्रतिष्ठित होने का सम्मान प्रदान करें।"

सूर्यमल्ल ने बिना कुछ बोले खड्ग उठाया। अम्बपाली ने अब

आगन्तुक के कण्ठ-स्वर को भली भांति पहचान लिया । उसने आगे बढ़कर सूर्यमल्ल का हाथ पकड कर कहा--

"ठहरो, भद्र, पहिले मद्य दूंगी । उन्होंने अपने हाथों मद्यपात्र भर कर आगे बढ कर दस्यु को दिया ।

मद्य पीकर उसने पात्र आधार पर रख दिया और कहा--"सुप्रतिष्ठित हुआ देवी।"

"मैं सुप्रतिष्ठित हुई भन्ते !"

सूर्यमल्ल ने आगे बढ़ कर कहा--"बहुत हुआ देवी अम्बपाली, अब आप तनिक हट जाइए।"

"परन्तु मेरे आवास में आज रक्त-पात नहीं होगा।" उन्होंने आगे बढ़ कर कहा।

दस्यु ने कहा--"देवी अम्बपाली ! आज सबकी इच्छा पूरी होने दो। मित्र सूर्यमल्ल, तुम्हारी पारी क्षण भर बाद आएगी । अभी युवराज स्वर्णसेन, अपनी वह चिरभिलषित इच्छा पूरी करें, जो शत सहस्र मद्यपात्रों मे भी पूर्ण होने वाली नही थी।" फिर थोड़ा आगे बढ़कर कहा--"मित्र स्वर्णसेन, यह सेवक दस्यु बलभद्र उपस्थित है । खड़े हो जाओ, हाथ का मद्यपात्र रख दो, वह सम्मुख खड्ग हे उठा लो, और झटपट चेष्टा करके देखो, कि अभिलाषा-पूर्ति कर सकते हो या नहीं; क्योंकि जब मै अपनी अभिलाषा पूर्ति करने में जुट जाऊंगा, तो फिर युवराज की मन की मन में रह जायगी। अवसर नही मिलेगा।"

कक्ष में उपस्थित स्त्री पुरुष स्तब्ध आतंकित खड़े थे। केवल अम्बपाली का रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने दस्यु को और दस्यु ने उनको चुराई आँखों में देखकर मन ही मन हंस दिया।

दो पग आगे बढ़ कर खड्ग को हवा में ऊँचा उठाते हुए दस्यु ने कहा--"उठो युवराज, मुझे अभी बहुत काम है, आज देवी अम्बपाली

का जन्म-नक्षत्र है। आज प्रत्येक नागरिक की मनोभिलाना पूरी होनी चाहिए।

युवराज अभी नश में झूम रहे है। अब उन्होंने हाथ का मद्यपात्र फेंक कर लपक कर एक भारी बर्छा भीत मे उठा लिया। अन्य लिच्छवि-तरुणों ने भी खड्ग खींच लिए।

दस्यु ने उसकी ओर देख कर कहा—'मित्रो, पहिले युवराज"

युवराज ने इसी समय प्रबल वेग मे बर्छा फेंका। दस्यु ने उछल कर एक खम्भे की आड़ ले ली। बर्छा खम्भे में टकरा कर टूट गया। दस्यु ने आगे बढ़ कर युवराज स्वर्णसेन के कण्ठ में हाथ डाल कर उन्हें आगे खीच लिया, और कण्ठ पर खड्ग रखकर कहा—"अब इस खड्ग से क्या मै तुम्हारा सिर काट लूँ युवराज?"

"नही, नहीं इस समय यहाँ ऐसा नही होना चाहिए।" अम्बपाली ने कातर कण्ठ से कहा।

दस्यु ने हंस कर कहा—"यही मेरी भी इच्छा है। परन्तु इसके लिए घुटने टेक कर युवराज को प्राण-भिक्षा माँगनी होगी।"

स्वर्णसेन ने सूखे होठ चाट कर कहा—"मेरा खड्ग कहाँ है?"

"यह है मित्र, दस्यु ने खड्ग उठाकर युवराज पर फेंक दिया। युवराज ने भीम वेग से आगे बढ़ कर दस्यु पर खंग का प्रहार किया, परन्तु नशे के कारण वार पृथ्वी पर पड़ा। दस्यु धीरे से एक ओर हट गए। युवराज झोंक न सम्हाल सकने के कारण औंधे मुंह पृथ्वी पर गिर गए।

दस्यु ने एक लात मार कर कहा—"अब घुटनों के बल बैठ कर प्राणदान मांगो युवराज"—और उसने अनायास ही युवराज को अपने चरणों पर लुटा दिया।

अम्बपाली ने हर्षातिरेक से विह्वल होकर कहा—'ओह!'

परतु दूसरे ही क्षण क्रुद्ध सामन्त-पुत्र चारों ओर से खड्ग ले ले कर दौड़े।

"जो जहाँ है वही खड़ा रहे"—दस्यु ने कड़कते स्वर में कहा—म यहाँ तुम मद्यप स्त्रैणों की हत्या करने नही आया हूं।"

लोगों ने भयभीत होकर देखा–अनगिनत काली २ मूर्तियाँ प्रेत की भांति कक्ष में न जाने कहाँ से भर गई। सबके हाथ में विकराल नग्न खड्ग थे।

दस्यु ने कहा—"एक एक आओ, और स्वर्ण रत्न आभरण अपने अपने अंगों पर से उतार कर यहाँ मेरे चरणों में रखते जाओ।"

सब ने देखा, प्रत्येक की पृष्ठ पर एक-एक जम नग्न खड्ग लिए खड़ा है। सब जड़वत् खड़े रहे।

"पहिले तुम स्वर्णसेन"—दस्यु ने युवराज की गर्दन पर खड्ग की नोक रखकर कहा।

स्वर्णसेन ने अपने रत्नाभरण उतार कर चुपचाप दस्यु के पैरों में रख दिए।

इसके अनन्तर एक एक करके सबने उनका अनुसरण किया।

दस्यु ने मुस्कराकर कहा—"हाँ, अब ठीक हुआ। अम्बपाली ने मदलेखा को संकेत किया, वह कक्ष में गई और एक रत्न-मंजूषा लेकर लौट आई, उसे अम्बपाली ने अपने हाथों में ले चुपचाप दस्यु के चरणों में रख दिया।

इसी समय महाप्रतिहार ने भय से काँपने-काँपते आकर कहा—'देवी, सम्पूर्ण आवास को सहस्रों दस्युओं ने घेर लिया है।'

अम्बपाली ने स्निग्ध स्वर में कहा—

"आगार-जेट्ठक को कह भद्र कि सब द्वार खोल दे, सब पहरे हटा ले, समस्त भण्डार उन्मुक्त कर दे, और दस्युओं से कह—कि वे सम्पूर्ण आवास लूट ले जायं।"

प्रतीहार भयभीत होकर कभी देवी और कभी दस्युपति के चरणों मे पडे रत्न-राशि की ओर और कभी प्रस्तर-प्रतिमा की भाँति अवाक् निस्पन्द खडे सेट्ठि-सामन्त-पुत्रों को देखने लगा। फिर चला गया। अम्बपाली ने कक्ष मे खडे दस्युओं को सम्बोधित करके कहा--"मित्रो, उस कक्ष में आज की बहुमूल्य उपानय उपहार-सामग्री एकत्रित है, इसके अतिरिक्त आवास में शत कोटि स्वर्णभार, बहुत-सा अन्न भण्डार तथा गज, रथ, अश्व है। वह सब लूट लो। अनुमति देती हूं, आज्ञा देती हूं।" ऐसा प्रतीत होता था जैसे देवी अम्बपाली के शरीर की एक-एक रक्त बूँद आनन्द मे नृत्य कर रही थी।

दस्यु बलभद्र ने संकेत से सब को रोक कर फिर अम्बपाली की ओर घूर कर कहा--"देवी और सब तथाकथित भद्र जन उस कक्ष के उस पार अलिन्द में तनिक चलने का कष्ट करें।"

सब ने दस्यु की आज्ञा का तत्क्षण पालन किया। अलिन्द में जाकर दस्यु ने द्वार का आवरण उघाड़ दिया। सबने देखा--नीचे प्रांगण म असंख्य नरमुण्ड खड़े हैं। सब की पीठ पर एक-एक गठरी है।

बलभद्र ने पुकार कर कहा--"मित्रो, तुमने देवी अम्बपली के आवास से क्या लूटा है?"

"हमने केवल अन्न लिया है भन्ते!"

अम्बपाली ने कहा--"मेरे आवास में शत-कोटि स्वर्ण-भार और अनगिनत रत्न चहबच्चों और खत्तों में भरे पड़े है। सबके द्वार उन्मुक्त हैं। तुम लूट क्यों नहीं लेते प्रिय जनो?"

"नही नहीं देवी, हम ऐसे दस्यु नहीं हैं। हम भूखे ग्रामीण कृषक हैं। अन्तरायण के अधिकारियों ने सेना भेज कर हमसे बलि ग्रहण कर ली थी, वे हमारी सारी फसल उठा कर ले गए हैं, हमारे बच्चे भूखों मर रहे थे। देवी की जय रहे। अब वे पेट भर कर खाएंगे।"

दस्यु ने कहा--"देवी अम्बपाली, यह गण-तन्त्र भी उसी भांति

गण शोषक हैं, जैसे साम्राज्य। यहाँ भी दास हैं, दरिद्र हैं, और ये निकम्मे मद्यप स्त्रैण सामन्तपुत्र हैं। ये सेट्ठिपुत्र हैं। आज ये कंकड पत्थर की भांति अरब खरब की रत्न-मणि अपने शरीर पर लाद कर इन भूखे नंगे कृषकों को लूटने को सेना भेज कर यहाँ मद-मत्त होने आए ह। ये सभी गणरक्षक तो यहाँ हैं, जो निर्लज्ज की भांति वीर दर्प करते हैं। देवी! मैं ये हीरे मोती इन्ही कृषकों को लौटा देना चाहता हूँ, जिनके पेट का अन्न छीनकर ये मोल लिए गए हैं। इन्हें फिर मे बेच कर ये अन्न मोल लेकर अपने बच्चों को खिलाएंगे और वस्त्र पहनावेंगे।"

दस्यु की आँखो से आग की झड़ें निकल रही थी। इसी समय मद-लेखा धीरे-धीरे आगे बढ़ी। उसने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिए। उनमें उसके दो तीन आभरण थे। मृदु मन्द स्वर से कहा—"ये मेरे हैं भन्ते, इन्हे लेकर मुझे भी अनुगृहीत कीजिए।"

कठोर दस्यु द्रवित हुआ। उसने आशीर्वाद का वरद हस्त उस क्रीता दासी के मस्तक पर रखा और फिर कहा—"मित्रो, अब तुम शांत भाव से अपने-अपने स्थान को चले जाओ।"

सब के चले जाने पर दस्यु ने कहा—"आप सब जो जहाँ हैं, घडी भर वहीं रहें।"

सबने चुपचाप दस्यु की आज्ञा का पालन किया। दस्यु समुदाय वहाँ से उसी प्रकार लोप हो गया, जिस प्रकार प्रकट हुआ था।

१२३

एकाकी

जयराज ने साहस किया। वे लोमडी की भांति चक्कर काट कर अगले गाँव की ओर बढ़े। वे जानते थे, वह ग्राम बडा था। तथा वहाँ ठहरने की भी सुविधाएं थी। ये ग्राम मल्लो और कोलो के थे। इससे जयराज को यह भी आशा थी कि आवश्यकता होने पर नगरपाल या ग्राम-जेट्ठक उनकी सहायता कर सकेगा। मार्ग में एक निविड वन पडता था। रात अंधेरी थी और जयराज के पास अश्व भी न था। अन्धकार और भय का परस्पर सम्बन्ध है, जयराज एक जीवट के पुरुष थे। कार्य-गुरुता समझ उन्होंने प्रत्येक मूल्य पर आगे चले जाना ही ठीक समझा। वे नग्न खड्ग हाथ में लिए गहन वन में घुस गए। सम्पूर्ण रात्रि उनको चलने ही व्यतीत हुई। थकान प्यास और भूख जब असह्य हो गई, तब उन्होंने एक वृक्ष का आश्रय ले शेष रात काटी। कुछ देर विश्राम करने से उन्हें थोड़ा सुख मिला। सूर्योदय से कुछ पूर्व ही वे फिर चल पड़े। थोड़ी ही देर मे उन्हे राज-मार्ग दीख पड़ा। तीन ओर से तीन मार्ग आकर मिले थे। निकट ही वह ग्राम था। ग्राम मे आहार आश्रय पाने की आशा से वे शीघ्र-शीघ्र चलने लगे। इसी समय एक सार्थवाह का साथ हो गया। इसमें सब मिलाकर छै पुरुष, चार अश्व और ३ टाघन थे। ये मैरेय के कूप्यक लेकर राजगृह जा रहे थे। जयराज इनसे बात ही कर रहे थे कि चार और मनुष्य इस मण्डली मे आ मिले। सार्थवाहों ने कहा--'ये अपने ही जन हैं, पीछे रह गए थे, जयराज को संदेह हुआ, परन्तु वह उन्हीं के साथ बातें करते हुए चलने लगे। उन्होंने अपने को एक वस्त्र-व्यवसायी बताया। इस पर उनमें से एक उनके लम्बे खड्ग की ओर देखकर खिलखिला कर हँस पड़ा।

दो दण्ड दिन चढते-चढते वे सब उस ग्राम में जा पहुँचे। ग्राम सम्पन्न और बडा था। उसमे पक्की अट्टारियाँ थी। भद्रवसन जन भी थे। खाद्य-हाट भी थी। नगर के बाहर ही एक पान्थागार था। उसी में सबने विश्राम किया। सबके साथ मिलकर जयराज भी खाने-पीने की व्यवस्था में लग गए। निकट ही एक छोटी-सी नदी थी। वहाँ जाकर उन्होने स्नान किया। वस्त्र धोए, फिर भोजन बनाया। साथी सार्थवाह भी इधर उधर फैल कर खाने की खटपट में लगे। परन्तु उनका व्यवहार संदेहास्पद था। जयराज ने देखा वे अत्यन्त गुप्त भाव से उन्हीं पर दृष्टि दिए है। उन्हें भी सन्देह हुआ कि सम्भवतः वे किसी आगन्तुक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सन्देह बढता ही गया और जयराज नग्न खड्ग पास रख भोजन बनाने लगे। उनके खड्ग को देख कर जो हँसा था, उसने दिल्लगी से कहा—'भन्ते, यह क्या बात है? आप भात भी क्या खड्ग से ही खाते है?'

जयराज ने भी हँस कर कहा—"नही मित्र, परन्तु कुत्ते बिल्ली का भय तो है ही।"

"ओह, तो इसी लिए नग्न खड्ग निकट रख भोजन बना रहे है।"

"इसी से मित्र।"

सार्थवाह जनों ने कुटिल मुस्कान की।

जयराज ने भोजन तैयार होने पर भोजन करने को हाथ बढाया। इसी समय काणे चाण्डाल मुनि ने आगे बढ़ कर कहा—"आयुष्मानो, मैं जन्मतः चाण्डाल हूँ। ब्रह्मचर्य-व्रत मैंने धारण किया है। यम नियमो का विधिवत् पालन करता हूँ। मैं राँध कर नहीं खाता। अपने बचे हुए आहार में से थोड़ा मुझे दो।"

उस धूर्त काणे नापित गुप्तचर को अपने सिर पर उपस्थित देखकर जयराज का माथा ठनका। उन्होंने सोचा, ब्राह्मण महामात्य की सहस्र आखें हैं, सहस्र भुजाएं हैं। उसकी दृष्टि से बचकर कुछ नहीं किया जा

सकता। कैसे यह काणा नापित इस समय यहाँ उपस्थित हो गया।

किन्तु शेष सार्थवाह-जनों ने ससम्भ्रम उठकर काणे मुनि का बहुत-बहुत स्वागत सत्कार किया, और विविध भावभंगी दिखा कर कहा—"आइए मुनि, आइए भदन्त, यह आसन है, हमारा आज का भोजन ग्रहण कर हमें कृतार्थ कीजिए।"

जयराज पर अब सार्थवाहजनों की वास्तविकता भी प्रकट हो गई। निस्सन्देह ये सब मागध गुप्तचर थे। उन्होंने मन की चिन्ता मन ही में छिपा कर हँस कर उस छद्मवेशी काणे मुनि के सत्कार में साथियों का योग दिया। काणा विविध सेवा-सत्कार से सन्तुष्ट हो, धार्मिक कथा कहकर उन्हें सम्बोधित करने लगा। जयराज अपनी आत्मरक्षा के लिए योजना स्थिर करने लगे। उन्होंने सोचा, निस्संदेह आज एक बडी योजना का सामना करना पडेगा। उन्होंने मन ही मन कर्तव्य स्थिर किया और साथियों से कहा—

"मित्रो मै एक अश्व खरीदना चाहता हूँ, क्या यहाँ मिलेगा?

"कैसे कहें भन्ते, हम तो सब नवागन्तुक हैं।"

"परन्तु कोई एक मेरे साथ बस्ती में चले, तो अश्व देखा जाय।

सार्थवाहों ने दृष्टि विनिमय किया। एक ने उठकर कहा—"मैं चलता हूँ भन्ते।"

दोनों गाँव में चक्कर काटने और अश्व ढूंढ़ने लगे। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वे कोटपाल के घर के निकट पहुँचे। वहाँ पहुँचकर जयराज ने कहा—"मित्र यह कोटपाल का घर है। क्यों न इससे सहायता ली जाय।"

साथी हिचकिचाया, परन्तु उसे सहमत होना पड़ा। कोटपाल के निकट जाकर जयराज ने एक अश्व खरीदने में उसकी सहायता माँगी। कोटपाल के पास एक अड़ियल टट्टू था। उसकी बहुत-बहुत प्रशंसा करके उसने वह टट्टू जयराज के गले मंढ़ दिया। जान-बूझकर जयराज ने टट्टू पसन्द कर लिया। टट्टू की चाल की परीक्षा करने और पान्थागार से सुवर्ण ले

आने के बहाने जयराज उस व्यक्ति को कोटपाल के निकट बैठा कर तथा 'अभी मुहूर्त भर में लौट कर आता हूँ' कह कर वहाँ से टट्टू ले, निश्शंक जिस तीव्र गति से जाना शक्य था, राज-गृह के मार्ग पर दौड़ चले। सूर्यास्त तक वे चलते गए। टट्टू अड़ता था, परन्तु उसमे विशेष बाधा न होती थी। रात होते-होते जयराज एक दूसरे ग्राम के निकट पहुँचे। वहाँ एक चैत्य में एक क्षपणक रहता था। उसकी अनुमति से उन्होंने वहीं रात काटने का विचार किया। क्षपणक थोड़ा धन पाकर सन्तुष्ट हो गया। आहार से निवृत्त होकर जयराज ज्यों ही शयन की व्यवस्था कर रहे थे, कि वही काणा उनके निकट पहुँचा। पहुँचकर कहा--"मै चाण्डाल कुल का ब्रह्मचारी हूँ, अष्टाँग-यम-नियम का विधिवत्. . . ."

उस धूर्त काणे गुप्तचर को प्रेत की भाति अपने पीछे लगा देख जयराज क्रोध से पागल हो गए, परन्तु उन्होने उठकर उस कपट मुनि का सत्कार करके कहा--"भदन्त, भोजन मै कर चुका, आहार शेष नही है। क्या स्वर्ण दूं?"

"नही उपासक! मै स्वर्ण नहीं छूता, हाथ से राँध कर खाता भी नही"

"तो दुःख है भदन्त! तुम किसी गृहस्थ से भोजन ले आओ।"

"या निराहार ही सो रहूँ? जैसा तू कहे, उपासक।"

"जिसमें भदन्त अपना धर्म समझें।"

जयराज कक्ष में जा, दीपक एक कोने में रख, भूमि पर बिछौना बिछा सो गए। कुछ देर काणा मूनि उस क्षपणक के साथ धर्मचर्चा करता रहा। फिर वह भी वहीं सो गया।

जब जयराज ने दोनों को सोया समझा, तो झांक कर उन्हें देखा। वे युक्ति से उसके कक्ष का द्वार रोक कर सोए थे। जयराज ने समझ लिया--दोनों, यह क्षपणक भी गुप्तचर ही हैं। उन्होंने भली भांति कक्ष की दीवारों छतों और द्वार को देखा। घर पुराना था और द्वार सड़ा हुआ। आक्रमण होने पर रक्षा के योग्य नहीं था। परन्तु उन्होंने सोचा कि ये दो ही हैं,

तब तो मैं ही यथष्ट हूँ। उन्होंने आवश्यकता होने पर उस धूर्त काणे को जान से मार डालने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उन्होंने स्वर्ण से भरी थैली अपने कण्ठ में लटका ली। खड्ग नग्न करके निकट रख लिया। उतारे हुए वस्त्र फिर से पहन लिए। इसके बाद द्वार की भली भाति परीक्षा करके उन्होंने दीप बुझा दिया।

दीप बुझाकर वे निश्शब्द बिछौने से उठकर द्वार से कान लगा कर बैठ गए। थोड़ी ही देर में काणा मुनि उठकर बैठ गया। क्षपणक भी उठ बैठा। क्षपणक दो उत्तम बड़े-बड़े खड्ग छिपे स्थान से उठा लाया। जयराज यह सब देख बिस्तरे पर जा सोने का नाटक करते हुए वेग से खुर्राटे भरने लगे।

आखेट को सोया हुआ समझकर दोनों खड्ग लेकर द्वार के निकट आ खड़े हुए। किसी पूर्व-निश्चित विधि से उन्होंने निश्शब्द द्वार खोल डाला। द्वार खुलते ही जयराज बिछौने से उठकर द्वार के पीछे आड़ में छिप गए। आगे काणा और पीछे क्षपणक दोनों निश्शब्द आगे बढ़े। काणे के तनिक आगे बढ़ जाने के बाद क्षपणक वही ठिठुक कर 'काणा बिछौने के निकट क्या कर रहा है यह देखने लगा।' इस अवसर से लाभ उठा कर जयराज ने एक भरपूर हाथ खड्ग का क्षपणक के मोढ़े पर फेंका। और क्षपणक बिना एक शब्द किए बीच से दो टूक होकर गिर पड़ा।

काणा नापित खड्ग हाथ मे ले घूम कर खड़ा हो गया। जयराज ने कहा—"भदन्त, यहाँ तो बहुत अन्धकार है, तुम्हारा साथी तो निर्वाण-पद को पहुँच गया। अब तुम बाहर आओ। वहाँ चन्द्रमा का क्षीण प्रकाश है। पर मैं समझता हूँ, तुम्हारे निर्वाण के लिये यथेष्ट है।"

नापित ने कहा—'भन्ते, ऐसा ही हो।' बाहर आकर दोनों घोर युद्ध में रत हुए। कोई भी जीवित प्राणी वहाँ उनका साक्षी न था। जयराज ने कहा—"प्रभंजन, तू खड्ग चलाने में उतना ही प्रवीण है, जितना छद्मवेश धारण करने में। परन्तु आज तेरी यहीं मृत्यु है।"

"जीवन और मृत्यु तो भन्ते, आने जाने वाली वस्तु है। जो गुप्तचर कार्य में रत हैं, वे इस बात पर विचार नहीं करते।"

"यह क्या चाण्डाल मुनि का वचन है?"

"नही भन्ते, प्रभंजन नापित गुरु का। मैं खड्ग-हस्त होकर झूठ नही बोलता।"

और बातचीत नहीं हुई। दोनों वीर असाधारण कौशल से युद्ध करने लगे। ऐसे भी क्षण आए जब जयराज को प्राणो का भय आ उपस्थित हुआ। पर एक अवसर पर प्रभंजन का पैर फिसल गया। उसका उठा हुआ खड्ग लक्ष्य-च्युत हुआ और दूसरे ही क्षण उसके कण्ठ पर जयराज का भरपूर खड्ग पड़ा, जिससे उसका मस्तक कट कर और लुढक कर दूर जा गिरा। मस्तक कटने पर भी प्रभंजन का रुण्ड कुछ समय तक खड्ग घुमाता रहा। उस एकान्त रात में, जनशून्य चैत्य में रक्त से भरी भूमि में रक्त चता हुआ खड्ग हाथ में लिए जयराज ने छिन्न मस्तक रुण्ड को हवा में खड्ग ऊँचा किए अपनी ओर दौडता देखा तो भय से पीले पड गए। इसी क्षण प्रभंजन का कबंध भूशायी हो गया। जयराज अब वहाँ एक क्षण भी न ठहर उसी के वस्त्रों से खड्ग का रक्त पोंछ राजगृह के मार्ग पर एकाकी ही अग्रसर हुए। उस समय वह भय और साहस के झूले में झूल रहे थे।

———

१२४

मधुवन में

दस्यु बलभद्र आगे, देवी अम्बपाली उनके पीछे, स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल उनसे भी पीछे, तथा पाँच दस्यु खग-हस्त उनके पीछे इस प्रकार वे वैशाली के शून्य राजपथ को पार कर वन-वीथी में होते हुए उत्तर रात्रि में मधुवन-उपत्यका में पहुँच गए। अम्बपाली दस्युराज से बात किया चाह रही थीं; परन्तु दस्यु चुपचाप आगे बढ़ा जा रहा था, मार्ग में अन्धकार था। अम्बपाली एक सुखद भावना से ओत-प्रोत हो गई। उसके मानस नेत्रों में कुछ पुराने चित्र अंकित हुए। वह होठों ही मे कहने लगी, यदि इसी समय एक बार फिर सिंह आक्रमण करे और मुझ उधर पर्वत-शृंग पर स्थित कुटीर में एक बार अवश नृत्य करना पड़े तो कैसा हो?"

उसने आवेश मे आकर अश्व बढाया। अश्व को दस्युराज के निकट लाकर कहा--

"भन्ते, हम कब तक इस भांति चलना पड़ेगा।"

"हम पहुँच चुके देवी"--दस्यु ने कहा।

फिर एक सकेत किया। कही से एक दस्यु काले भूत की भांति निकल कर सम्मुख उपस्थित हुआ। दस्यु ने मन्द स्वर मे कहा--

"साम्ब, सब यथावत् ही है न?"

"हाँ भन्ते!"

"तब ठीक है तू अपना कार्य कर।"

काला भूत चला गया। दस्यु ने अब पर्वत पर चढना प्रारम्भ किया। पहाड़ी बहुत ऊँची न थी। चोटी पर चढ़कर सब लोग यथा-स्थान खड़े हो गए। सूर्यमल्ल और स्वर्णसेन ने भयभीत होकर देखा--

सम्मुख उस टेकरी के दक्षिण पार्श्व की उपत्यका में दूर तक स्थान-स्थान पर आग जल रही थी। उस जलती आग के बीच मे, आगे पीछे बहुत से दस्यु अश्व पर सवार हो इधर से उधर आ जा रहे हैं। सबका सर्वांग काले वस्त्र से आवेष्टित है। सूर्यमल्ल ने धीरे से निकट खड़े हुए युवराज स्वर्णसेन से कहा—"यह तो दस्यु-सैन्य-शिविर प्रतीत होता है। दीख पड़ता है, जैसे दस्युओं का दल चीउँटियो के दल के समान अनगिनत है।"

एक विचित्र प्रकार का अस्फुट शब्द-सा सुनकर स्वर्णसेन ने टेकरी के वाम पार्श्व में घूम कर देखा। उधर से एक सुसज्जित अश्वारोही सैन्य धीरे २ सावधानी से इस तथा कथित दस्यु-शिविर की ओर बढ रहा था। उनके शस्त्र इस अन्धेरी रात में भी दूर जलती हुई आग के प्रकाश में चमक रहे थे। इस सैन्य को धीर-गति से आगे बढते देख स्वर्णसेन ने प्रसन्न मुद्रा से उंगली से उधर संकेत किया।

सूर्यमल्ल ने हर्षित होकर कहा—

"यह हमारी सेना है, दस्युओं के शिविर पर अब आक्रमण हुआ ही चाहता है। परन्तु दस्यु क्या बिल्कुल ही असावधान है?"उसने अचल भाव से आग की ओर निश्चल देखते हुए दस्युओं की ओर देखा। फिर पीछे खडे हुए दस्युओं को मुह फेर कर देखा। वे उसी प्रकार नग्न खड्ग लिए खडे थे।

इतने ही में लिच्छवि सेना ने एकबारगी ही फैलकर दस्यु शिविर पर धावा बोल दिया। स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल का रक्त उबलने लगा। उन्होंने दस्यु बलभद्र की ओर देखा, जो उसी भांति निस्तब्ध खड़ा था।

"क्या इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, किस भरोसे यह निश्चिन्त यहाँ खड़ा है?' स्वर्णसेन ने हाथ मलते हुए कहा—"खेद है हमारे पास शस्त्र नहीं हैं।"

लिच्छवि सैन्य ने वेग से धावा बोल दिया । परन्तु यह कैसा आश्चर्य है कि दस्यु सम्मुख नहीं आ रहे हैं। जो दस्यु सैनिक इधर उधर वहाँ घूमते दीख रहे थे, वे भी अब लुप्त हो गए हैं। लिच्छवि सेना यों ही शून्य में अपने भाले और खड्ग चमकाती हुई चिल्ला रही थी। वह जैसे वायु से युद्ध कर रही है।

"यह सब क्या गोरखधन्धा है मित्र" स्वर्णसेन ने सूर्यमल्ल का कन्धा पकड़ कर कहा।

सूर्यमल्ल की दृष्टि दूसरी ओर थी । उसकी आँखें पथरा रही थीं और वाणी जड़ थी। उसने भरे हुए स्वर में कहा—

"सर्वनाश", साथ ही एक ओर को उंगली उठाई।

स्वर्णसेन ने देखा—"काली नागिन की भांति काले वस्त्र पहने दस्यु-सैन्य एक कन्दरा से निकल कर लिच्छवि-सैन्य के पिछले भाग में फैलती जा रही है। दूर तक इस काली सेना के अश्वारोही घाटी में बिखरे हुए हैं। देखते ही देखते, लिच्छवि सैन्य का उसने समस्त पृष्ट भाग छा लिया। और जब वह सेना-विमूढ़ की भाँति दल बाँध कर तथा सम्मुख एक भी शत्रु न पाकर ठौर-ठौर पर जलती हुई आग के चारों ओर घूम-घूम कर तथा हवा में शस्त्र घुमा-घुमा कर चिल्ला रही थी, तभी दस्यु-सैन्य ने, जैसे कोई विकराल पक्षी अपने पर फैलाता है, अपने दाहिने बाएं पक्षों का विस्तार किया । देखते ही देखते लिच्छवि-सैन्य तीन ओर से घिर गई। सम्मुख दुर्गम दुर्लघ्य पर्वत था । परन्तु लिच्छवि-सैन्य को कदाचित् आसन्न विपत्ति का अभी आभास भी नहीं मिला था। सूर्यमल्ल के ओठ चिपक गए, और शरीर जड़ हो गया । स्वर्णसेन के अंग से पसीना बह चला।

आग के उजाले के कारण लिच्छवि-सैन्य ने दस्युदल को बहुत निकट आने पर देख पाया। थोड़ी ही देर में मार-काट मच गई; और दस्युओं के दबाव से सिकुड़ कर लिच्छवि जलती हुई आग की ढेरियों

में गिर-गिर कर झुलसने लगे। हाहाकार और चीत्कार से आकाश हिल गया।

स्वर्णसेन ने कहा—"भन्ते बलभद्र, इस महाविनाश को रोकिए। यह नर-संहार है, युद्ध नहीं है।"

"तो मित्र, तुम बिना शर्त आत्म-समर्पण करते हो?"

"हम निरुपाय हैं भन्ते, बलभद्र दया करो।"

"तो मित्र सूर्यमल्ल, तुम जाकर युवराज का यह आदेश अपनी सेना को सुना आओ, और सेनानायक को यहाँ मेरे निकट ले आओ।"

इसके बाद उन्होंने अपने एक दस्यु को कुछ संकेत किया। उसने एक संकेत शब्द उच्चारित किया। दस्यु-सैन्य जहाँ थी, वहीं युद्ध रोक कर स्तब्ध खड़ी रह गई। सूर्यमल्ल ने श्वेत पताका हवा में फहराते हुए अपने सेनापतियों को तुरन्त युद्ध से विरत कर दिया, तथा नायक को लेकर वह दस्युराज बलभद्र की सेवा में आ उपस्थित हुए। दस्युराज बिना एक भी शब्द कहे चुपचाप पूर्व अनुक्रम से टेकरी से उतर कर एक पर्वत-कन्दरा में घुस गए। कन्दरा अधिकाधिक पतली होती गई। तब सब कोई अश्व से उतर कर अपनेअपने अश्व की रास थाम पैदल चलने लगे। अन्ततः वे एक विस्तृत हरे-भरे मैदान में जा पहुँचे। पूर्व दिशा में उज्जवल आलोक फैल गया था। तब वैशाली के इन वैभवशाली जनों ने देखा कि उस मैदान में एक अत्यन्त सुव्यवस्थित स्कंधावार निवेश स्थापित है, जिसमें पच्चास सहस्र अश्वारोही भट्ट युद्ध करने को सन्नद्ध उपस्थित हैं।

एक विशाल पर्वत-गुहा में सुकोमल उपाधान और रत्न कम्बल बिछे थे। सब सुख-साधनों से गुफा सम्पन्न थी। अम्बपाली को एक आसन पर बैठाते हुए दस्यु ने कहा—"देवी अम्बपाली और मित्रगण, तुम्हारा इस दस्युपुरी में स्वागत है। आज तुम मेरे अतिथि हो। आनन्द से खाओ पिओ। रात के दुःस्वप्न को भूल जाओ।"

उसने संकेत किया। साम्ब चुपचाप आ खड़ा हुआ। उसे अम्बपाली की ओर संकेत करके कहा—"साम्ब, देवी बहुत खिन्न है, रात भर के जागरण से ये थक गई हैं, तथा श्रमित हैं। जा इनकी यथावत् व्यवस्था कर दे।"

उसने देवी से, उसके साथ दूसरी गुहा में जाने का, अनुरोध किया। देवी के चले जाने पर विविध मद्य, भुना माँस और शूल्य लाकर दासों ने अतिथियों के सम्मुख रख दिए। लिच्छवि राजपुरुष एक-दूसरे को आश्चर्य से देखकर खाने पीने और अदृष्ट में जो भोगना बदा है भोगने की चर्चा करने लगे। परन्तु मुख्य बात यह थी, जो सब कह रहे थे--"दस्यु अद्भुत है, अप्रतिम है, महान है।

१२५

विसर्जन

साम्ब ने देवी अम्बपाली को दूसरी गिरि-गुहा में ले जाकर जिस श्यामा वामा के उन्हें सुपुर्द किया, उसके अंग सौष्ठव और भाव-मृदुलता देख अम्बपाली भाव-विमोहित हो गई। राजमहालयों में दुर्लभ सुख-सज्जा इस दुर्गम वन में उपस्थित थी। उस गिरि-गुहा के वैभव और विलास को देखकर अम्बपाली आश्चर्य चकित रह गई। उन्होंने आग बढ़कर सम्मुख स्मितवदना श्यामा वामा की ओर देखकर कहा—

"तू कौन है हला?"

"मैं नाउन हूँ भट्टिनी"—वह हँस दी।

जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी खिल जाती है, उसी प्रकार उस श्यामा वामा के निर्दोष मृदुल हास्य से पुलकित होकर अम्बपाली ने उसे अंक में भर कर कहा—

"तू बड़भागिनी है हला, तू जिस पुरुष की सेवा में नियुक्त है, उसकी सेवा करने को न जाने कितने जन तरस रहे हैं।"

"सुन कर कृतकृत्या हुई, भट्टिनी, आपके दर्शनों से मेरे नेत्र स्नात-पूत हो गए। अब आज्ञा हो तो मैं आपका अंग-संस्कार करूँ। इस वन में जो साधन सुलभ है, उन्हीं पर, भट्टिनी, संतोष करना होगा।"

अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा—"अच्छा हला।"

नाउन ने देवी अम्बपाली का अंग-संस्कार किया, उन्हें सुवासित किया। नाउन के हस्त-लाघव, हस्त-कौशल, मृदुल-वार्तालाप और यत्न से देवी अम्बपाली का सारा श्रम दूर हो गया। फिर जब सुवासित मदिरा और विविध प्रयत्न और एक से एक बढ़कर खाद्य-पेय उनके

सम्मुख आए तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने कहा—"हला, तेरे स्वामी वे दस्यु-सम्राट् क्या दर्शन ही न देंगे।

"यह तो उनकी इच्छा पर निर्भर है भट्टिनी, किन्तु अभी आप आहार करके थोड़ा विश्राम कर लें।"

"नही नहि हला, उन्हें बुला।"

नाउन ने हँस कर कहा—"क्या कहूँ भट्टिनी, बुलाने से तो वे आएंगे नहीं। आप ही आ सकते हैं।"

"यह कैसी बात?"

"वे किसी की इच्छा के अधीन नही हे, इसी से।" नाउन ने दुष्टतापूर्ण हँसी हँसते हुए कहा।

"ऐसा ही मै भी कभी समझती थी। कभी अवसर मिलने पर उनसे कह देना, कह सकेगी?"

"कह सकूंगी।"

"अब भी ऐसा ही है देवी अम्बपाली"—सोमप्रभ ने हँसते-हंसते आकर कहा।

अम्बपाली ने सोमप्रभ को सुवेशित भद्र नागरिक वेश में नहीं देखा था। आज देख कर क्षण भर को उसकी प्रगल्भता लुप्त हो गई।

सोम ने कहा—

"आप मुझ पर कुपित तो नहीं हैं देवी!"

"कुपित होकर तुम्हारे जैसे समर्थ का कोई क्या कर सकता है भद्र?"

"समर्थ पर भी कुछ जन समर्थ होते हैं।"

"ऐसे कितने जन हैं प्रियदर्शन!"

"केवल एक को मैं जानता हूँ, आज्ञा पाऊँ तो कहूँ!"

"स्वेच्छा से कहना हो तो कहो!"

"तो सुनो, मैंने एक व्यक्ति देखा है जो निरातंक, सा ह्लाद, सोल्लास हो स्वर्ण रत्न-भाण्डारों के द्वार उन्मुक्त करके दस्युओं को लूट लेने के लिए अभिनन्दित करता है।"

"रहने दो प्रिय, आओ कुछ खाओ पिओ।"

दोनों बैठ गए। अवसर पाकर नाउन पान लेने खसक गई। अम्बपाली ने सोम का हाथ पकड़ कर कहा—

"तुम ऐसे समर्थ, ऐसे सक्षम, कामचारी, दिव्य शक्तियों से ओत-प्रोत ऐन्द्रजालिक कौन हो प्रिय दर्शन!"

"यही कहने को मैं तुम्हें यहाँ ले आया हूँ अम्बपाली!"

"तो कह दो प्रिय, मैंने तो तुम्हारे कण्ठ-स्वर से ही पहचान लिया था।"

"यह मैंने तुम्हारे इन नेत्रों में पढ़ लिया था।"

"तुम्हारी नेत्रों से पढ़ने की विद्या से मैं परिचित हूँ, पर अब कहो।"

"मैं मागध हूँ प्रिये, मेरा नाम सोमप्रभ है।"

अम्बपाली ने जैसे तप्त अंगार स्पर्श कर लिया।

सोम ने कहा—

"क्या मागधों को तुम सहन नहीं कर सकतीं?"

"नहीं प्रिय, नहीं।"

"इसका कारण?"

"अकथ्य है।"

"अब भी!"

मृत्यु के मूल्य पर भी प्रियदर्शन सोम, तुम यदि अम्बपाली को क्षमा कर सको तो कर देना"उनके बड़े-बड़े नेत्र आँसुओं ते गीले हो गए।

"प्रिये, अम्बपाली, क्या मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता हूँ?"

"नहीं प्रियदर्शन नहीं। अम्बपाली निस्सहाय, निरुपाय है।"

विषादपूर्ण मुस्कान सोमप्रभ के मुख पर फैल गई। उन्होंने एक लम्बी साँस ली। उसके साथ अनेक स्मृतियाँ वायु में विलीन हो गई।

"प्रियदर्शन सोम, क्या मैं तुम्हारा कुछ प्रिय कर सकती हूँ, प्राणों के मूल्य पर भी।"

प्रिये, तुम मुझे सदैव क्षमा करती रहना और सहन करती जाना"

"अरे, यह तो मेरा अनुरोध था प्रियदर्शन!"

"तब तो और भी अच्छा है। हम दोनों एक ही नाव पर जीवन-यात्रा कर रहे हैं।"

"जो कदाचित् विषाद, निराशाओं और आँसुओं से परिपूर्ण है।"

"तो क्या किया जा सकता है प्रिये, प्रियतमे, जीवन से पलायन भी तो नहीं किया जा सकता।"

"न, नहीं किया जा सकता, सोम प्रियदर्शन, एक याचना करूँ?"

सोम ने अम्बपाली के दोनो हाथ पकड़ कर कहा—

"यह अकिंचन सोम तुम्हारा ही है, प्रिये अम्बपाली।"

"तो प्रियदर्शन मुझे सहारा देना, जब जब मैं स्खलित होऊँ तब तब" उनके होठ काँपे, फिर उन्होंने टूटते अवरुद्ध स्वर में कहा—"यह मत भूलना सोमभद्र, कि मैं एक असहाय दुर्बल नारी हूँ, तुम पुरुष की भाति मेरी रक्षा करना, मैं तुम्हारी किंकरी, तुम्हारी शरण हूँ। अम्बपाली सोम के पैरों में लुढ़क गई। सोम ने उन्हे उठा कर अंक में भर लिया और अपने तप्त-तृषित, आग के अंगारों के समान जलते हुए ओठ उनके शीतल कम्पित ओठों पर रख दिए। अम्बपाली मूर्छित होकर सोम के अंक में बिखर गई।

१२६

एकान्त पान्थ

शरत्कालीन सुन्दर प्रभात था। राजगृह के अन्तरायण में अगणित मनुष्यों की भीड़ भरी थी। लोग अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित इधर उधर आ जा रहे थे। प्रत्येक मनुष्य के मुंह पर युद्ध की ही चर्चा थी। नगर अशांति और उत्तेजना का केन्द्र-स्थान बना हुआ था। लोग भय और आशंका से भरे हुए थे। शस्त्रधारी सैनिक झुण्ड के झुण्ड वीथियों और हट्टों में फिर रहे थे। तथा आवश्यकता की सामग्री खरीद रहे थ। सम्राट् और महामात्य वर्षकार के विग्रह की खूब बढ़ा चढ़ा का और नमक मिर्च लगा कर चर्चाएँ हो रही थी। गुप्तचरो, और संत्रियों का नगर में जाल बिछा था। मन्त्री, पुरोहित, अन्तर आमात्य, दौवारिक, अन्तर्वेशिक, अन्तपाल, आटविक व्यस्तभाव से नगर में आ जा रहे थे। हिरण्य और धान्यों से भरे हुए शकट सशस्त्र प्रहरियों के बीच राजभाण्डागार में जा रहे थे। अनेक संत्री और तीक्ष्ण पुरुष, तथा गूढ़ाजीवा अदिति, कौशिक स्त्रियाँ नगर में घूम रही थीं। कोई दैवज्ञ के वेश में, कोई भिक्षुकी के वेश में, कोई क्षपणक के वेश में परस्पर मिलने पर गूढ़ संकेत करते हुए घूम रहे थे। नगर की चर्चा का मुख्य विषय युद्ध-कौशल शस्त्र-प्रयोग और युद्ध-प्रियता थी। थोड़ा भी कोलाहल होने पर लोगों की भीड़ किसी भी स्थान पर जमा हो जाती थी।

पान्थागार के सम्मख एक परदेशी एकान्त पान्थ अश्वारोही आकर रुक गया। अश्व और आरोही दोनों ही अद्भुत थे। अश्व ऊँची रास का एक मूल्यवान् सैन्धव था, और अश्वारोही एक स्फूर्तियुक्त बलिष्ठ किन्तु ग्रामीण-सा युवक था। ऐसा प्रतीत होता था—उसने

कोई बड़ा नगर देखा नहीं है, तथा वह अकस्मात् राजगृह की इस तडक भड़क को देखकर विमूढ हो गया है। उसका अश्व माँसल, सुन्दर एवं चंचल था। अश्वारोही का लम्बा गम्भीर मुख, बड़े २ ज्योतिर्मय नेत्र, उन्नत मस्तिष्क और दीर्घ वक्ष तथा दृढ़ अंग उसके उत्कृष्ट योद्धा होने के साक्षी थे। और उसके ग्रामीण वेश तथा अद्भुत व्यवहार करने पर भी उसका सौष्ठव व्यक्त करते थे। एक विकराल खड्ग उसकी कमर में लटक रहा था। उसकी दृष्टि निर्भय थी। वह भीड में खड़ा लोगों की संदिग्ध दृष्टियों को उपेक्षा और अवज्ञा की दृष्टि से देख रहा था। उसके वस्त्र धूल से भरे थे और शरीर थकान से चूर चूर था। यह स्पष्ट था कि वह अनवरत लम्बी यात्रा करता हुआ आया है। अश्व भी पसीने से तर-बतर था।

वह पान्थागार के अध्यक्ष से बातें कर रहा था। अध्यक्ष ने उसे सिर से पैर तक घूर कर कहा—"मित्र, खेद है कि मैं तुम्हें स्थान नहीं दे सकता, सब घर घिर गए हैं। वैशाली से राजदूत आए हैं, उन्हीं के सब संगी साथी तथा स्वयं राजदूत ने भी यहीं डेरा किया है। एक भी घर खाली नहीं है।"

"तो मित्र तू मुझे अपना निज अतिथि मान। मुझे विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता है। यह दस कार्षापण है।"

सोने के दस चमचमाते टुकड़े हथेली पर रक्खे देख पान्थागार के अध्यक्ष के सब विचार बदल गए। उसने हँसकर कहा—"यह तो बात ही कुछ और है भन्ते। परन्तु दुःख है कि मेरे पास पान्थागार में स्थान नहीं है, फिर भी आप एक प्रतिष्ठित सज्जन हैं, मैं आपकी कुछ सहायता कर सकता हूँ।"

"किस प्रकार मित्र!"

"मेरा एक मित्र है, वह सम्राट का प्रतीहार है। यहीं निकट ही उसका घर है, घर बड़ा और सुसज्जित है। सौभाग्य से वह बड़ा लालची

है। ऐसे ही दश सुवर्ण पाकर तो वह अपने रहने का सजा धजा कक्ष ही आपको अर्पण कर सकता है। इतने बड़े घर में वह और उसकी पत्नी केवल दो ही व्यक्ति रहते हैं।"

"तो मित्र, यही कर, सुवर्ण की चिन्ता न कर।"

अध्यक्ष उस प्रतीहार को बुला लाया। वह एक ढीला ढाला मोटा वस्त्र पहने था। दुबला पतला शरीर, मिचमिची आँखें, गंजी खोपडी, पतली गर्दन। उसने आकर सम्मानपूर्वक युवक को अभिवादन किया।

युवक ने कहा—"यही वह व्यक्ति है?"

"यही है भन्ते!"

"तब यह स्वर्ण है।" उसने दस टुकडे उसकी हथेली पर रखकर कहा—"शेष तुम्हारा साथी समझा देगा।"

"मैंने समझ लिया, भन्ते खूब समझ लिया, आइए आप"—इतना कह कर अतिविनीत भाव से पान्थ को अपने साथ ले चला।

प्रतीहार का घर छोटा था, परन्तु उसमें सब सुविधायें जयराज के अनुकूल थीं। वहाँ वह निःशंक आराम से टिक गए। यहाँ उन्हें एक सहायता और मिल गई। प्रतीहार ने उन्हें एक कृषक-तरुण कहीं से ला दिया। यह बालक अठारह वर्ष का एक उत्साही और स्वस्थ्य नवयुवक था।जयराज ने उसे एक टाघन खरीद दिया और खूब खिला पिला कर परचा लिया। वह कृषक बालक छाया की भाँति जयराज के साथ रह कर उनकी सेवा तथा आज्ञापालन करने लगा।

*

१२७

प्रतीहारी का मूलधन

प्रतीहार का नाम मेघमाली था। जयराज अपने सुसज्जित कक्ष में पड़े अनेक राजनैतिक तानें-बानें बुन रहे थे। इसी समय प्रतीहार ने द्वार खटखटाया। अनुमति पाकर वह अन्दर आया और बारंबार प्रणाम करके विनीत भाव से बोला—"भन्ते, आपका शौर्य और उदारता दोनों ही अद्वितीय है, मैं आपका सेवक सदैव आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। परन्तु इस समय मैं अर्थी हूँ, आप मेरी सहायता कीजिए।"

जयराज ने विस्मय को दबा कर कहा—

"कह मित्र, मैं तेरी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

उसने कुछ क्षण रुक कर कहा—

"मेरी स्त्री अति रूपवती है, वह चरित्र की भी उज्जवल है। दो वर्ष पूर्व मैंने उससे विवाह किया था। इसके लिए मेरा सब यत्न से संचित स्वर्ण भी खर्च हो गया। सुसराल से मुझे कुछ भी धन नहीं मिला। क्या कहूँ, बड़ी विपत्ति में हूँ।"

जयराज हँसने लगे। हँसते ही हँसते उन्होंने कहा—"तो मित्र, सुसराल से धन अब कैसे मिल सकता है. तथा मैं इसमें क्या सहायता कर सकता हूँ।"

"विपत्ति कुछ और ही है भन्ते"वह रुका। फिर कुछ खांस कर बोला—"भन्ते, वह कल रात से ही नहीं आई है।"

"रात से नहीं आई है? तब गई कहाँ?"

"मेरा दुर्भाग्य है भन्ते, क्या कहूँ, वह वणिक सुखदास के पास गई थी।"

"सुखदास कौन है?"

"एक दुष्ट विदेशी है भन्ते, वह बहुत से सैन्धव अश्व और बहुत से चीन देश के कौशेय वस्त्रों के जोड़े बेचने राजगृह आया है। मैंने उसे उसके पास एक सहस्र उत्तम अश्व और पाँच सहस्र वस्त्रों के जोड़े खरीदने भेजा था, सम्राट युद्ध की तैयारी कर रहे है। मेरे पास कुछ निकम्मे अश्व थे। मैंने सोचा था, वे सब मिलाकर सम्राट् को बेच दूंगा। कुछ लाभ हो जायगा।"

"पत्नी को वणिक के पास क्यों भेजा था, स्वयं क्यों नहीं गए?"

"ये वणिक बड़े लुच्चे हैं भन्ते, सुन्दरी और नवयुवती स्त्रियों को देखते ही पानी हो जाते हैं, सौदा ठीक से हो जाता है। मेरी पत्नी सुन्दरी भी है, और चतुर भी है। उसके सुन्दर रूप और मधुर वचनों से प्रसन्न होकर ये वणिक सौदा में खींच-तान नही करते। जितना मूल्य वह हँस कर दे देती है। वे हँस कर ले लेते हैं।"

जयराज को इस व्यक्ति में आकर्षण प्रतीत हुआ। उसने मन की हँसी दबा कर कहा—"तो मित्र, तू अपनी पत्नी से दुहरा लाभ उठाता है।"

"पर भन्ते, जितना स्वर्ण उसके लोभी पिता ने मुझसे लिया था, अभी उतना भी तो नहीं मिला है।"

"अस्तु, तू पत्नी की बात कह!"

"वही कह रहा हूँ भन्ते, मैंने उसे सुखदास के पास एक सहस्र अश्व और पाँच सहस्र चीनांशुक क्रय करने को भेजा था।"

"यह तो मैंने सुना, इसके बाद?"

'इसके बाद, वह पाजी सुखदास ऐसा प्रतीत होता है मेरी

स्त्री पर मोहित हो गया। और उसे एकान्त में ले जाकर उसने कहा—मूल्य लेकर तो एक भी अश्व, एक भी चीनांशुक नहीं दूंगा, परन्तु हाँ यदि तू आज रात मेरी सेवा में रहे, तो पाँच सौ घोड़े और एक सहस्र चीनांशुक तेरी भेंट है।"

"और तेरी चरित्रवती स्त्री ने स्वीकार कर लिया?"

"नही भन्ते, उस साध्वी ने कहा—मैं पति से पूछ लूँ, वह आज्ञा देगा, तो मैं तेरी बात रख लूंगी।"

"सो तैंने आज्ञा दे दी?"

"पाँच सौ सैन्धव अश्व और एक सहस्र चीनांशुक भन्ते, कम नहीं होते। ऐसे मूर्ख भी बार बार नहीं मिलते। मैंने सीधे स्वभाव कह दिया—यदि एक ही रात्रि में पाँच सौ अश्व और सहस्र चीनांशुक मिलते हैं, तो दोष नही है, तू ऐसा ही कर।"

"और तेरी वह साध्वी स्त्री तेरा आदेश मान कर वहाँ चली गई?"

"यही बात हुई भन्ते, अब अश्व और चीनांशुक तो उसने भेज दिए; पर स्वयं नहीं आ रही है।"

"उसने कुछ संदेश भी भेजा है?"

"सन्देश भेजा है भन्ते, उसने कहलाया है कि इस सत्त्व रहित और लोभी पति से तो वह पति अच्छा है जो एक रात्रि के पाँच सौ अश्व और सहस्र चीनांशुक दे सकता है।"

"अब तेरा क्या कहना है?"

"मैं कहता हूँ कि यह मात्र विनोद वाक्य है। ऐसा वह बहुत बार कह चुकी है। उसका स्वभाव ही हँसोड़ है।"

"तेरा अनुमान यदि सत्य हो तो?"

"तो भन्ते राजकुमार, मेरी स्त्री मुझे दिलवा दीजिए। उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूंगा, भूखों मर जाऊँगा।"

"यह तो सत्य है, जब तू भूखों मर जायगा तो जीवित कैसे रह सकता है।"

"भन्ते, मैं प्रतिष्ठित पुरुष हूँ।"

"तो प्रतिष्ठित पुरुष, अभी तू जाकर शयन कर, सुख स्वप्न देख, भोर होने पर मैं सुखदास के अश्वों को और तेरी उस साध्वी पत्नी को भी देखूंगा।"

प्रतीहार कुछ संतुष्ट होकर मन ही मन बड़बड़ाता हुआ चला गया।

१२८

प्रतीहार पत्नी

दूसरे दिन जयराज भड़कीला परिधान धारण कर अश्व पर आरूढ़ हो, संग में कृषक-तरुण धवल्ल को ले सुखदास वणिक के निवास पर जा पहुँचा। सेवक सहित इस प्रकार एक भद्र पुरुष को देख सुखदास ने उसका सत्कार करके कहा—"भन्ते, मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

जयराज ने इधर उधर देखते हुए हँसकर कहा—"मित्र मै किसी अच्छी वस्तु का क्रय किया चाहता हूँ, सुना है तू बड़ा प्रामाणिक व्यापारी है।"

"भन्ते, मेरे पास बहुत उत्तम जाति के अश्व है, और बहुमूल्य चीनांशुक के जोड़े हैं। सम्राट् युद्ध-व्यवस्था में रत हैं, उन्हें अश्वों की आवश्यकता है, इसी से मैं और मेरे ग्यारह मित्र भी अश्व लाए हैं। हमारे पास सब मिलाकर एक लाख अश्व है। ये सब सम्राट् के लिए हैं भन्ते।"

"इतर जनों को भी तैंने माल बेचा है मित्र।"

"परन्तु मैं खुदरा बिक्री नहीं करता, थोक माल बेचता हूँ।"

"थोक ही सही तब कह, पाँच सौ सैन्धव अश्व और एक सहस्र जोड़े चीनांशुक का तू क्या मूल्य लेता है?"

"सुखदास वणिक सन्देह और भय से जयराज का मुंह ताकने लगा।"

जयराज ने कहा—"कह मित्र, अभी कल ही तूने एक सौदा किया है। तू बड़ा व्यापारी अवश्य है, परन्तु एक ही दिन में इस छोटे से सौदे को तो नहीं भूला होगा।"

"आप क्या राजपुरुष हैं भन्ते?"

"परन्तु मैं राज-काज से नहीं आया हूँ, अपने ही काम से आया हूँ।"

"तो भन्ते, आपको क्या चाहिए, कहिए—मेरा कर्तव्य है कि आपकी आज्ञा पालन करूँ।"

"यह अच्छा है, सस्ते में क्रय करना और लाभ लेकर अधिक मूल्य में बेचना व्यापार की सबसे बड़ी सफलता है।"

"लाभ ही के लिए व्यापार किया जाता है भन्ते!"

"यह बुद्धिमानी की बात है। इधर लिया उधर दिया, ठीक है न?"

"बिल्कुल ठीक है भन्ते, लाभ मिलना चाहिए।"

"यह बुद्धिमानी की बात है, तो अभीष्ट वस्तु मिलने पर मैं मुंह माँगा दाम देता हूँ, मेरे पास सुवर्ण की कमी नहीं है मित्र!"

"आप जैसे ही राजकुमारों के हम सेवक हैं भन्ते!"

"तो मूल्य कह मित्र!"

"काहे का?"

"उस स्त्री का, जिसको तैंने कल खरीदा है।"

सुखदास वणिक का मुंह सूख गया। उसने कहा—"कैसी स्त्री भन्ते?"

"प्रतीहारपत्नी रे, क्या मुझे चराता है"—जयराज ने व्याज-कोप से कहा।

सुखदास थर थर काँपने लगा। उसने कहा—"दुहाई राजपुत्र, मैं निर्दोष हूँ।"

"पर तू जानता है, सम्राट् तुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे, अभी तेरे बाँधने को राजपुरुष आएंगे, वे तुझे ले जाकर सूली पर चढ़ा देंगे।"

"परन्तु वह स्वेच्छा से आई है भन्ते, अपने पति की अनुमति से।"

"यह सत्य है, परन्तु वह अब उस लोभी वृद्ध और कृपण प्रतीहार के

पास नहीं जाना चाहती। भन्ते, उस सुशीला से वह पतित हठ करके कुकर्म कराता है। केवल उस दुष्ट के अधीन होने से वह वणिकों के पास जा क्रय विक्रय करती है। अपने चित्त से अपने योग्य काम समझ कर नहीं। उसके रूप और सौन्दर्य को उस पतित ने अपना मूलधन बनाया हुआ है।" "तो मित्र, मैं उस मूलधन को देखा चाहता हूँ।"

"मैं उससे पूँछ कर कह सकता हूँ, कि वह आपसे मिलकर बात करना चाहेगी या नहीं।"

"तो तू पूछ ले मित्र!"

वणिक् भीतर चला गया। थोड़ी ही देर में उसने आकर कहा—

"चलिए भन्ते, वह आपसे मिलने को सहमत है।"

जयराज ने भीतर जाकर एक सुसज्जित कक्ष में उसे खड़े देखा। उसकी अवस्था बीस बाईस वर्ष की थी। वह अति कमनीय रूपवती बाला थी, सौन्दर्य और लावण्य उसके सुडौल मुख और अंग-अंग से फूटा पड़ता था। लाल लाल पतले होंठ, और बड़ी-बड़ी नुकीली आँखें काम-निमन्त्रण-सा दे रही थीं। इस अप्रतिम सौन्दर्य प्रतिमा के मुख पर निष्कंलता और अभय की आभा देखकर जयराज पुलकित हो गए। प्रफुल्लित रक्तिम आभा से प्रदीप्त मुखमण्डल पर मुस्कान की सुधा देखकर उसने कहा—

"मैं आपका क्या प्रिय करूँ प्रिय?"

"उसके कोमल कण्ठ को सुनकर जयराज ने कहा—"सुन्दरी, मैं तेरे पति का मित्र हूँ और तुझे यहाँ से उसके पास ले चलने को आया हूँ। तेरे जैसी चरित्रवती रूपवती के लिए इस प्रकार पुंचली की भांति पर-पुरुष का सेवन करना अच्छा नहीं है।"

"आप ठीक कहते हैं भन्ते राजकुमार, पर यह दूषित कार्य मैंने अपनी इच्छा से अपने विलास के लिए नहीं किया है। आप ही कहिए जिस लोभी ने आपत्ति के बिना मुझे अन्य पुरुष के हाथ बेच डाला, उस सत्वहीन निर्लज्ज के पास अब मैं कैसे जाऊँ?" मेरी भी एक

मर्यादा है भन्ते, यदि मै वहाँ जाती हूँ, तो वह बार-बार मुझे ऐसे ही प्रयोगों में डालेगा। यहाँ मै एक सुसम्पन्न, सुप्रतिष्ठत और उदार पुरुष की सेवा में हूँ, जिसने एक ही रात मे पाँच सौ अश्व और सहस्त्र जोड़े चीनांशुक दे डाले है।"

जयराज ने उसकी स्थिति और यथार्थता का समर्थन किया। फिर उसने उठते हुए सुखदास वणिक् से कहा—"मित्र, तू यथेष्ट लाभ में रहा। स्मरण रख, सत्त्वहीन पुरुषों के पास धन और स्त्री नहीं ठहर सकती।"

इतना कह, उस रूप-तेज और कोमलता तथा प्रगल्भता की मोहनी मूर्ति को मन में धारण कर जयराज अपने आवास को लौट आए।

१२९

गणदूत

गणदूत गान्धार काप्यक का बिम्बसार श्रेणिक ने बड़ी तड़क-भड़क से स्वागत किया। मागध सीमा में पहुँचते ही राज्य की ओर से प्रत्येक सन्निवेश पर उसके स्वागत एवं सुख-सुविधा के सब साधन जुटे हुए मिलने लगे। राजगृह आने पर पान्थागार में उसे राजार्ह भव्य निवास और सत्कार मिला। मागध संधिवैग्राहिक अभयकुमार विशेष रीति पर गणदूत की व्यवस्था पर नियत हुआ।

जयराज ने मार्ग में काप्यक से मिलने की बिल्कुल चेष्टा नहीं की। परन्तु राजगृह में उसे पान्थागार के अध्यक्ष के माध्यम से राजदूत से परिचय प्राप्त करने तथा उससे मैत्री लाभ करने के अभिनय करने का अच्छा सुअवसर मिल गया। प्रतीहार से घनिष्ठता होने पर कभी सांकेतिक भाषा में और कभी स्पष्ट मिलकर परस्पर विचार-विनिमय करने का सुअवसर उसे मिलने लगा। गणदूत और उसका पूर्वापर सम्बन्ध मागध संधिवैग्राहिक अभयकुमार भी नहीं भांप सका। जयराज कभी अश्व पर सवार होकर और कभी पाँव प्यादा नगर, वीथी, हाट में जा जाकर राजगृह की सैन्य, दुर्ग, अस्त्रागार और शस्त्रास्त्र-निर्माण आदि युद्धोद्योगों को देखने तथा विविध मानचित्र, संकेतचित्र और विवरण पत्रिकाएँ गूढ़ लिपि में तैयार करने लगा।

प्रतीहारपत्नी का वह क्षणिक परिचय उसकी आसक्ति में परिणत हो गया। उसकी आसक्ति में बहुत काम आई। वह अन्तःपुर का राई-रत्ती हालचाल ला लाकर जयराज को देने लगी। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सूचनाएँ उससे उन्होंने प्राप्त कर लीं। सम्राट् के दरबार में

उपस्थित होकर उपानय उपस्थित् करने और सम्राट् से मिलने का दिन नियत हो गया। काप्यक ने जयराज से मिलकर यह निर्णय कर लिया कि सम्राट् से गणदूत के रूप मे काप्यक नही जयराज ही मिलेगा। यह एक जोखिम योजना थी, परन्तु अनिवार्य थी। यह भी तय हुआ कि सम्राट् की भेंट के तत्काल बाद ही जयराज को राजगृह से प्रस्थान भी कर देना चाहिए। उसने सब व्यवस्था ठीक-ठाक कर ली, और अपने कौशल तथा इन तानों सहायको की सहायता से वह अनायास ही गणदूत के रूप म सम्राट् के सम्मुख जा उपस्थित हुआ।

कृपक बालक उसके लिए बड़ा सहायक प्रमाणित हुआ। वह दिन भर अपने टाधन पर चढ़कर राजगृह के बाहर भीतर यथेष्ट चक्कर लगाया करता, विविध जनो स मिलता, गप्पे करता और बहुत-सी जानने योग्य बाते जयराज को आ बताता था। जयराज उससे हँसते हंसते काम की बातें पूछ लेता, युक्ति और चतुराई स अभीष्ट कार्य, बिना ही मूलकारण प्रकट किए, करा लेता। तरुण कृषक बालक विविध पक्वान्न और उत्तम भोजन पाकर तथा टाधन पर स्वच्छन्द घूमते रहकर अतिप्रसन्न हो तन मन से जयराज की सब इच्छाओं और आदेशों की पूर्ति करने लगा।

१३०

जयराज का दौत्य

वज्जीगण प्रतिनिधि का भव्य स्वागत करने में मागध सम्राट् ने कुछ भी उठा नहीं रखा। प्रशस्त सभामण्डप यत्न से सुसज्जित किया गया। सम्राट् गंगाजमुनी काम के सिंहासन पर विराजमान हुए। मस्तक पर रत्नजटित जाज्वल्यमान स्वर्ण-मुकट धारण किया। पार्श्व मे देश-देश के विविध करद राजा सामन्त और राजपरिजनों की बैठकें बनाई गई। सम्राट् के ऊपर श्वेत रजतछत्र लग रहा था, जिस पर बहुत बड़े-बड़े मोतियों की झालर टँगी थी। सिंहासन के सम्मुख राजआमात्य, पुरोहित और धर्माध्यक्ष का आसन था। पीछे महासेनापति आर्य भद्रिक और उदायि अपने सम्पूर्ण सेनाधिपतियों सहित यथास्थान अवस्थित थे। एक ओर गायक और नर्तकियाँ मंगलामुखी वारवनिताएं संगीतसुधा बखेरने को सन्नद्ध खड़ी थी। राजा के पीछे चादी की डांड का छत्र लिए एक खवास खड़ा था। दायें बायें दो यवनी दासियाँ चँवर ढाल रही थी। दक्षिण पार्श्व में मुर्छल वाला था। उसके पीछे अन्यान्य दण्डधर, कंचुकी, द्वारपाल आदि यथास्थान नियम से खडे थे। सम्राट् का तेजपूर्ण मुख उस समय मध्याह्न के सूर्य की भांति देदीप्यमान हो रहा था। बारह लाख मगध-निवासियों के निगम जेट्ठक और अस्सी सहस्र गांवों के मुखिया भी इस दरबार में आमंत्रित किए गए थे।

लिच्छवि राजप्रतिनिधि ने अपने अनुरूप भव्य वेश धारण किया था। उनका बहुमूल्य स्वर्ण-तारजटित कौर्जव कौशेय और उत्तम काशिक कौशेय का उत्तरीय अपूर्व था। उनके साथ बहुमूल्य उपानय था, जिनमें बीस सैंधव अश्व, पांच भीमकाय हाथी, बहुत से रत्नखचित शस्त्रास्त्र तथा स्वर्ण-तार-ग्रथित कासी वस्त्र थे।

जयराज ने सभास्थल में प्रविष्ट होकर देखा—सम्राट् पूर्व दिशा में उदित सूर्य की भांति अचल भाव से अपने मन्त्रियों और सभ्यों के बीच स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हैं। सभास्थल में बिछे हुए रत्न-कम्बलों की आभा बहुरंग मेघों के समान भासित हो रही थी। कौशेय और ऊनी रोयें, जो सुनहरी तार पट्टी में गुंथे थे, ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे सूर्य-रश्मियां शत-सहस्र आभा धारण करके भूमि पर अवतरित हुई हैं।

जयराज ने सम्राट् के सम्मुख जा राज-निष्ठा के नियमानुसार उनका अभिवादन कर वज्जीगणपति का राजपत्र उपस्थित किया, तथा गणपति की ओर से उपानय उपस्थित कर, उसे स्वीकार कर कृतार्थ करने का शिष्टाचार प्रदर्शित किया।

सम्राट् ने राजपत्र राजसम्मान सहित ग्रहण कर उपानय के लिए आभार और संतुष्टि प्रगट कर कहा—"कह आयुष्मान्, मैं तेरा और अष्टकुल के प्रतिष्ठित वज्जीसंघ का क्या प्रिय कर सकता हूं?"

जयराज ने धीमे किन्तु स्थिर स्वर में कहा—"क्या देव मुझे स्पष्ट भाषण करने की अनुमति देते हैं?"

"क्यों नहीं, आयुष्मन् तू कथनीय कह।"

"तो देव, वज्जीगण का अनुरोध है कि सम्राट् आर्य महामात्य को राजगृह में फिर से सुप्रतिष्ठित करें।"

"यह तो मगध-राज्य का अपना प्रश्न है भद्र, वज्जीगण राज्य को अनुरोध करने का इसमें क्या अधिकार है। अपितु राजदण्ड-प्राप्त बहिष्कृत महामात्य को राज-नियम के विपरीत वज्जीगण-संघ ने प्रश्रय देकर मागध राज्य-संधि-भंग की है, जिसका दायित्व वज्जीगण-संघ पर है।"

"इसके विपरीत देव, वज्जीगण-संघ की यह धारणा है, कि सम्राट् की अभिसंधि से महामात्य कूट नीति का अनुसरण कर तूष्णी युद्ध कर रहे हैं।"

"तो इस धारणा के वज्जीगण-संघ के पास पुष्ट प्रमाण होंगे ?"

"देव, वज्जीगण संघ सम्राट् की मैत्री का मूल्य समझता है। वह बिना प्रमाण कुछ नहीं करता, सम्राट को मैं विश्वास दिलाता हूँ।"

"आयुष्मान क्या कहना चाहता है, कह।"

"महाराज वैशाली के अष्टकुल सम्राट् से मैत्री सम्बन्ध स्थिर किया चाहते है।"

"मैं भी क्या उनसे अवगत हो सकता हूँ भद्र!"

"महाराज, वज्जीगण सम्राट् की किसी भी इच्छा की अवहेलना नहीं करेंगे।"

"तब तो मुझे केवल यही विचार करना है, कि मुझे उनसे क्या चाहना चाहिए।"

"सम्राट् यदि स्पष्ट कहें।"

"यह तो व्यर्थ होगा आयुष्मन्!"

"तो क्या मैं ही सम्राट् को वज्जीगण-संघ का सन्देश निवेदन करूँ?"

"यह अधिक उपयुक्त होगा।"

"मैं स्पष्ट कहने के लिए सम्राट् से क्षमा-याचना करता हूँ।"

"कह भद्र, कथनीय कह"

"देव, यह जानते है, कि वह बात अब सार्वजनिक हो चुकी है।"

"आयुष्मन्, तेरा अभिप्राय क्या है?"

"वह स्पष्ट है, देव यदि अष्टकुल की किसी कुलीन कुमारी से विवाह किया चाहते है तो यह सुकर है।"

"प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण है, और इससे मेरी प्रतिष्ठा होगी।"

"साथ ही अष्टकुल के वज्जीगणतन्त्र और मगध-साम्राज्य की समृद्धि भी बढ़ेगी। किन्तु इसके लिए एक वचन देना होगा।"

"कैसा वचन ?"

"केवल लिच्छवि-कुमारी हो का पुत्र भावी मागध-सम्राट् होगा।"

"केवल यही? और कुछ तो नहीं?"

"नहीं देव!"

"आयुष्मान् को कुछ और भी कथनीय है।"

"यत्किंचित्, महाराज देवी अम्बपाली वज्जीगण का विषय हैं, उन पर सम्पूर्ण गणजनपद का समान अधिकार है। अष्टकुल उन पर किसी एक का एकाधिकार सहन नहीं करेगा।"

"यह मैं समझ गया, और कह भद्र।"

"और तो कुछ कथनीय नहीं है देव।"

"कुछ भी नहीं!"

"नहीं।"

"अच्छा तो मैं अष्टकुल का प्रस्ताव अस्वीकार करता हूं।"

"क्या आप अष्टकुल की किसी भी कुमारी से विवाह करना अस्वीकार कर रहे हैं?"

"यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी भद्र, किन्तु मैं इसे अपनी स्वेच्छा और भावना की बलि देकर नहीं स्वीकार कर सकता। रही देवी अम्बपाली की बात। वज्जी-गण के उस धिक्कृत कानून की बात मैं जानत हूँ, परन्तु आयुष्मन्, कोई भी मागध स्त्रीजाति के अधिकारों को हरण करने वाले इस कानून के विरोध में खड्ग हस्त होना आनन्द से स्वीकार करेगा। अच्छा आयुष्मन्, अब विदा। अपने प्रस्ताव के लिए अष्टकुल के वज्जीगण प्रमुखों से मेरी कृतज्ञता अवश्य प्रकट कर देना।"

"सम्राट्, मुझे यह भय है कि इस निर्णय का कोई भयानक परिणाम न हो, दो पड़ोसी राज्य-व्यवस्थाओं के बीच की सद्भावना न नष्ट हो जाय।"

"आयुष्मन्, महाराज्यों की एक मर्यादा होती है, और सम्राट् की भी। मागध सम्राट् की एक पृथक् मर्यादा है आयुष्मन्, जिसका तू स्वप्न देख रहा है, मेरी अभिलाषा उससे बड़ी है।"

"इससे सम्राट् का यह अभिप्राय तो नहीं है कि सम्राट् अष्टकुलों के स्थापित गणतन्त्र से युद्ध छेड़ चुके।"

"अष्टकुलों के गणपति ने क्या इसी से भयभीत होकर तुझे उत्कोच देकर मेरे पास भेजा है ?"

"महाराज, लिच्छवि गणसंघ छत्तीस राज्यों के संघ का केन्द्र है। हम गणशासित भली भांति खड्ग पकड़ना जानते है।"

"सुनकर आश्वस्त हुआ भद्र, मैं यह बात स्मरण रक्खूंगा।"

इतना कह कर सम्राट आसन छोड़ कर उठ खड़े हुए। जयराज क्रोध से तमतमाते हुये मुख से पीछे लौटे। चिन्ता की रेखाएं उनके सदा के उन्नत ललाट पर अपना प्रभाव डाल रही थी।

*

१३१

गुह्य निवेदन

एकान्त पाते ही मागध सन्धिवैग्राहिक अभयकुमार ने सम्राट् से निवेदन किया—

"देव, वंचना हुई है।"

"कैसी, भणे!"

"यह गणदूत नही, पारग्रामिक है, अथवा वह गणदूत नहीं, छद्म वेशी है।"

"कैसे भद्र!"

"देव, जो गणदूत बनकर पान्थागार में राज-अतिथि बना हुआ था, उसे मैं भली भांति पहचानता हूँ, उसने सभा में सम्राट् से भेंट नहीं की है।"

"तब किसने की?"

"एक अन्य पुरुष ने, जो पान्थागार से पृथक् एक प्रतीहार के घर टिका हुआ था।"

"क्या इसकी कोई सूचना महामात्य ने नहीं भेजी थी?"

"मुझे आर्य महामात्य की यही सूचना मिली थी कि प्रभंजन अगत्य की सूचना ला रहा है, परन्तु प्रभंजन का कोई पता ही नहीं लगता. न जाने वह कहाँ लोप हो गया है। यह तो परिज्ञात है, कि उसने इस पारग्रामिक का अनुसरण किया था।"

"यह अतिभयानक बात है। भणे, इस पारग्रामिक और उस छद्म-वेशी गणदूत दोनों को बन्दी कर लो।"

"किन्तु देव, दोनों ही ने राजगृह से चुपचाप प्रस्थान कर दिया है।"

सम्राट् ने अत्यन्त कुपित होकर कहा—

"तो भणे, मैं अभी नगरपाल और सीमान्त-रक्षक को देखा चाहता हूं। और तुझे आदेश देता हूं, कि इस छद्म-वेशी का अनुसरण कर, और इसे जीवित या मृत जिस प्रकार सम्भव हो मेरे सम्मुख उपस्थित कर। तू भणे, अभी प्रयाण कर।"

"अभयकुमार सम्राट् को अभिवादन कर तुरन्त चल दिया। सम्राट् चिन्तित-भाव से अपने कक्ष में टहलने लगे। कुछ ही काल में नगरपाल और सीमान्त-रक्षक ने आकर सम्राट् को अभिवादन किया। सम्राट् ने क्रुद्ध होकर पूछा—

"भणे, वैशाली के गणदूत का कैसा समाचार है?"

"देव, उसने दो दण्ड रात्रि रहते राजगृह से प्रस्थान कर दिया, अब उसका कोई पता ही नहीं लग रहा है।

"उसे जाने की अनुमति किसने दी?"

"देव, इसका निषेध नही था। इसी से.....''

"और वह पारग्रामिक?"

"देव, उसके सम्बन्ध में तो हमे कुछ सूचना ही नही है।''

"क्या मागध-व्यवस्था अब ऐसे ही राजपुरुष करेंगे। दोनों हो मृत जीवित, जिस अवस्था में हों, बन्दी करके मेरे सम्मुख लाए जायं।" प्रत्येक मूल्य पर।" सम्राट् ने सीमान्त-रक्षक को आदेश दिया।

दोनों राजपुरुष घबराकर राजाज्ञा पालन करने को भागे।

१३२

पलायन

जयराज और काप्यक गान्धार के पलायन की योजना पहिले ही स्थिर कर ली थी। गण-दूत के वेश में जिस दिन जयराज ने सम्राट् से प्रकट भेंट की, उससे प्रथम ही रात्रि के समय चुपचाप गुप्त भाव से एकाकी गान्धार काप्यक महत्त्वपूर्ण चित्र, मान-चित्र, लेख और सूचनाएं लेकर राजगृह से प्रस्थान कर गए थे। मार्ग में सुरक्षा और व्यवस्था उन्होंने यथावत् कर ली थी। शेष सैनिक और राजपरिच्छद की व्यवस्था यह की गई थी कि वह प्रकट में प्रस्थान का प्रदर्शन तो करे; परन्तु राजगृह के बाहर जाते ही वे विघटित हो जायँ, तथा छद्मवेश में राजगृह लौट आएं और राजगृह में गुप्त रूप में रहें। इस योजना के कारण वैशाली के गण-दूत और उसकी छोटी-सी सैन्य तथा सेवक-मण्डली कहाँ लोप हो गई, इसका किसी को कुछ पता ही नहीं लगा। गान्धार काप्यक को भी कोई नहीं पा सका।

जयराज सम्राट् से मिलने के तत्क्षण बाद अपने डेरे पर गए ही नहीं। वे तुरन्त ही सब की आँख बचा राजगृह से चल दिए। पूर्व-योजना के अनुसार उनका वह कृषक-बालक मित्र उनसे पहिले ही जा चुका था, और राजगृह से आठ योजन दूर एक चैत्य में उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। इस प्रकार जयराज और उनके संगी-साथी जिन्हें जाना था वे पूर्व-नियोजित योजना से सकुशल राजगृह से निकल गए। जिन्हे रहना था वे प्रच्छिभ्रव में रहे।

अभयकुमार मोटी बुद्धि का तथा कुछ दीर्घसूत्री आदमी था वह सैनिक प्रथम था, राजनीतिज्ञ उसके बाद। वह राजकुमार था। अतः अनशासित भी न था। उससे इस अगत्य के कार्य में अनेक

त्रुटियाँ रह गई। फिर भी उसने वैशाली के इन सफल भगोडों को जीवित या मृत पकड़ लाने के संकल्प से चुने हुये सैनिक लेकर प्रस्थान किया। सीमान्त-रक्षक ने भी चारों ओर सेना फैला दी।

जयराज को तुरन्त ही इस व्यवस्था का पता लग गया। वह यथा-सम्भव युद्ध से बचना चाह रहे थे, और शीघ्र से शीघ्र सुरक्षित मालव राज्य की सीमा से निकल जाना चाहते थे। फिर भी उनका एक दो बार पीछा करने वालों से मुटभेड़ हो ही गई, पर जयराज ने युद्ध नहीं किया। पलायन ही करना श्रेयस्कर समझा। किन्तु अभयकुमार ने उनके मार्ग को घेर ही लिया और जयराज प्रतिक्षण किसी गम्भीर परिणाम की आशंका करने लगे।

———

१३३

घातक द्वन्द-युद्ध

जयराज ने समझ लिया कि अब उनके और अभयकुमार के बीच एक घातक द्वन्द-युद्ध होना अनिवार्य है। परन्तु उन्हें अपनी साहसिक यात्रा झटपट समाप्त कर डालनी थी। उन्होंने मुस्कुरा कर अपने संगी कृषक तरुण से कहा—"मित्र, टट्टू की चाल का जौहर दिखाने का यही सुअवसर है, हमें शीघ्र यहाँ से भाग चलना चाहिए।"

"यही अच्छा है"—युवक ने बहुत सोचने विचारने की अपेक्षा अपने साथी के मत पर निर्भर हो कर कहा।

दोनों ने अपने अपने अश्वों को एड दी। जयराज ने निश्चय कर लिया था, कि जब तक वह सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुंच जाएंगे, राह में विश्राम नहीं करेंगे। उनके कंचुक के भीतर बहुमूल्य हल्का लौह वर्म था। तथा उष्णीय के नीचे भी झिल-मिल टोप छिपा था। बहुमूल्य लेखों और मान-चित्रों को जो उनके पास था उन्होंने यत्न से अपने वक्षःस्थल पर लौह वर्म के नीचे छिपा लिया था और उन सब की एक एक प्रति सांकेतिक भाषा में तैयार करके अपने साथी के कंचुक में सी दी थी।

दोनों के अश्व तीव्र गति से बढ़ चले। युवक अपने अश्व-संचालन की सब कला साथी को दिखाना चाहता था, तथा अपने पार्वत्य टट्टू की जो वह बढ़ चढ़ कर डींग हांक चुका था उसमें प्रमाणित किया चाहता था, उसी से वह साथी के साथ बराबर उड़ा जा रहा था। उसकी इच्छा साथी से वार्तालाप करने की थी। परन्तु जयराज गम्भीर प्रश्नों पर विचार करते जा रहे थे। द्रुत गति से दौड़ते हुए अश्व पर भी मनुष्य गम्भीर विषयों पर विचार कर सकता है, टेढ़ी मेढ़ी राजनीति की वक्र

चालें सोच सकता है। सो यहाँ सन्धिवैग्राहिक जयराज भागते-भागते यही सब सोचते तथा गहरी से गहरी योजना बनाते जा रहे थे। वह प्रत्येक बात की तह तक पहुंचने के लिए अब तक की पूर्वापर सम्बन्धित सभी बातों की तुलना, विवेचना और आरोप की दृष्टि से देखने के लिए अपने मस्तिष्क में विचार स्थिर कर उन्होंने मन ही मन यह स्वीकार कर लिया कि सम्राट् अद्भुत और तेजवान् पुरुष है। उन्हें सरलता से मूर्ख नहीं बनाया जा सकता है। फिर भी सम्राट् की अम्बपाली के प्रति आसक्ति एवं अपने ही जीवन में उनके शून्यपने को भी वह समझ गए थे। उन्होंने यह समझ लिया था--युद्ध तो अनिवार्य है ही, वह भी अनति-विलम्ब। परन्तु मूल मुद्दा यह है, कि देवी अम्बपाली ही का आवास एक छिद्र होगा, जहाँ से मगध-साम्राज्य को विजय किया जा सकता है। आर्य वर्षकार की दुर्धर्ष कुटिल राजनीति के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करके आर्य भद्रिक के प्रबल पराक्रम को नत किया जा सकता है। उसी कूट नीति छिद्र पर जयराज ने अपनी दृष्टि केन्द्रित की। उन्होंने मन ही मन कहा--'सम्राट् एक ऐसी उलझी हुई गुत्थी है जो जीवन में नहीं सुलझेगी। इसी से सम्राट् का पराभव होगा, तथा ब्राह्मण वर्षकार की बुद्धि और भद्रिक का शौर्य कुछ भी काम न आयगा।'

उसने बड़े ध्यान से देखा था कि सम्पूर्ण मागध जनपद सम्पन्न और निश्चिन्त है। उसे यहाँ वह युद्ध की विभीषिका नहीं दिखाई दी थी, जो वैशाली में थी। वह अत्यन्त आश्चर्य से यह देख चुके थे कि वहाँ जनपद में बेचैनी के कोई चिह्न न थे। कृषक अपने हल बैल लिए खेत की ओर आराम से जा रहे थे। रंगीन वस्त्रों से सुसज्जित ग्रामीण मागध बालाएँ छोटे-छोटे सुडौल घड़े सिर पर रक्खे आती-जाती बड़ी भली लग रही थी। वे गाने गाती जाती थी, जिनमें यौवन-जीवन-आनन्द, आशा और मिलन-सुख के मोहक चित्र चित्रित किए हुए थे। जयराज को ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे चिड़िया चहचहाती हुई उड़ रही

हैं। सम्पूर्ण मागध जनपद शत सहस्र मुख से कह रहा था—"देखो हम सुखी है, हम संतुष्ट है।"

जयराज सोचते जाते थे। हमारे वज्जीगण-तन्त्र से तो यह साम्राज्य-चक्र ही अधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है। यदि साम्राज्य-तन्त्र में आक्रमण भावना न होती तो निस्संदेह राजनीति के विकसित स्थिर रूप को तो साम्राज्य ही में देखा जा सकता है। वह चारों ओर आँख उघाड़कर देखते जा रहे थे, पीले और पके हुए धान्य से भरपूर खेत खड़े थे। आम्र के सघन बागों में कोयलें कूक रही थी। स्वस्थ बालक ग्राम के बाहर क्रीड़ा कर रहे थे। बड़े २ हरिणों के यूथ खेतों की पटरियों पर स्वच्छन्द घूम रहे थे। ऋतु बहुत सुहावनी बनी थी। कोई-कोई ग्रामीण सस्ते टट्टुओं पर इधर उधर आते जाते दीख पड़ रहे थे। ये टट्टू बड़े मजबूत थे। उनके मुंह से निकल पड़ा—"वाह, यह तो बड़े मौज में है।"

साथी युवक ने जयराज के होंठ हिलते देखे। वह अपना टट्टू बढ़ाकर आगे आया और कहा—'अपाने कुछ कहा भन्ते!"

"हाँ मित्र, मैं सोचता हूँ कि तेरी और मेरी दोनों की सुसराल कहीं यहाँ किसी गाँव में होतीं; और ये रंगीन घाघरे पहने हुए जो वधूटियाँ छोटे-छोटे जंल के घड़े सिरों पर रक्खे इठलाती, बल खाती, लोगों के मन को ललचाती आ जा रही हैं, इनमें से कोई भी एक दो हमारी तेरी वधूटियाँ होतीं, तथा हम और तू साथ-साथ इसी तरह इन गाँवों में से किसी एक में श्वसुरगृह में आकर आदर सत्कार पाते, तो कैसी बहार होती।"

साथी का यह रंगीन विनोद सुनकर युवक खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने थोड़े लजाते हुए कहा—"भन्ते, इधर ही उस ओर के एक ग्राम में मेरी सुसराल है। और मैं यहाँ एक दो बार जा चुका हूँ। चलिए भन्ते, वहाँ चलें।"

"अच्छा, क्या वधूटी वहीं है?"

"वहीं है भन्ते!"

"ओहो, यह बात है मित्र, तो देखा जायगा, वह ग्राम यहाँ से कितनी दूर है?"

"यदिहम इसी प्रकार चलते रहे, राह में कहीं न रुके तो सूर्यास्त तक वहाँ पहुंच जाएंगे।"

"और यदि हम घोड़ों को सरपट छोड़ दें?"

"वाह, तब तो दण्ड दिन रहे पहुंच सकते हैं।"

"परन्तु तुम्हारे श्वसुर और श्यालक कहीं मुझे गवाट् में तो नहीं बन्द कर देंगे?"

"नहीं भन्ते, जब मैं उनसे कहूंगा, कि आप राजकुमार हैं और सम्राट् से बात करके आ रहे हैं, तो वे आपको सिर पर उठा लेंगे। मेरा श्यालक मेरा प्रिय मित्र भी है।"

"तब तो बढिया भोजन की भी आशा करनी चाहिए!"

"ओह, वे लोग सम्पन्न हैं, इसकी क्या चिन्ता।"

"तो मित्र, यही तय रहा, आज रात वहीं व्यतीत करेंगे?"

उत्सुकता और आनन्द के कारण तरुण कृषक-कुमार का मुंह लाल हो गया। वह उत्साह से अपने ट पर जमकर बैठ गया।

जयराज साथी से बातें करते जाते थे, पर खतरे से असावधान न थे। वृक्षों के सघन कुंज देखकर उसके मन में सिहरन उत्पन्न होती, एक गहरे नाले और ऊँचे टीले को देख वह ठिठक गए। वे दिन भर चलते ही रहे। संध्या होने में अब विलम्ब न था। इसी समय पीछे से उन्होंने कुछ अश्वारोहियों के आने की आहट सुनी। वह एक सुनसान जंगल था। दाहिनी ओर एक टीला था—उसने पीछे मुड़कर देखा

उसी टीले के ऊपर तेरह अश्वारोही एक पंक्ति में खड़े हैं। वे उससे कोई दस धनुष के अन्तर पर थे। इन दोनों को देखते ही तेरहों ने तीर की भांति अश्व फेंके। जयराज ने साथी से कहा—'सावधान हो जा मित्र, शत्रु आ पहुंचे।' इसी समय बाणों की एक बौछार उनके इधर उधर होकर पड़ी। जयराज ने कहा—मित्र, साहस करना होगा, भागना व्यर्थ है, सामने समतल मैदान है, और कोई आड़ भी नहीं है। हमारे अश्व थके हुए हैं, तू दाहिनी ओर को वक्रगति से टट्टू चला, जिससे शत्रु बाण लक्ष्य न कर सकें और अवसर पाते ही ससुराल के गाँव में भाग जाना। मेरे लिए रुकना नहीं।"

"किन्तु भन्ते आप?"

"मेरी चिन्ता नहीं मित्र, तेरा श्वसुर ग्राम निकट है, वहां से समय पर सहायता ला सके तो अच्छा है।"

"वृक्षों के उस झुरमुट के उस ओर ही वह ग्राम है, जीवित पहुंच सका, तो दो दण्ड में सहायता ला सकता हूं। मेरे दोनों श्यालक उत्तम योद्धा हैं।"

इसी बीच बाणों की एक और बौछार आई। जयराज ने साथी को दाहिनी ओर वक्रगति से बढ़ने का आदेश दे स्वयं बाईं ओर को तिरछा अश्व चलाया। शत्रु और निकट आ गए। वे उन्हें घेरने के लिए फैल गए और निरन्तर बाण बरसाने लगे। जयराज एक बार साथी को खेतों में जाते देखा और स्वयं चक्राकार अश्व घुमाने लगे। शत्रु अब एक धनुष के अन्तर से बाण बरसाने लगे। जयराज ने अश्व की बाग छोड़ दी और फिसल कर अश्व से नीचे आकर उसके पेट से चिपक गए। और अपना सिर घोड़े के बक्ष में छिपा लिया, तथा एक हाथ में खड्ग और दूसरे में कटार दृढ़ता से पकड़ ली।

शत्रुओं ने साथी की परवाह न कर उन्हें घेर लिया। एक ने चिल्ला कर कहा—"वह आहत हुआ है, उसे बाँध लो, जीवित बाँध लो। परन्तु पहिले देखो, मर तो नहीं गया।"

तीन अश्वारोही हाथ में खड्ग लिए उसके निकट आ गए। जयराज ने अब अपनी निश्चित मृत्यु समझ ली। परन्तु आत्म-रक्षा के लिए तनिक भी नही हिले। वे उनके अत्यन्त निकट आ गए। जयराज ने एक के पार्श्व मे कटार घुमेड़ दी, दूसरे के कण्ठ में उनका खड्ग विद्युत्गति से घुस गया। दोनों गिर कर चिल्लाने लगे। तीसरा दूर हट गया। इसी समय अवसर पा जयराज ने फिर अश्व फैका। शत्रु क्षण भर के लिए स्तम्भित हो गए। पर दूसरे ही क्षण वे 'लेना-लेना' करके उनके पीछे भागे।

अन्धकार होने लगा था। दूर वृक्षो के झुरमुट की ओट मे सूर्य अस्त हो रहा था। जयराज ने एक बार उधर दृष्टि डाली। जब तक वे धनुषो पर बाण सन्धान करे। वह पलट कर दुर्धर्ष वेग से शत्रु पर टूट पड़े। दो को उन्होंने खड्ग से दो टूक कर डाला। एक ने आगे बढ़कर उनके मोढ़े पर करारा वार किया। अभयकुमार को पहचान कर जयराज आहत होने पर भी उस पर टूट पड़े। दो सैनिक पार्श्व से झपटे, एक को उन्होंने बाए हाथ की कटार से आहत किया। दूसरा पैतरा बदल कर पीछे हट गया। इसी समय जयराज ने अभय-कुमार के सिर पर एक भरपूर हाथ खड्ग का मारा। वह मूर्छित होकर धड़ाम से धरती पर गिर गया।

अब शत्रु सात थे। नायक के मूर्छित होने से वे घबरा गए थे, परन्तु जयराज भी अकेले तथा आहत थे। उनके मोढ़े से रक्त झर-झर बह रहा था। वे लड़ते-लड़ते ग्राम को लक्ष्य कर बढ़ने लगे। इसी समय अभयकुमार की मूर्छा भंग गई। उसने चिल्ला कर कहा—"मारो, उसे मार डालो देखो बच कर भागने न पाए।" शत्रुओं ने फिर उन्हें घेर लिया। अब वे चौमुखा वार करके खड्ग चला रहे थे। पर क्षण-क्षण विपत्ति की आशंका थी। अवसर पा उन्होंने एक शत्रु को और धराशायी किया।

इसी समय ग्राम की ओर से चार अश्वारोही अश्व फेंकते आते

उन्होंने देखे। उन्हें देख जयराज उत्साहित हो खड्ग चलाने लगे। शत्रु घातक वार कर रहे थे। कृषक तरुण ने कहा--"हम आ पहुंचे भन्ते राजकुमार" और साथियों को लेकर वह शत्रुओं पर टूट पड़ा। सब शत्रु काट डाले गये। अभयकुमार को बाँध लिया गया। सब कोई ग्राम की ओर चले। इस समय रात एक दण्ड व्यतीत हो गई थी। ग्राम के निकट पहुँचकर जयराज ने कृषक-युवक और उसके साथियों से कहा--"मित्रो, आपने मेरे प्राणों की रक्षा की है, इसके लिए तुम्हारा आभार ले जा रहा हूं, परन्तु मुझे एक अच्छा अश्व दो।"

"यह क्या भन्ते! क्या आप आज रात विश्राम नहीं करेंगे?"

"नही मित्र, मुझे जाना होगा"--इतना कह, उसे एक ओर ले जाकर स्वर्ण की एक भारी थैली उसके हाथ में रखकर कहा--"मित्र, तू रात भर यहाँ रह कर भोर होते ही वैशाली की राह पकड़ना, और यह मुद्रा किसी भी प्रहरी को देना, वे तुझे मुझ तक पहुंचा देंगे।"

"किन्तु आप आहत है भन्ते!"

"परन्तु मित्र, कार्य गुरुतर है।"

"तो मै भी साथ हूँ।"

"नहीं मित्र, रात्रि भर ठहर कर प्रातः चलना; पर राह में अटकना नहीं, तेरे पास मेरी थाती है।"

"समझ गया भन्ते, किन्तु यह स्वर्ण?"

जयराज ने हँस कर कहा--"संकोच न कर मित्र, वधूटी का कोई आभूषण बनवाना, ला अश्व दे।

युवक ने ऊँची रास का अश्व श्यालक से दिला दिया। फिर उसने आँखों में आँसू भरकर कहा--

"तो भन्ते....."

"हाँ मित्र, मै चला।"

"पर यह बन्दी?"

"इसकी यत्न से रक्षा करना, और राजगृह भेज देना, पाथेय और अश्व देकर। यह राजकुमार है !"

"ऐसा ही होगा, भन्ते !"

जयराज ने उसी अन्धकार में अश्व छोड़ दिया।

१३४

चण्ड भद्रिक

प्रबल-प्रताप मगध सेनापति चण्ड-भद्रिक के शौर्य, तेज और समर-कौशल की गाथाएँ उन दिनों सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में गाई जाती थी। उस युग में उनके जैसा धीर, वीर, तेजस्वी और दूरदर्शी सेनापति दूसरा भारत में न था। उन्होंने वैशाली के महत्त्व और सत्ता पर भली भांति विचार करके भगीरथ प्रयत्न से मागधी सेन का सर्वथा नए ढंग पर संगठन किया था। चम्पा, कोशल और मथुरा अवन्ती के अभियान में जो मागधी सेना का क्षय और हानि हो गई थी, वह उन्होंने सब बात की बात में पूरी कर ली थी, और अब राजगृह में घर-घर में वैशाली अभियान की ही चर्चा थी। लोग आमात्य वर्षकार के असाधारण निष्कासन को भी इस समय भूल गए थे ।

एक दिन सम्राट् और सेनापति ने अति गोपनीय मन्त्रणा की।

सम्राट् ने कहा—"आर्य भद्रिक, यदि शिशुनाग-वंश के मस्तक पर चक्रवर्ती छत्र नहीं आरोपित हुआ, तो इस वंश में बिम्बसार का जन्म ही लेना व्यर्थ हुआ, और आपका मगध-सेना-नायक होना भी। "

सेनापति ने हँस कर कहा—

"सो तो है देव, देखिए पृथ्वी पर हिमालय से दक्षिण समुद्र पर्यन्त अर्थात् उत्तर-दक्षिण में हिमालय और समुद्र के बीच का, तथा एक सहस्र योजन तिरछा, अर्थात् पूर्व-पश्चिम की और एक सहस्र योजन विस्तार वाला, पूर्व-पश्चिम समुद्र की सीमा से युक्त देश चक्रवर्ती क्षेत्र कहाता है। इस चक्रवर्ती क्षेत्र में आरण्य, ग्राम्य, पार्वत, औदक, भौम सम विषम और जो भूभाग हैं उनका निरूपण इस मानचित्र में देखिए;

और विचार कीजिए कि अब करणीय क्या है। प्रथम उत्तर-दक्षिण प्रदेश पर दृष्टि डालिए। आमात्य ने देव की अभिलाषा को चरितार्थ करने को ही यह योजना बनाई थी, कि दक्षिण समुद्र को मगध-साम्राज्य यदि स्पर्श करे, तो उसे सर्वप्रथम चण्ड-प्रद्योत अवन्तिनरेश और उसके मित्र मथुरापति अवन्ति वर्मन का पराभव करना चाहिए। रोरुक सौवीर पर भी अधिकार होना चाहिये। परन्तु देव का आग्रह वैशाली अभियान पर ही है, और आमात्य विनियोजित हैं, तब अभी वैशाली से ही निबट लिया जाय; परन्तु देव से एक निवेदन करूंगा। यदि वैशाली के गण-तन्त्र को भिन्न-भिन्न करना है, तो उसके संगी साथी मल्ल-शाक्य, काशी कोलिय, और दूसरे गणसघों के गुट्ट को भी आमूल तोड फोड देना होगा, तथा मगध-राजधानी राजगृह से हटा कर या तो वैशाली ही को चक्र-वर्ती क्षेत्र का केन्द्र बनाना होगा, या फिर पाटली ग्राम को मागध राज-धानी बनाने का सौभाग्य प्रदान करना होगा। बिना ऐसा किए इन केन्द्रस्थ गणगुट्टों को हम तोड फोड कर आमूल नष्ट नही कर सकते। क्योंकि इसके लिए मात्र सामरिक चेतना ही यथेष्ट नहीं है। वहाँ के जन-पद की मनोवृत्ति बदलने की भी बात है; क्योंकि आर्यों की भांति वहाँ भी छिद्र हैं। मुख्य छिद्र यह कि इन गणराज्यों में गणप्रतिनिधि लिच्छवि, मल्ल, शाक्य सभी ने यह नियम बनाया है, कि राज्य की सारी व्यवस्था अपने हाथ में रखी है। इनके राज्यों में आर्यों को कोई अधिकार ही नही है। इससे ब्राह्मण विस और सेट्ठि सभी जन उनसे उदासीन हैं। विग्रह छिड़ने पर इन गणों को, जहाँ युद्ध मे उलझना पड़ेगा, वहाँ इनकी रक्षा का भार भी ढोना होगा, और ये लोग युद्ध में कुछ भी सहायता अपने गण की नहीं करेंगे।

"तो यह छिद्र साधारण नहीं आर्य सेनापति. इसी से हम विजयी होंगे।

"परन्तु सेना से नहीं, संस्कृति से। इसीलिए हमें उन्हीं के बीच या

तो वैशाली में, नहीं तो फिर उनके निकट पाटलीपुत्र में राजधानी बना कर रहना होगा।"

"तो ऐसा ही होगा सेनापति, परन्तु अभी हम दक्षिण समुद्र-तट नहीं छू सकते, यह मैं भी देख रहा हूँ। परन्तु मागधों को अवन्ती पर अभियान करना होगा, इधर चम्पा विजय होने से पूर्वीय समुद्र-तट हमारा हो गया। यदि इसी के साथ हमारा कौशल का अभियान सफल होता, तो उत्तर गान्धार तक फिर कोई बाधा न थी। मेरे जीवन ही में मेरा स्वप्न पूर्ण हो जाता, परन्तु अब कदाचित् हमें दूसरी पीढ़ी तक प्रतीक्षा करनी होगी। विदूडभ दासीपुत्र कठिन हाथों से कौशल की व्यवस्था कर रहा है। यद्यपि वह प्रगट में आयुष्मान् सोमप्रभ से अति उपकृत है।

"सो तो है ही देव, परन्तु हम राजनीति में प्रथम ही से कोई कल्पना नहीं कर सकते, परस्थितियाँ क्षण-क्षण पर बदलती रहती हैं। इसलिए अभी हमें अपना ध्यान केवल वैशाली पर ही केन्द्रित करना चाहिए, जहाँ आमात्य आत्म-यज्ञ कर रहे हैं, और सोमकूट युद्ध। फिर हमारे सोनगंगा और वागमती तट के नए पुराने दुर्ग हैं, जो सब भाति सज्जित हैं। इसके अतिरिक्त हमारी समर्थ जल-सैन्य है, जिसके सम्बन्ध में देव को सब कुछ विदित कर दिया गया है।"

"तो ऐसा ही हो, आर्य सेनापति, कहिए, आपने किस प्रकार सैन्य व्यवस्था की है।"

"इस समय हमारे पास कुल एक अक्षौहिणी सैन्य सन्नद्ध है। इसे मैंने पाँच भागों में विभक्त किया है। एक 'मौल-बल' मूलस्थान अर्थात् राजधानी की रक्षा करने के लिए, इसका भार आचार्य शाम्बव्य पर है। इस सेना का कार्य केवल राजधानी की रक्षा ही नहीं, क्षय और व्यय की पूर्ति करना भी है। इस सेना में अधिक विश्वस्त अनुभवी और योग्य व्यक्तियों को आचार्य की अधीनता में रखा गया है, जिससे पीछे शत्रु भेद न डाल दे। अन्न, रसद, शस्त्रास्त्र और नए-नए भट

निरन्तर मोर्चे पर भेजते रहने की सारी व्यवस्था यही सेना करेगी। आवश्यकता होने पर सम्मुख-युद्ध भी कर सकेगी।

"दूसरी सेना 'भृतक-बल' है। इसमें वे ही योद्धा है जो केवल वेतन लेकर युद्ध करते है। शत्रु के पास भृतबल बहुत कम है और अभी हमें भिन्न शक्तियों से प्राप्त सहायता मिलने में विलम्ब भी है, अतः यही सैन्य कठिन मोर्चो पर आगे बढ़कर कार्य करेगी। इसी सेना को शत्रु के यातायात अवरोध पर भी लगाया जायगा।

"तीसरा 'श्रेणीबल' है जो जनपद में अपना-अपना कार्य करने वाले शस्त्रास्त्र प्रयोग मे निपुण पुरुषों की तैयारी की गई है। शत्रु के पास भी श्रेणीबल यथेष्ट है। शत्रु से मन्त्र-युद्ध भी होगा, और प्रकाश-युद्ध भी। ऐसी अवस्था में श्रेणीबल से हमें बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

"चौथा 'मित्रबल' है। मित्रबल हमारे पास बहुत है। सत्ताईस मित्रराज्यों से हमें मित्रबल प्राप्त होगा। हम उसे मूलस्थान की रक्षा मे भी लगा सकते है, और शत्रु के साथ युद्ध करने भी ले जा सकते है। हमें बहुत कम यात्रा करनी है। वैशाली में अब तृणी युद्ध के स्थान पर व्यायाम-युद्ध ही मुख्यतया होगा, इसलिए शत्रु की मित्र-सेना या आटविक सेना को, जो कि उसके नगर मे आकर ठहरी हुई होगी, पहिले अपनी मित्र-सेना के साथ लडा कर, फिर अपनी सेना के साथ लड़ाऊंगा।"

"इसके अतिरिक्त देव, हमारे पास विजित-शत्रु-सैन्य भी है। पहिले मै इसी को शत्रु से भिडाऊंगा। दोनों मे से जिस भी सैन्य का विनाश होगा, हमारा लाभ ही लाभ है। जैसे कुत्ते और सुअर के परस्पर लडने से दोनों में से किसी भी एक के मर जाने पर चांडाल का लाभ होता है उसी प्रकार, देव!"

इतना कह कर मगध महाबलाधिकृत भद्रिक हँस दिए। सम्राट् भी हँस पड़े। उन्होंने कहा—"यह तो ठीक है, आर्य सेनापति, परन्तु हमारी आटविक सैन्य की व्यवस्था सर्वोत्तम होनी चाहिए।"

"निस्संदेह देव, मेरे चर भिन्न-भिन्न रूप में शत्रु-भूमि में फैले हुए वहाँ का राई-रत्ती मान-चित्र तैयार करने में जुटे है। वन, वीथी, उपत्यका, नद, ह्रद, शृग जहाँ जो है, उसका ठीक-ठीक चित्रण कर रहे हैं। कहाँ कहाँ किस-किस युद्धोपयोगी वस्तुओं एवं व्यवहार्य पदार्थों का चय, उत्पादन, रोपन है, देख भाल रहे है। ज्यो-ज्यों उनसे सूचनाएँ मिलती जा रही हैं, हमारी आटविक सेना शिक्षित, अभिज्ञात होती जाती है। वह भली भांति सब मार्गों को जान गई है, उत्तम निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शकों, सूत्रकों का सहयोग उसे प्राप्त है। शत्रु-भूमि में छद्म-युद्ध, पलायन-युद्ध और सम-युद्ध करने की उसे पूरी शिक्षा दी गई है। वह सब भाति आयुधों से सुसज्जित है। जैसे एक बिल्वफल दूसरे बिल्वफल के द्वारा टकरा कर फोड दिया जाता है, उसी भांति हम आटविक बल को ले युद्ध प्रारम्भ कर देंगे। और शत्रु के तृण काष्ठ आदि छोटे-छोटे पदार्थों तक को उस तक न पहुंचने देंगे। बीच ही में नष्ट कर डालेंगे।"

"सुनकर संतुष्ट हुआ, आर्य सेनापति, और भी कुछ ज्ञातव्य है ?"

"हाँ देव, हमने एक औत्सुक्य-सैन्य का भी संगठन किया है। यह एक नेता-रहित सेना है। इसमें भिन्न-भिन्न देशों के रहनेवाले जन हैं। इस का काम शत्रु के देश में केवल लूट-मार करना है। इसमें भरती होने के लिये किसी आज्ञा या अनुशासन की आवश्यकता नहीं है। नगर-जनपद को लूटना, आग लगाना, खेतों और बाग-बगीचों को नष्ट करना, मार्गों और यातायात-साधनों को भंग करना तथा शत्रु के सम्पूर्ण राज्य में अव्यवस्था फैलाना ही इस सेना का कार्य होगा। इसके हमने दो भाग किए हैं --एक भेद्य, दूसरा अभेद्य। प्रतिदिन भत्ता लेकर अथवा मासिक हिरण्य नियमित-वेतन के रूप में लेकर शत्रु-देश में लूट-मार मचाने वाला भेद्य है। परन्तु दूसरी औत्साहिक सैन्य में विश्वस्त मागधजन ही हैं। यह अधिक सुगठित और सुसम्पन्न है। इस प्रकार देव हमने यह सात प्रकार का बल संगठन किया है।"

"साधु सेनापति, साधु। अब क्षय, व्यय तथा लाभ पर भी विचार करना आवश्यक है।"

"अवश्य देव, मेरी रण-नीति यह है कि क्षय और व्यय की दृष्टि से जिस काल में अत्यधिक गुणयुक्त-लाभ की सम्भावना हो तभी आक्रमण किया जाय। अर्थों का ही अर्थों से सम्बन्ध है देव, हाथी ही से हाथी पकड़ा जा सकता है।"

"सत्य है, आर्य सेनापति, तो अब सेना के कूच की आज्ञा होनी चाहिए।"

"अच्छा देव, हम तो तैयार ही हैं।"

१३५

दूसरी मोहन-मन्त्रणा

महाबलाधिकृत सुमन के अधिकरण में मोहन-गृह में वज्जीगण की समर-मन्त्रणा हुई। सन्धिविग्राहिक जयराज ने अपना विवरण सुनाते हुए कहा—"यद्यपि यह सत्य है कि मगध-सम्राट् के पास उत्तम सेनापति और अच्छे सैनिक नहीं हैं, तथा उसकी सेना में बहुत छिद्र हैं, फिर भी आर्य वर्षकार का तूष्णीयुद्ध और आर्य चण्ड भद्रिक की व्यूह-योजना अद्वितीय है। हम यदि तनिक भी असावधान हुए तो हमारा पतन निश्चित है, और हमारे साथ उत्तरपूर्वीय भारत के सब गणराज्य नष्ट हो जाएंगे। यह स्पष्ट है कि मगध-सम्राट् की सम्पूर्ण शक्ति इन दोनों ब्राह्मणों के हाथ में है, और यही मागध राज्यसत्ता को साम्राज्य के रूप में संगठित कर रहे हैं, जो आर्यों की पुरानी कुत्सित राज्य-व्यवस्था है। आर्यों के साम्राज्य इसलिए सफल हुए, कि उसमें आर्यों के शीर्ष-स्थानीय क्षत्रिय और ब्राह्मण एकीभूत हो गए थे, और निरीह प्रजावर्गीय संकर जातियों का कोई आश्रय ही न था, परन्तु अब वह बात नहीं है। शिशुनाग-वंश आर्य नही है, वह अपने ही-सवर्गीय जनों पर सम्राट् होकर रह नहीं सकता। ये आर्य ब्राह्मण—जो उस मूर्ख राजा की आड़ में आर्यों के ढांचे पर सम्राज्य गाँठ रहे हैं—वह अन्ततः विफल होगा। परन्तु अभी यदि वैशाली को आक्रान्त करता है, और उधर प्रद्योत का भी पतन हो जाता है, तो हमारे सम्पूर्ण गण-भावना नष्ट हो जायगी, और सम्पूर्ण जनपद फिर आर्यों के दासत्व में फँस जायगा अथवा साम्राज्यवाद के मद में अन्धे बिम्बसार जैसे जाति-घातक ही उनके अधिपति बन बैठेंगे।"

"यह अत्यन्त भयानक बात होगी, आयुष्मान्, सम्पूर्ण जनपद के मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए हमें लड़ना और जय पाना होगा।"—सेनाधिनायक सुमन ने कहा।

"किन्तु सेनापति, यदि सत्य देखा जाय, तो हम गणराज्यों के विधाता भी तो ठीक-ठीक जनपद मानवीय अधिकारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं। हमने भी तो अपने गणराज्यों की राज्य-व्यवस्था में आर्यों का बहिष्कार कर रखा है।"—सिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"यह है, परन्तु इसके गम्भीर कारण हैं, तथा इस समय हमें केवल मूल विषय पर विचार करना है, आयुष्मान्। अब हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारे भय के दो मध्य-बिन्दु हैं, एक ब्राह्मण वर्षकार और दूसरे चण्ड भद्रिक।"

"एक तीसरा भय और है"

"वह कौन?"

"सेनापति सोमप्रभ। वह एक मागध तरुण है, जिसको स्थैर्य, रण-पाण्डित्य और विलक्षण प्रतिभा पर तक्षशिला के आचार्य और छात्र दोनों ही स्पर्धा करते रहे हैं। सम्भवतः वह मागध तरुण मगध-सेना का संचालन करेगा।"—जयराज ने कहा।

"यह तरुण कौन है भद्र?"

"उसका परिचय रहस्यपूर्ण है, सम्भवतः एक ही व्यक्ति उसका परिचय जानता है, पर उसने होठ सी रखे हैं।"

"कौन व्यक्ति?"

"आर्या मातंगी"

"यह तो बडी अद्‌भुत बात है। तब फिर सम्राट् ने इस अज्ञात कुलशील को इतना भारी दायित्व कैसे दे रखा है?"

"चम्पा-युद्ध में उसने असाधारण रण-पाण्डित्य प्रदर्शन करके आर्य भद्रिक की प्रतिष्ठा बचाई थी।"

"तो क्या सम्राट् ने उसे सेनापति अभिषिक्त किया है?"

"नहीं, मगध-सेनापति भद्र चण्डिक ही है।"

"भद्रिक के शौर्य से मैं अविदित नहीं हूँ, भद्रिक मेरा सह-सखा है, मैं उसके सम्मुख असहाय हूँ, वह महाप्राण पुरुष है, फिर तू भद्र ऐसा क्यों कहता है कि श्रेणिक के पास अच्छे सेनापति नहीं हैं।" ––सेनापति सुमन ने कहा।

"भन्ते सेनापति, आर्य भद्रिक की निष्ठा निस्संदेह ऐसी ही है, परन्तु मगध में उनकी सी चली होती, तो मगध-सेना अजेय होती। परन्तु सम्राट् सदैव उन पर सशंक रहते है, वे समझते है कि कहीं चण्ड भद्रिक उन्हें मार कर सम्राट न हो जाय। जैसे अवन्ती-आमात्य ने राजा को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना दिया।"

"यही सत्य है आयुष्मन्, मैंने उसका कौशल देखा है। परन्तु आयष्मान सोमप्रभ कहाँ है? कुछ ज्ञात हुआ?'

'मगध में तो यही सुना है कि वह देश-विदेश मे घूम कर ज्ञानार्जन कर रहा है।"

"मगध में जो सब कहते है वह तो सुना, परन्तु सन्धिविग्राहिक जयराज क्या कहते है?"

जयराज हँस दिए। उन्होंने धीरे से कहा––"जयराज कहता है, वह सशरीर, सदलबल वैशाली में उपस्थित है।"

जयराज की बात सुन कर सब अवाक् होकर उसका मुंह ताकने लगे। सेनापति ने कहा––

"यह क्या कहता है आयुष्मान्।"

"सिंह ने उत्तेजित होकर कहा––'ऐसा प्रबल शत्रु दलबल सहित वैशाली में उपस्थित है, और हमें इसका ज्ञान ही नहीं है!"

"ज्ञान न होता तो कहता कैसे?"

"वह है कहाँ?"

"मधुवन की उपत्यका में" कुछ रुक कर उसने कहा—'दस्यु बलभद्र ही सोमप्रभ है।"

क्षण भर के लिए सब स्तब्ध बैठे रहे। स्वर्णसेन विचलित हो गए। सिंह ने कहा—"ठीक है, मैंने भी संदेह किया था। अच्छा, उसके पास सैन्य कितनी है?"

"पचास सहस्र, कुछ अधिक ही। इनमें दस सहस्र उत्कृष्ट अश्वारोही हैं। वे सब टुकड़ी बांध कर दस्यु-वेश में सम्पूर्ण जनपद में फैले हुए हैं। दिन भर वे पर्वत कन्दराओं में छिपे रहते हैं, और रात्रि को आक्रमण करते हैं। ये सब मंजे हुए योद्धा हैं, उनमें कुछ राजमार्ग पर आते जाते राजस्व, अन्न और दूसरी युद्धोपयोगी वस्तुओं को लूट लेते हैं। कुछ किसानों में मिल उन्हें बलि न देने और विद्रोह करने को उकसाते हैं। कुछ नगरों, वीथियों, गुल्मों पर छापा मार कर लूट-पाट करते हैं।"

"इतना?"

"और भी भन्ते सेनापति, उसने मरुस्थल में धान्वन दुर्ग बनाए हैं, जंगलों में बन-दुर्ग, और घने गहन झाड़ियों से भरे वनों में संकट-दुर्ग बना लिए हैं, जहाँ दलदल है वहाँ 'पंक' बनाए हैं। और पर्वतों पर 'शैल' पर्वतों की उपत्यकाओं में 'निम्न' और 'विषम' तथा गौओं और शकटों के चल-दुर्ग बनाए हैं। ये सब 'सत्र' हैं और शत्रु के छिप कर घात करने के साधन हैं। इन सब को यथावत् निर्माण कर शत्रु कूटयुद्ध कर रहा है। वह बहुत धन जन की हानि कर चुका है।"

"तो इधर ब्राह्मण का 'तृष्णी-युद्ध' और उधर आयुष्मान् सोमप्रभ का 'कूट-युद्ध'। तो अब आयुष्मान् श्रेणिक बिम्बसार के 'प्रकट-युद्ध' के कैसे समाचार हैं?"

"कहता हूँ भन्ते सेनापति, प्रथम तो यह कि उसने सोन, गंगा और वागमती के तट के सब दुर्गों की मरम्मत करा ली है, तथा सोलह

और नए दुर्ग निर्माण किए हैं। इन दुर्गों में साल के मोटे खम्बो के तिहरे प्राकार हैं। प्रत्येक दुर्ग में तीन से सात सहस्र तक शिक्षित भट पादातिक, अश्वारोही, रथी और गजारोही हैं। अन्न, जल और अन्य सामग्री इतनी संचित है, कि दुर्गवासी आवश्यकता होने पर एक वर्ष तक उससे काम चला सकते हैं।"

यह विवरण सुनकर सेनाध्यक्ष सुमन ने कहा—

"इस व्यवस्था को देखते तो भद्रिक की जितनी प्रशंसा की जाय—थोड़ी है।"

सिंह ने कहा—"हुआ, आगे कहो!"

जयराज ने कहा—"उसने एक सुव्यवस्थित नौसेना भी तैयार कर ली है। इसमें बीस सहस्र नौकाएँ हैं, जो तीन प्रकार की हैं। एक दीर्घा, जिनकी लम्बाई साठ हाथ और चौड़ाई चालीस हाथ है। ये हाथियों और अश्वों एवं रथों को स्थानान्तरित करती हैं। इनमें से प्रत्येक में सोलह नाविक और पचास धनुर्धर बैठ सकते हैं। दूसरी चपला, जो शीघ्र चलने वाली हल्की परन्तु अच्छी सुदृढ़ है। इसमें ८ नाविक और २० धनु-खड्ग शूलधारी बैठ सकते हैं। आर्य भद्रिक की योजना यह है, कि विजय का पूरा दायित्व नौवाहिनी पर ही केन्द्रित रहे। सम्राट् का कोष निस्संदेह रिक्त था पर सम्राट् ने उसे परिपूर्ण कर लिया है। अनेक श्रेष्ठियों ने उसे भर दिया है। शस्त्र और सैन्य भी हमसे अधिक तथा उत्तम हैं अथच हमारी तैयारियों का उसे यथेष्ट ज्ञान है। इसमें उसके गुप्तचर श्रमण ब्राह्मणों के रूप में बिखरे हुए हैं, बहुत सहायता कर रहे हैं। अंग को विजय कर लेने पर वहाँ के कूट-दन्त जैसे बड़े बड़े महाशाल ब्राह्मणों को उसने सम्मान और जागीर देकर अपने पक्ष में कर लिया है। और भद्दिय के मेंढक सेट्ठि की भाँति चम्पा के सम्पूर्ण वणिक् भी श्रेणिक बिम्बसार का यशोगान करते हैं, उन्होंने उसे सत्रह कोटिभार सुवर्ण दिया है। आर्य भद्रिक ने वहाँ

जो व्यवस्था की है, उससे सभी चम्पा-वासी प्रसन्न हैं। उधर उसने अपने को श्रमण गौतम का अनुयायी प्रसिद्ध कर दिया है। गत बार जब श्रमण गौतम राजगृह गए, तो वह निरभिमान हो बारह लाख मगध-निवासी ब्राह्मणों और गृहस्थों तथा अस्सी सहस्र गाँवों के मुखियों को लेकर गृद्धकूट पर पहुँचा। वहाँ से गौतम को अपने राजोद्यान वेणुवन में ले आया और वह उद्यान उसने गौतम की भेंट कर दिया।"

"बिम्बसार इस प्रकार अपने को बड़ा धार्मिक श्रद्धालु और निरभिमान प्रकट करके प्रशंसा का पात्र हो रहा है। प्रजा में उसका नाम होता जा रहा है। इन सब कारणों से हम कह सकते हैं, कि आज मगध-सम्राट् युद्ध करने के लिए सर्वापेक्षा अधिक सक्षम है।"

जयराज इतना कह कर चुप हुए। फिर उन्होंने कहा—"उनकी कुछ संधियाँ भी हैं, जिनसे हम लाभ उठा सकते हैं। इनमें सबसे अधिक यह कि हममें से प्रत्येक लड़ेगा अपने संघ की स्वतंत्रता के लिए, परन्तु मागधी सेना के सब सैनिक आर्य रंजुलों के सैनिकों की भांति नौकरी के लिए लड़ते हैं।

"यह सत्य है कि सम्राट् ने चम्पा से प्राप्त राज-कोष एवं चम्पा के सेट्ठियों से प्राप्त सत्रह कोटि भार सुवर्ण प्राप्त करके उसने कोष परिपूर्ण कर लिया है। अंग की लूट-मार का माल भी बहुत है। उसकी सेना भी हमसे अधिक है, परन्तु उसकी बहुत-सी सेना उसके बिखरे हुए तथा अरक्षित साम्राज्य की सीमाओं पर फैली हुई है। अभी अंग की आग भी दबी नहीं है। वहाँ भी उसकी बहुत-सी सेना फँसी हुई है। उधर अवन्ती और मथुरा का भय सर्वथा निर्मूल नहीं हुआ है और सबसे अधिक यह कि मगध का प्राण वर्षकार हमारे हाथों में है। हमें उसकी प्रत्येक चाल और गतिविधि से परिचित होना चाहिए। हमारी सेना के लिच्छवि सैनिक भी यह समझते हैं कि गण-शासन उनका अपना सुख-स्वतान्त्र्य से भरपूर शासन है, यहाँ उनसे न तो मनमाना

कर लिया जाता है, न उनकी सुन्दरी कन्याएं बल-पूर्वक हरण करके महल में डाल दी जाती है। न उनके अच्छे रथ और उनके घोड़े छीने जाते हैं। वज्जी के ब्राह्मण जेष्ठों और गृहपति निगमों से हमें स्वेच्छ से सहयोग मिलने की आशा है।"

सब विवरण सुनकर सेनापति सिंह ने कहा--"मित्र जयराज ने जो कुछ वक्तव्य दिया, वह आपने सुना। अब मैं आपको अपनी सेना की स्थिति बताता हूं। हमने मगधों के नदी-तीर के प्रत्येक दुर्ग के सम्मुख दो दो दुर्ग तैयार किए हैं। महौ तट पर तो हमने विशेषतया दुर्गों का तांता बांध दिया है। मही के उस पार की भूमि मल्लों की है, वे हमारे मित्र है, अतः वहां हम मही-पार उतर सकते हैं; आप देख चुके है कि मही की धारा बहुत तीव्र है। इसलिए नीचे से ऊपर आने में नौकाओं को बहुत मन्द चाल से जाना पड़ता है। अतः शत्रु हमारे इन दुर्गों पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते। इसलिए हम यहाँ अपनी रक्षित सैन्य और शस्त्रास्त्र संचित कर सकते हैं।

"दूसरी बात यह है कि इधर तो मल्लों की इस तट-भूमि को मागध अपने उपयोग में नही ला सकते और बहाव की ओर मिही के मार्ग से हमारी सैनिक नौकाएं तीर की भांति शत्रु पर टूट पड़ सकती है, इस समय हमारे पास दो सहस्र से अधिक सैनिक नौकाएं है जिन पर पचास सहस्र भट डटकर युद्ध कर सकते हैं। आगामी दो मासों में हम और भी दो सौ रणतरी बना लेंगे। उधर मगध को वज्जी पर आक्रमण करने के लिए बड़ी बड़ी नदियों को पार करना पड़ेगा। उनकी गति-विधि को रोकने के लिए हमें नौकाओं की अत्यन्त आवश्यकता होगी वास्तक में सत्य यही है कि इस युद्ध में हम नौकाओ द्वारा ही विजयी हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में हमें एक यह सुविधा है, कि मागधों की अपेक्षा हमारे पास मल्लाहों के कुल अधिक हैं। बेगार और असुविधाओं के कारण तथा वज्जीतन्त्र में स्वतन्त्रता, भूमि तथा अन्य

सुविधा पाने से मगध के बहुत मल्लाह-कुल वज्जी में आ बसे हैं, यह आप जानते हैं, कि हमारे मल्लाह दास नहीं हैं, वे सुखी सम्पन्न और हमारे गण के सहायक हैं। उनके जेट्ठकों ने स्वेच्छा ही से अपनी सेवाएं हमें समर्पित की हैं। हमारे गान्धार मित्र काप्यक की सम्मति से हमने एक विशेष प्रकार की हल्की रणतरी बनाई है, जिनका कौशल गुप्त रखा गया है। ये हमें नौ-युद्ध में अति महत्त्वपूर्ण सहायता देंगी। हाथियों, रथों और अश्वों को पार करने के लिए हमने विशाल नौकाएं तथा उत्तम घाट बना लिए हैं।"

"अब यदि हम दक्षिण और पूर्वी सीमा पर दृष्टि देते है, तो हमारी पदाति सेना लगभग मगध सेना के समान ही संगठित एव संख्या में है। तथा उनकी शिक्षा आधुनिकगान्धार-पद्धति पर की गई हैं। अश्व, रथ, गज हमारे पास मागधों से कम अवश्य हैं, परन्तु अवन्ति कौर मथुरा में बहुत-सी मगध अश्वारोही तथा गजसेना वहाँ फँसी है। समय पर उसकी सहायता सम्भव नही है, फिर हमारे पास नौ-मल्लगण और अठारह काशी-कौशल के गण-राज्यों का अक्षुण्ण बल है। सब मिलाकर हम पौने दो अक्षौहिणी सेना समर में भेजने की आशा करते हैं।"

अब नौबलाध्यक्ष समन्तक ने कहा—"मित्र! सिंह ने जो अपना बल-परिचय दिया है, उसके सम्बन्ध में मैं केवल यही कहा चाहता हूं, कि मेरी दृष्टि में हम मागधों से अधिक सुगठित हैं। हमें यह जान लेना चाहिए, कि दक्षिण का युद्ध ही निर्णायक युद्ध होगा, और मै अपने मित्र काप्यक और उसके गान्धार वीरों की सहायता से, जिनकी हम प्रतीक्षा कर रहे हैं, बहुत आशान्वित हूं। मै कह सकता हूं कि हमें मही-तट-र्ती दुर्ग और रणतरियाँ ही सफलता प्रदान करेंगी। मागध सब बातों का प्रत्युत्तर रखता है पर हमारी उन दो सहस्र रणतरियों का उसके पास कोई प्रत्युत्तर ही नहीं है।"

काप्यक ने कहा—"भन्ते, सेनापति और मित्रगण यह जानकर प्रसन्न

होंगे कि मुझे समाचार मिला है, कि गान्धार से जो वैद्यों और भटों का दल चला है, वह दो ही चार दिन में यहाँ पहुँचने वाला है। यहाँ मैं नौका-युद्ध का एक रहस्य निवेदन करता हूँ, जिसे मैंने भली भांति निरीक्षण किया है। मही-नदी दिधिवारा के पास गंगा में मिलती है, किन्तु सेना उससे बहुत नीचे पाटलि-ग्राम के सामने। इससे मागधों को तो हम भरपूर हानि पहुँचा सकते हैं, और वे हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

इस पर सेनापति सिंह ने कहा--"तो भन्ते सेनापति, मैं प्रस्ताव करता हूँ, कि हम अब तैयार हैं, और हमें मागधों के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, तथा अवसर पाते ही प्रथम आक्रमण कर देना चाहिए। पहले आक्रमण के लिए तट की सेनाओं, नौकाओं और हाथियों को पहले तथा रथों, अश्वो और पादातिकों को बाद में प्रयुक्त करना चाहिए, और मही की रक्षित सेना को उस समय, जब शत्रु थक जाय।"

इस पर महाबलाध्यक्ष सुमन ने कहा—"तो आयुष्मन्, ऐसा ही हो। तू सैन्य को तैयार रख, और अवसर पाते ही आक्रमण कर, मैं आमात्य वर्षकार और उनके सहायकों को बन्दी करने की आज्ञा प्रचारित करता हूँ।"

१३६

युद्ध-विभीषिका

वैशाली में आतंक छा गया। मगध-महामात्य ब्राह्मण वर्षकार और ब्राह्मण सोमिल, अनुचर-कलत्र और बटुकवर्ग सहित बन्दी कर लिए गए। नन्दनसाहु, सेट्ठि कृतपुण्य भी बन्दी हो गए। उनका घर-द्वार सभी राजसैनिकों ने अपने अधीन कर लिए। काणा चाण्डाल मुनि न जाने कहाँ एकाएक अन्तर्धान हो गया। सेट्ठिपुत्र प्रभुनीक को आचार्य गौड़पाद के दायित्व पर उसी के घर में दृष्टिबन्धक कर लिया गया। नगर के घाट-द्वार, राजमार्ग सभी बन्द कर दिए गए। बाहर जाने आने के लिए सैनिक आज्ञापत्र लेना अनिवार्य हो गया। अन्तरायण के सब खाद्य-भण्डारों पर सैनिक अधिकार हो गया। विदेशियों की बारीकी से छान-बीन होने लगी। बहुत जन संदिग्ध पाए जाकर बन्दी बना लिए गए। जलाशय, कूप, राजमार्ग, वीथी, दुर्ग, द्वार, तोरण, स्तम्भ, बुर्ज सभी पर सैनिकों का अनवरत पहरा बैठा दिया गया। सब स्वस्थ वयस्क पुरुष अनिवार्य रूप से सैनिक बना दिए गए। सम्पूर्ण गृह और व्यवहार-उद्योग युद्धोद्योगों में परिणत हो गए। शस्त्रास्त्र और कवच एवं विविध युद्ध-साधनों का रात-दिन निर्माण होने लगा। लिच्छवि तरुणियाँ भी सेवा-सेना में भरती होकर शुश्रूषोपचार की शिक्षा पाने लगीं। सेना को शस्त्रास्त्र बाँट दिए गए। उनकी टुकड़ियाँ नगर के भीतर बाहर चलती फिरती दृष्टि पड़ने लगीं। सारे नगर में सैनिक अनुशासन की व्यवस्था कर दी गई। आज्ञा उल्लंघन के लिए मृत्युदण्ड घोषित कर दिया गया। वैशाली के मनमौजी और स्वभाव ही से विलासी लिच्छवियों के मुखों पर हास्य-विनोद के स्थान पर चिन्ता

व्यग्रता और उद्वेग दीख पड़ने लगे। तरुण भट अपने-अपने शस्त्र चमकाते अश्व कुदाते, बढ़-बढ़ कर बातें बघारते इधर उधर घूमते दीख पड़ने लगे।

बहुत लोग बहुत भाँति की बातें करते। कोई दस्यु बलभद्र की अद्भुत सर्वत्र-गमन की शक्ति-सत्ता को खूब बढ़ा चढ़ाकर कहता, कोई मागध सम्राट् की कामुकता, वीरता तथा साम्राज्यलिप्सा की आलोचना करता। बहुत जन इस युद्ध का सम्बन्ध अम्बपाली से जोड़ते।

अम्बपाली के आवास की आभा भी फीकी पड़ गई। सैनिक नियमों के आधार पर उसके आवास में सार्वजनिक प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। अम्बपाली के आवास को विशेष रीति पर सैनिक निरीक्षण और संरक्षण में रख दिया गया। राजकोष, महत्वपूर्ण लेख और बहु-मूल्य सामग्री भूमिगर्भ-स्थित भूगृहो में रख दी गई।

वैशाली के सब आबाल-वृद्ध विचलित व्यग्र और आशंकित हो उठे। युद्ध की विभीषिका ने उन्हें विमूढ़ कर दिया।

———

*

१३७

मागध स्कन्धावार-निवेश

वास्तुशिल्पियों ने वर्धकि जनों के सहयोग से-मौहूर्तिकों से अनुशासित हो, आर्य भद्रिक के आदेश और विकल्प से पाटलिग्राम के पूर्वी स्कन्ध पर, गंगा और सिंही संगम के ठीक सम्मुख तट से तनिक हटकर, लम्बे परिमाण में गोलाकार मागध स्कन्धावार-निवेश स्थापित किया। उसमे चार द्वार, ९ मार्ग, ९ संस्थान बनाए गए। स्कन्धावार चिर-स्थायी था, इस विचार से खाई, परकोटा और कुछ अट्टालिकाएं भी बनाई गई, तथा एक मुख्य-द्वार निर्माण किया गया।

स्कन्धावार के मध्य भाग मे उत्तर की ओर, नौवें भाग में सौ धनुष लम्बा तथा इससे आधा चौडा राजगृह बनाया गया। उसके पश्चिम की ओर उसके अधे भाग मे अन्तःपुर निर्मित किया गया। अन्तःपुर की रक्षक सैन्य का स्थान उसके निकट ही रखा गया। राजगृह के सम्मुख राजउपस्थान गृह था। जहां बैठकर सम्राट् सेनापति और अभिलषित जनों से मिलते थे। राजगृह से दाहिनी ओर कोश-शासनकरण, अक्ष-पटल, कार्यकरण निर्मित हुआ। बाई ओर सम्राट् के गज, रथ, अश्व के लिए स्थान बना गया। राजगृह के चारों ओर कुछ अन्तर पर चार बाड़ लगाई गई। पहिली बाड शकटों की, दूसरी कॉटेदार वृक्षों की शाखा की, तीसरी दृढ़ लकड़ी के स्तम्भों की, चौथी पक्की ईंटो की चुनी हुई थी। प्रत्येक बाड़ का परस्पर सौ-सौ धनुष का अन्तर था। पहली बाढ़ के भीतर सामने की ओर मंत्रियों और पुरोहितो के स्थान थे। दाहिनी ओर कोष्ठागार, महानस और बाई ओर कुप्यागार और आयुधगार था। दूसरी बाड़ के भीतर मौलभृत आदि सेनाओं के उप-निवेश थे। तथा गज रथ और सेनापति के स्थान थे। तीसरे घेरे मे

हाथी, श्रेणीबल तथा प्रशास्ता का आवास था। चौथे घेरे में विष्टि, । नायक तथा स्वपुरुषाधिष्ठित मित्रामित्र सेना एवं आटविक सेना थी यहीं व्यापारियो, वणिकों, वेश्याओं के आवास तथा बड़ा बाजार थे। बहेलिए शिकारी, बाजे तथा अग्नि के संकेत से शत्रु के आगमन की सूचना देने वाले ग्वाले आदि के वेश मे छिपे हुए रक्षक पुरुष बाहर की ओर रखे गये थे।

जिस मार्ग के द्वारा स्कन्धावार पर शत्रु द्वारा आक्रमण की सम्भावना थी, उस मार्ग में गहरे कुएं, खाई आदि खोदकर घास-फूंस से ढाप दिए थे। कहीं-कही काटे या लोहे की कीले ठुके हुए तख्ते बिछा दिए गए थे।

स्कन्धावार पर पहरे के लिए अठारह वर्गों का आयोजन था। कुल सेना मौलभृत आदि छै वर्गों में विभाजित थी। प्रत्येक के तीन-तीन अधिकारी थे--पदिक, सेनापति और नायक। प्रत्येक सेना के अपने-अपने अधिकारी की अधीनता मे तीन-तीन वर्ग होकर छः प्रकार की सेनाओं के इस प्रकार अठारह वर्ग थे। यही सब बारी-बारी से प्रतिक्षण स्कन्धावार की रक्षा सावधान रहकर करते रहते थे। शत्रु के गुप्तचरो की तथा शत्रु की गतिविधि का निरीक्षण करने को गूढ़ पुरुषों की नियुक्ति थी। सैनिकों को लड़ने-झगड़ने, पान-गोष्ठी करने, जुआ आदि खेलने का नितान्त निषेध था। स्कन्धावार के बाहर भीतर आने जाने के लिए राजमुद्रा का कड़ा प्रबन्ध था, बिना आज्ञा युद्ध भूमि तथा स्कन्धावार से भागने वाले सैनिक को शून्यपाल तुरन्त बन्दी करले--ऐसी कठोर राजाज्ञा प्रचारित कर दी गई थी।

कण्टक-शोधनाध्यक्ष बहुत से शिल्पी कर्मकर और उनके प्रधानों के साथ मार्ग की रक्षा, जलप्रबन्ध, मार्गस्थापन, जंगल साफ करने और हिंसक प्राणियों को स्कन्धावार से दूर भगाने में सतत संलग्न था।

१३८

प्रयाण

'स्थान' 'आसन' और 'गमन' का ठीक-ठीक विकल्प कर ग्राम अरण्य आदि अध्वनिवेश में ईंधन, धान्य, जल, घास आदि की समुचित व्यवस्था प्रबन्ध कर भोजन, वस्त्र, शस्त्रास्त्र को यत्नपूर्वक सुरक्षा में संग ले मागध सैन्य ने मौहूर्तिकों से नक्षत्र दिखा सम्राट् ने प्रयाग किया।

सेना के अग्रभाग में दस सेनापतियों का नायक, बीच में अन्तःपुर और सम्राट्, इधर उधर शत्रु के आघात को रोकने वाली अश्वारोहिणी सैन्य चली। सेना के पिछले भाग में हाथी चले। अन्न, घास, भूसा आदि सामग्री सब ओर से ले जाया जाने लगा। जंगल में उत्पन्न होने वाला आजीविका योग्य अन्न, घास आदि सामग्री संग्रह होती चली। अन्न, वस्त्र आदि व्यवहार्य साधन लगातार छकड़ों हाथियों में लद-लद कर सेना के साथ चले। आसार अपसार को सुरक्षित कर सब से पिछले भाग में सेनापति पर्याय से अपनी-अपनी सेना के पीछे नियत हो चले।

सेना का अग्रभाग मकर-व्यूह रच कर और पश्चात् भाग शकट-व्यूह बद्ध होकर आगे बढ़ा। पार्श्वभाग की सैन्य वज्र-व्यूह से, तथा चारों ओर का बहिःसैन्य सर्वतोभद्र-व्यूह में बद्ध हो आगे बढ़ा। कहीं-कहीं तंग घाटियों में, दरारों में, सूची-व्यूह भी बनाना पड़ा। इस प्रकार सर्वतोभावेन रक्षा-व्यवस्था क्रम स्थापित कर मागध सैन्य ने प्रयाण किया। पहिले कुछ दिन प्रतिदिन एक योजन, फिर डेढ़ योजन और फिर दो योजन मार्ग प्रतिदिन सैन्य ने काटा।

धन-धान्य से समृद्ध शत्रु नगरों को नष्ट करते हुए पृष्ठस्थिति केन्द्रों तथा शत्रु और अपने देशों के मध्यवर्ती सामन्तों को तथा उदासीन

राजाओं को साम दाम दण्ड भेद नीति से वशवर्ती करते हुए, संकट विषम राह को साफ करते हुए, कोश, दण्ड, मित्र-शत्रु आटविक सैन्य, विष्टि और मुख्य सैन्य सब की सुख-सुविधा और अनुकूल ऋतु का विचार कर सम्राट् धीरे-धीरे कभी द्रुतगति से वैशाली की ओर अग्रसर हुए।

कभी हाथियों द्वारा छिछली नदियों को पार किया। कभी नदी में 'स्तम्भ-सक्रम' करके, कभी सेतुबन्धन, कभी नाव, लकड़ी तथा बाँस के बेड़े बना कर, कभी तुम्बी, चर्मकाण्ड, दृति, गण्डिका और वेणिका आदि साधनों से मागध सैन्य ने नदियों को पार किया।

कठिन मार्गों, भारी दलदल, गहरे जल, गुफा, पर्वत आदि को पार करती हुई, पर्वतों पर चढ़ती उतरती, तंग पथरीले, पहाड़ी विषम मार्गों पर होती हुई, भूख प्यास और थकान से खिन्न हो बीच-बीच में सुस्तातीं, ज्वरसक्रामक महामारी तथा दुर्भिक्ष की बाधाओं को सहन करती, बीमार, पैदल, हाथी, अश्वों के साथ मागध सैन्य आगे बढ़ती चली गई। धीरे-धीरे सेना ने स्कन्धावार में प्रवेश कर वहाँ उपनिवेश किया। निरन्तर आने वाली मागध सैन्य का राजगृह और वैशाली के बीच राजमार्ग पर तांता लग गया।

———

*

१३९
शुभ दृष्टि

"तो हमें कल ही उल्काचेल चल देना चाहिए"--सिंह ने कहा।"

"निश्चय, क्योंकि हमें सम्पूर्ण गंगातट का सैनिक दृष्टि से निरीक्षण करना है, फिर सिंही के सब दुर्गों को एक बार देख डालना है। हम ग्यारहों नायक चलेंगे, तभी ठीक होगा मित्र सिंह!'—गान्धार काप्यक ने कहा।

"परन्तु मित्र काप्यक, सिंही का एक ही तट हमारे अधीन है। दूसरे तट से हमारी नावों के प्रयोगों को शत्रु के गुप्तचर देख सकते हैं।"

"यह तो असम्भव नहीं है।"

"तब क्यों न मरकटहद सरोवर में रणतरी के प्रयोग किए जायं।"

"यह अधिक अच्छा होगा, वहीं पर हम रणतरियों का परीक्षण, सैनिकों का शिक्षण और नाविकों का संगठन कर डालेंगे, और वहीं से आवश्यकता होने पर सिंही-तट पर उन्हें भेजना प्रारम्भ कर देंगे। परन्तु हमें अधिक से अधिक लोहशिल्पियों को एकत्र करना चाहिये।"

"जो हो, हमें सूर्योदय से प्रथम ही उल्काचेल चल देना चाहिए"

'तो मित्र काप्यक, तुम साथ के लिए थोड़े से चुने हुए गान्धार सेनानी ले लो। अच्छा है राह घाट वे देख लेंगे। यदि हम एक पहर रात्रि रहे चल दें, तो मार्ग के शिविरों को देखते भालते हम दो दण्ड दिन चढ़े तक उल्काचेल पहुंच जाएँगे। वहां के घाटरक्षक अभीति को मैंने सन्देश भज दिया है। वह हमारा स्वागत करने को तैयार रहेगा।"

काप्यक ने कहा—"फिर ऐसा ही हो!"

नदी-तट पर धीरेधीरे-घूमते हुए सिंह और काप्यक गान्धार में ये

बातें हुई और दूसरे दिन वे मध्याह्न तक उल्काचेल जा पहुचे। चुने हुए पचास गान्धार अश्वारोही उनके साथ थे।

उपनायक अभीति ने आगे बढ़ कर सिंह और उपनायक काप्यक का सैनिक अभिवादन किया। तथा गान्धार सैनिको का हार्दिक स्वागत करते हुए कहा—"मैं उल्काचेल मे आपका और आपके मित्रो का स्वागत करता हूँ। मेरे उपनायक अशोक आपको यहाँ की सेना-व्यवस्था का सम्पूर्ण विवरण बताएँगे। परन्तु मै चाहता हूँ कि मुख्य स्थान मै आपको दिखा दूँ। मैंने अपने और शत्रु के दुर्ग का एक मान-चित्र तैयार कर लिया है, वह यह है, इससे आप सब बातें जान लेगे। इसमें यह भी लिख दिया है कि हमारी कहाँ कितनी सेना है।"

"यह बड़े काम की वस्तु होगी नायक"—सिंह ने कहा।

अभीति-नायक बोले—"आपकी आज्ञानुसार दक्षिण सेना के बहुत से नायक, उपनायक, सेनानो भी उल्काचेल आ पहुँचे है। आप पहले भोजन करके थोड़ा विश्राम कर लीजिए फिर उनसे बातचीत करना ठीक होगा।"

"ऐसा ही हो, नायक"—सिंह ने मानचित्र पर ध्यान करते हुए कहा।

फिर सब लोगों ने स्नान भोजन कर थोड़ा विश्राम किया। पहर दिन रह गया था, जब सिंह ने दक्षिण सैन्य के सेनानियों में से, एक एक को बुला कर आदेश देने प्रारम्भ किए। सिंह ने उनके सैन्यबल के सम्बन्ध में सारी बाते पूछीं, और एक तालपत्र पर लिखते गए। सूर्यास्त तक यह काम समाप्त हुआ।

स्वच्छ चाँदनी रात थी। नायक अभीति ने कहा—"इस समय गगा तट के कितने ही नव-निर्मित दुर्गो का परीक्षण किया जा सकता है। यदि विश्राम की इच्छा न हो तो मैं नाव मगाऊं।"

सिंह ने कहा—"विश्राम की कोई बात नहीं है। नायक, तुम नाव तैयार कराओ।"

नायक अभीति, सिंह और काप्यक तीनों आदमी नाव में जा बैठे। तीर-तीर नाव चलने लगी। सामने गंगा के उस पार पाटिल-ग्राम मे मगध शिविर पड़ा था। उसमे जलता हुआ आग का प्रकाश मीलों तक फैला दीख रहा था। नाव धीरे-धीरे गंगा-मही-संगम पर दीधिवारा की ओर जा रही थी। नाविक सब सावधान और अपने कार्य में दक्ष थे। गंगा में व्यापारिक बड़ी छोटी नावे और माल से भरी नावें तैर रही थी। किसी-किसी नाव में दीपक का क्षीण प्रकाश भी प्रकट हो रहा था। गगा-किनारे के सब दुर्गो में पूर्ण निस्तब्धता थी। न प्रकाश था न शब्द। अभीति की इस सम्बन्ध में कड़ी आज्ञा थी। दीधिवारा तक कुल पाच दुर्ग वज्जियो के थे। सेनानायको ने सभी का निरीक्षण किया। नाव को घाट तक लगते देखते ही प्रहरी पुकार कर सकेत करता, नाव पर से नायक संकेत करता, प्रहरी तत्काल दुर्गाध्यक्ष को सूचना देता, और ये नाविक चुपचाप नाव से उतर कर दुर्ग का निरीक्षण कर आते, तथा अध्यक्ष को आवश्यक आदेश दे आते। घाट से दुर्ग तक के मार्ग गुप्त और घुम-घुमौवल बनाए गए थे। अपरिचित व्यक्ति का वहाँ पहुंचना शक्य न था। सैनिक नावे इस प्रकार छिपा कर रखी थी, कि उन पार से तथा इस पार से भी उन्हें देख पाना शक्य न था। विशाल मरकट-ह्रद को एक छोटी-सी टेढी नहर द्वारा नदी से मिला दिया गया था। आवश्यकता पड़ने पर सब नावें सैनिकों सहित क्षण भर में गंगा की बड़ी धारा में पहुंच सकती थीं। यद्यपि यह निरीक्षण बिना सूचना के हो रहा था परन्तु प्रत्येक प्रहरी सावधान एवं सजग था।

पहर रात गए सेनानियों की नौका दीधिवारा के दुर्ग में पहुंची। यह औरों से बड़ा था। यहाँ की व्यवस्था भी उत्तम थी। दोनों नवीन नायक सैनिकों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे।

पौ फट रही थी, जब ये सेनानी उल्काचेल पहुंचे। पीछे लौट कर

सिंह ने कहा—"नायक अभीति, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं मित्र, तुमने यथेष्ट व्यवस्था की है।"

नायक ने हँस कर सेनापति का अभिवादन किया। इसके बाद सब ने विश्राम किया। दिन भर जयराज के चर शत्रु-सेना का सम्वाद लाते रहे। उससे विदित हो गया, कि बिम्बसार अभी सेनापति भद्रिक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसलिए मगध सम्राट् अभी युद्ध प्रारम्भ करने का निर्णय नहीं कर पाए हैं।

रात को फिर तीनों सेनानी गंगा के नीचे मिट्टी और गंगा के संगम पर स्थित दुर्गों को देखने चले। यह एक रात में समाप्त नहीं हो सकता था। वे दिन भर किसी दुर्ग में विश्राम करते और रात में देखी बातों के संस्मरण लिखते। सन्ध्या होने पर फिर आगे चलते। वे तीसरे दिन वागमती संगम-तट पर के दुर्ग में पहुंचे, भटों की तत्परता और सतर्कता पर सेनानियों ने सन्तोष किया। उन्हें आवश्यक आदेश दिए। और तक्षशिला की नई रणचातुरी सिखाने के लिए उन्हें उल्काचेल आने को कहा।

अभी महा नदी के दुर्गों को देखना शेष था। एक दिन उल्काचेल में तरुण सेनानियों ने विश्राम किया, तथा आवश्यक आदेश वैशाली और भिन्न भिन्न केन्द्रों को भेजे।

दूसरे दिन चन्द्रोदय के साथ ही काप्यक और सिंह ने मिही की ओर नाव छोड़ी। दीधिवारा के संगम से ऊपर धार तीव्र थी, इसलिए घूम कर नौका ले जाना पड़ा। मही के पूर्वी तट पर हरी घास का मैदान था। जहाँ सहस्रों गायें चर रही थीं। बीच में आदमियों और पशुओं के लिए छोटी-छोटी कुटियाँ बनी थीं। वे लिच्छिवी और अलिच्छिवी दोनों थे।

चार दिन में मही के दुर्गों का निरीक्षण हुआ। उन्हें नायक शान्तनु और उसके आठ उपनायकों को सौंप दिया गया। जिससे वे नाविकों को

नवीन कौशल सिखा सकें। यह करके दोनों मित्र फिर उल्काचेल चले आए। यहाँ से काप्यक तो कुछ नौ-सुधार के लिए वैशाली चले गए, और सिंह ने सेनानियों को नौ-युद्ध के कुछ नवीन और गुप्त रहस्य सिखाए। आठ दिन में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

अब सिंह ने अपने सम्पूर्ण कार्य का विवरण महाबलाध्यक्ष सुमन के पास वैशाली लिख भेजा। बलाध्यक्ष पश्चिमी और पूर्वी सीमान्त पर नौ-युद्ध की नवीन पद्धति की परीक्षा की बात जान कर वे अतिसन्तुष्ट हुए।

अब सिंह ने अपना ध्यान दूसरी ओर किया। जयराज को उन्होंने लिखा, कि चरों की संख्या बढ़ा दी जाय, और सोन-तट और गंगा-तट पर शत्रु जो नई कार्यवाही कर रहा है, इसकी क्षण-क्षण की सूचना हमें मिलती जाय। सिंह ने यत्नपूर्वक यह भी जान लिया, कि राजगृह और उसके मार्ग की रक्षा का क्या प्रबन्ध किया गया है। जयराज ने अनेक चर, परिव्राजक, निगंठ, आजीवक, भिक्षु आदि वेशों में; कुछ को व्यापारी और ज्योतिषी बनाकर शत्रु की ओर भेज दिया। उन्होंने बताया कि चण्ड भद्रिक बड़ी द्रुत गति से राजधानी के दुर्गों की मरम्मत करा रहे हैं; तथा गंगा-तट से वहाँ तक उन्होंने उचित स्थानों पर नाकेबन्दियाँ कर रखी हैं। नालन्द, अम्बालिष्टिका की दो योजन भूमि में उसकी तैयारियाँ और भी अधिक थीं। अभिप्राय स्पष्ट था कि चतुर चाणक्य चण्डभद्रिक को भय था, कि लिच्छवि कहीं राजगृह तक न दौड़ जाय। सिंह सेनापति उल्काचेल लौट आए।

चर सिंह के पास क्षण-क्षण में सूचना ला रहे थे; और मगधराज की सम्पूर्ण गति-विधि का पता उन्हें लग रहा था। वे सूचनाओं के साथ-साथ अपनी योजनाएं भी सेनापति और गणपति के पास भेज रहे थे।

१४०

मागध मन्त्रणा

सेनापति भद्रिक और सम्राट् ने स्कन्धावार-राजगृह के मन्त्रणागार में युद्ध-मन्त्रणा की। मन्त्रणा में सम्राट्, महासेनापति आर्य भद्रिक, सेनापति उदायि, सेनापति सोमप्रभ और आमात्य सुनीथ उपस्थित थे। उनके अतिरिक्त अपनी-अपनी सेना लेकर आए हुए सहायक राजा और राजसेनापति भी उपस्थित थे। जिनमें वंग के श्रमणदत्त, कलिंग के वीरकृष्ण मित्र, अवन्ती के श्रीकान्त, भोज के समद्रपाल, आन्ध्र के सामन्त भद्र, माहिष्मती के सुगुप्त, भृगुकच्छ के सुदर्शन और प्रतिष्ठान के सुवर्णबल ये आठ मित्र महासेनापति सम्मिलित थे।

युद्ध के सम्बन्ध में सब अंगों पर प्रकाश डाला गया। दूष्य सेना, शत्रु सेना, आटविक सेना का पृथक-पृथक विभाजन कर पृथक-पृथक सेनापतियों को सौंप दिया गया। अपसार, प्रतिग्रह, पार्वत दुर्ग, नदी-दुर्ग, और वन-दुर्गों के अधिकार पृथक-पृथक सेनानायकों को बाँट दिए गए।

शून्यपाल और वास्तुपाल नियत किए गए। सत्रों की रक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया।

सम्पूर्ण सेना का अधिनायकत्व महासेनापति आर्य भद्रिक ने ग्रहण किया। सेनापति सोमप्रभ हुए। आर्य उदायि को नौबलाध्यक्ष नियत किया गया। आमात्य सुनीथ शून्यपाल नियत हुए। आचार्य काश्यप कूट-युद्ध के नायक हुए। सम्पूर्ण सम्मिलित स्थल सैन्य का दायित्व सोमप्रभ को दिया गया—दक्षिण युद्ध-केन्द्र पर उनकी नियुक्ति हुई। आठों मित्र सेनानायक राजपुरुष उनकी अधीनता में रखे गए। सत्रों का भार गोपालभट्ट को दिया गया। सम्राट् को युद्धभार से सर्वथा

मुक्त रखा गया। शत्रु पक्ष में सम्राट् को कोई न पहचान पावे इसके लिए अनेक गूढ़ पुरुष सम्राट् के वेश में नियत किए गए।

सूत और मागधगण सेना के उत्साह-वर्धन के लिए नियुक्त हुए। शल्य चिकित्सक शस्त्र, यन्त्र, अगद, स्नेह और वस्त्रों तथा खाने पीने शुश्रूषा करने के सब साधनों से सम्पन्न परिचारिकाओं सहित यथास्थान नियत किया गया। धान्वन दुर्ग में युद्ध करने वाले योद्धाओं को, वन-दुर्ग में युद्ध करने वाले योद्धाओं को, जल तथा स्थल में युद्ध करने वाले योद्धाओ को, खाई खोद कर उनमें बैठ कर युद्ध करने वाले योद्धाओं को, आकाश में युद्ध करने वाले तथा दिन भर और रात्रि में युद्ध करने वाले योद्धाओं को यथावत् विभाजित कर उनके सेनानायकों को उन्हें सौप युद्ध-योग्य प्रदेश ऋतु और अपेक्षित समय की सब व्यवस्थाओं पर विचार कर व्यवस्थित किया गया। रथयुद्ध, हस्तियुद्ध, अश्वयुद्ध तथा पदातियुद्ध एवं चतुरंगप्रकाश-युद्ध के स्थान के मानचित्रों पर सम्यग् रीति से विचार करके सामरिक दृष्टि से उनके नियोजन की व्यवस्था की गई। भूमिविचय, वनविचय, विषम, तोय, तीर्थ, वात और रश्मि के उपयुक्त स्थलों पर संघात स्थापित किए गए। शत्रु के वीवध, आसार, और अपने विवध, आसार का प्रबन्ध किया गया। शत्रु की सेना को पकड़ने, शत्रु से पकड़े हुए अपने योद्धाओ को छुड़ाने, अपनी सेना के मार्ग पर शत्रुओं की सेना के चले जाने पर स्वयं शत्रुसेना के मार्ग का अनुसरण करने, शत्रु के कोश और सेनानायकों का अपहरण करने, पीछे तथा सम्मुख हो आक्रमण करने, भागते हुए सैनिकों का पीछा करने, तथा बिखरी हुई अपनी सेना को एकत्रित करने की सम्पूर्ण योजनाओं पर विचार किया गया।

ये सारे कार्य अश्वारोही सैन्य को सौपे गए।

सेना के अग्रभाग और पश्चात्-भाग का रक्षण करने, नए तीर्थ और मार्ग बनाने, घने जंगलों के घमासान युद्ध में प्रमुख भाग लेने, शत्रु के वासस्थानों में आग लगाने और अपने स्कन्धावार-निवेश में लगी आग

को बुझाने, शत्रु की संगठित सैन्य को छिन्न-भिन्न करने, योद्धाओं को पकड़ने, परकोट, द्वार, अटारी आदि गिराने, शत्रु के कोश को लूट ले भागने का कार्य हाथियों के अधिपति को सौंपा गया।

अपनी सेना की रक्षा करने, आक्रमण के समय शत्रु-सैन्य को रोकने, शत्रु के द्वारा पकड़े गए अपने योद्धाओं को छुड़ाने, बिखरी सेना को एकत्रित करने, शत्रु की सेना को विचलित करने का कार्य रथ-रथी और रथपतियों को सौंपा गया।

प्रत्येक सम विषम स्थानों, प्रत्येक अनुकूल प्रतिकूल ऋतु और परिस्थितियों में घनघोर खड्ग युद्ध करने का काम पादातिक सैन्य को दिया गया।

शिविर, मार्ग, सेतु, कूप, घाट आदि तैयार करने; उन्हें ठीक ठाक रखने; यन्त्र, शस्त्र, कवच आदि साधन सम्पन्न करने तथा आहत भटों को युद्ध-स्थल से ढोकर चिकित्सा-केन्द्रों तक पहुंचाने का काम विष्टि-सैन्य को दिया गया।

इस प्रकार युद्ध-संचालन की सारी व्यवस्था कर—मागध महा-सेनापति चण्ड भद्रिक ने सोमप्रभ का अभिनन्दन करते हुए सम्पूर्ण सेनापतियों के समक्ष उनके शौर्य कौशल युक्ति और स्थैर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और परिपूर्ण अनुशासन का बारम्बार अनुरोध किया।

———

१८१

प्रकाश युद्ध

मिही के उस पार की मल्लों की भूमि पर वज्जी सैन्य का स्कन्धावार निवेश था। मिही-तट पर दुर्गों का तांता बंधा था, तथा वहाँ एक अस्थायी पुल नावों का बाँधा गया था, जिसकी रक्षा गान्धार काप्यक के गान्धार भट यत्नपूर्वक कर रहे थे। मिही-तट के इन दुर्गों में वज्जियों की शस्य-भण्डार और रक्षित सैन्य बहुत मात्रा मे थी। मिही की धारा अति तीव्र होने के करण नीचे से ऊपर आकर इन दुर्गों पर आक्रमण करना सुकर न था। वज्जी-स्कन्धावार-निवेश और मगध-स्कन्धावार-निवेश के मध्य में पाटिल ग्राम था। पाटिल ग्राम की स्थापना दूरदर्शी मगध महामात्य वर्षकार ने वज्जियों से युद्ध करने के लिए की थी। अभी उसमें बहुत कम घर, हर्म्य और राजमार्ग बन पाए थे। बस्ती बहुत विरल थी। उत्तर काल में जहाँ बैठ कर गुप्त वंश के महामहिम सम्राटों ने ससागर जम्बूद्वीप पर अबाध शासन-चक्र चलाया था, वह एक नगण्य साधारण ग्राम था। मागध राजपुरुष और कभी-कभी सैन्य की कोई टुकड़ी मास आधा मास पाटिलग्राम में आकर टिक जाती थी। फिर उनके लौट जाने पर लिच्छवि राजपुरुष लोगों को घर से निकाल कर बस रहते थे। उन्हें वहाँ से भगाने के लिए फिर मगध-सेना मंगानी पड़ती थी। ग्रामजेट्ठक एक बूढ़ा मागध सैनिक था, उसके अधीन जो दस बीस सैनिक थे---कुछ भी व्यवस्था नहीं कर सकते थे। इस निकल-घुस के कष्ट से पाटिल ग्राम के निवासी कृषक बड़े दुःखी थे। उन्हें पन्द्रह दिन लिच्छवियों के अधीन और पन्द्रह दिन मागधों के अधीन रहना पड़ता था। बहुधा दोनों ही राजपुरुष उनसे जोर-जुल्म करके

बलि उघा ले जाते थे। अपने कर और अपनी सम्पत्ति पर उनका कोई अधिकार ही न था। न वे और न उनकी सम्पत्ति रक्षित थी। इसी से पाटिल ग्राम की आबादी बढती नहीं थी। कोई भी इस द्वैध-शासित ग्राम में रहना स्वीकार नहो करता था।

इस समय ग्राम का पूर्वी भाग लिच्छवि-सेनापति के अधीन था, और पश्चिमी भाग मागध सैन्य के। ग्रामवासी युद्ध के भय से भाग गए थे और घरों में दोनों पक्षों के सैनिक भरे थे। जिन्हें प्रतिक्षण आक्रमण से शंकित रहना पड़ता था।

मागध स्कन्धावार-निवेश से पाँच सौ धनुष के अन्तर पर पाटिल ग्राम के दक्षिण समभूमि पर मागध सेनापति सोमप्रभ ने संग्राम-क्षेत्र स्थापित करके सम-व्यूह की रचना की। सम्पूर्ण व्यूह के पक्ष, कक्ष और उरस्थ ये तीन अंग स्थापित किए गए। सेना के अग्रभाग के दोनो पार्श्व में 'पक्ष' स्थापित कर उसके दो भाग कर, वाम माहिष्मती के सुगुप्त की ओर दक्षिण पक्ष प्रतिष्ठान के सुवर्ण-बल की अधीनता में स्थापित हुआ। पीछे के 'कक्ष' के भी दो भाग करके वाम कक्ष भोज समुद्रपाल और दक्षिण कक्ष आन्ध्र सामन्त भद्र की अधीनता में स्थापित किया गया। मध्य 'उरस्थ' मे स्वय सेनापति सोमप्रभ स्थित हुए। उनके पार्श्वरक्षक बंग के वैश्रमणदत्त, अवन्ती के श्रीकान्त, और कलिंग के वीर कृष्णमित्र स्थित हुए।

पैदल सेना के प्रत्येक सैनिक को एक एक शम पर खड़ा किया गया। अश्वारोहियो को तीन-तीन शम के अन्तर पर, रथ और हाथियों को पाँच-पाँच शम के अन्तर पर, धनुर्धारियों की सैन्य को एक धनुष के अन्तर पर स्थापित किया गया। इस प्रकार पक्ष, कक्ष और उरस्थ की पाँचों सेनाओं का परस्पर का अन्तर पाँच-पाँच धनुष रखा गया।

अश्वारोही के आगे रहकर उसकी सहायतार्थ युद्ध करने के लिए तीन भट, हाथी और रथ के आगे १५-१५ भट तथा पाँच-पाँच

अश्वारोही तथा घोड़े हाथियों के ५-५ पादगोप नियुक्त किए गए। इस प्रकार एक-एक रथ के आगे पाँच-पाँच घोड़े, एक-एक घोड़े के आगे तीन-तीन भट, कुल मिला कर पन्द्रह जन आगे चलने वाले और पाँच सेवक पीछे रहे।

उरस्य स्थान मे नौ रथो की ऐसी तीन त्रिको की स्थापना हुई। अभिप्राय यह, कि तीन-तीन रथों की एक-एक पंक्ति बना कर तीन पंक्तियों नौ रथों को खड़ा किया गया। इसी प्रकार कक्ष और पक्ष में भी। ऐसे नो उरस्य, अठारह कक्ष और अठारह पक्ष मे मिल कर एक व्यूह मे पैंतालीस रथ, पैंतालीस रथों के आगे दो सौ पच्चीस अश्वारोही, और छ सौ पचहत्तर पैदल भट, परस्पर की सहायता मे युद्ध करने को स्थापित हुए।

इस व्यूह की रचना तीन समान त्रिकों से की गई थी, इससे यह सम-व्यूह कहाया। परन्तु इसकी व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि आवश्यकतानुसार इसमें दो रथों की वृद्धि इक्कीस रथ पर्यन्त की जा सकती थी।

बची हुई कुछ सेना का दो तिहाई भाग पक्ष, कक्ष तथा एक भाग उरस्य में आवाप, प्रत्यावाप, अन्वावाप, और अत्यावाप, करने की भी व्यवस्था तैयार रक्खी गई थी।

लिच्छवि सैन्य को तीन स्वतन्त्र व्यूहो में सेनापति सिह ने विभक्त किया था। एक "पक्षभेदी" व्यूह स्थापित किया गया, इसमें सेना के सम्मुख दोनों ओर हाथियों को खडा किया गया, और पिछले भाग में उत्कृष्ट अश्वारोहियों को, उरस्य मे रथो को। इसका संचालन मल्लराज प्रमुख सौभद्र कर रहा था। दूसरी सैन्य को 'मध्यभेदी' व्यूह में स्थापित किया गया था, इसमें हाथी मध्य में, रथी पीछे अश्वारोही अग्रभाग में स्थापित थे। इसका संचालन लिच्छवि सेनानायक वज्रनाभि कर रहा था। तीसरी सेना को 'अन्तर्भेदी' व्यूह में बद्ध किया गया था

जिसमें हाथी पीछे, मध्य में अश्वारोही और अग्रभाग में रथों की योजना थी। रथों, अश्वों एवं हाथियों की रक्षा की व्यवस्था मागधों ही के समान थी। इस सैन्य का संचालन गान्धार तरुण कपिश कर रहा था।

लिच्छवि सेनापति सिंह ने स्वयं हाथियों का एक 'शुद्ध व्यूह' रच उसे अपने अधीन रखा था। इसमें केवल साम्राह्य हाथी ही थे। जिनकी संख्या तीन सहस्र थी। ये सब युद्ध की शिक्षा पाए हुए धीर और स्थिर थे। इनमें उन्मत्त और मदमस्त हाथियों को लोह-शृंखला में बद्ध करके अग्रभाग के दोनों पक्षों में रखा गया था। इस शुद्ध-हस्ति-व्यूह को लेकर सेनापति सिंह लिच्छवि सैन्य के उरस्य में स्थित थे।

बीस सहस्र कवचधारी अश्वों का एक शुद्ध-व्यूह लिच्छवि सेनापति महाबल की अध्यक्षता में कक्ष को दोनों पार्श्वों में सन्नद्ध किया गया था, तथा पादाति सैनिकों के एक शुद्ध-व्यूह को आगे दो भागों में और धनुर्धारियों के शुद्ध-व्यूह को कक्ष के दोनों पार्श्वों में समुचित सेनानायकों की अध्यक्षता में स्थापित किया हुआ था।

एक दण्ड दिन चढ़े तक दोनों ओर की सैन्य अपने-अपने व्यूहों में सन्नद्ध खड़ी हो गईं। उनके शस्त्र सूर्य की स्वर्णिम आभा में चमक रहे थे। दोनों सेनापतियों ने एक बार सारी सेना में घूम-घूम कर अपनी-अपनी सेना का निरीक्षण किया। मागध सेनापति सोमप्रभ धूमकेतु पर आरूढ़ श्वेत-कौशेय परिधान में अपनी सेना से बाहर आ दश धनुष के अन्तर पर खड़ा हो गया। इसी समय मागध सैन्य के प्रधान संचालक ने शंख फूंका। शंख-ध्वनि के साथ ही मागध सैन्य से जय-जयकार का महानाद उठा। इसी समय लिच्छवि सेनापति सिंह श्वेत अश्व पर आरूढ़ रंगीन परिधान पहने अपने सैन्य से बाहर आ, पाँच धनुष के अन्तर पर खड़ा हो गया। अब लिच्छवि सैन्य में भी शंखध्वनि एवं जय-जयकार का नाद उठा।

दोनों सेनानायकों ने सूर्य की रश्मियों में चमकते हुए नग्न खड्ग

उष्णीय से लगा कर एक दूसरे का अभिवादन किया।

इसी समय एक बाण मागध सैन्य से छूटकर लिच्छवि सेनापति सिंह के अश्व के निकट भूमि पर आ गिरा। यह देख दोनों ही सेनापति विद्युत् वेग से अपने-अपने अश्व दौड़ा कर अपनी सैन्य में जा घुसे। तुरन्त ही मागध सैन्य में आक्रमण की हलचल दीख पड़ी, यह देख सिंह ने अवरोध और प्रत्याक्रमण के आवश्यक आदेश सेनानायकों को दे, कुछ आवश्यक सूचनाएँ भूर्जपत्र पर लिख मिट्टी की मुहर कर द्रुतगामी अश्वारोही के हाथ वैशाली भेज दी।

इसी समय मागधी सेना के व्यूह-बहिर्गत दो सहस्र अश्वारोही खड्ग और शूल हाथ मे लिए वेग से आगे बढ़े। सिंह ने लिच्छवि सेनापति महाबल को दो सहस्र कवच-धारी अश्वारोही लेकर वक्र गति से आगे बढ़ कर बिना ही शत्रु से मुठभेड़ किए घूम कर अपनी सैन्य के दक्षिण पार्श्व-स्थित मध्यभेदी व्यूह में घुस जाने का आदेश दिया। महाबल मंद्र गति से आगे बढ़े, ज्योंही शत्रु पाँच धनुष के अन्तर पर रह गए, महाबल ने दाहिनी ओर अश्व घुमाए और वेग से घोड़े फेंके। मागध सैन्य ने समझा कि, शत्रु परामुख हो भाग चले। उन्होंने वेग मे दौड कर भागते हुए लिच्छवि सैन्य पर धावा बोल दिया। यह देख कर सिंह ने मध्यवेदी व्यूह के सेनानायक वज्रनाभि को अपने अश्वारोही और रथी जनों को पार्श्व से शत्रु पर जनेवा काट करने का आदेश दिया। इससे शत्रु का पृष्ठ देश अरक्षित होगया। तथा शत्रु सैन्य अपनी कठिनाई को समझ गई। इसी समय सिंह ने पक्षभेदी व्यूह को आगे बढ़ कर शत्रु सैन्य में घुस कर उसके व्यूह को छिन्न-भिन्न करने का आदेश दिया।

देखते ही देखते मागध सैन्य में अव्यवस्था फैलने लगी और उस की आक्रमण करने वाली सेना तीन ओर से घिर गई। यह देख सोम-प्रभ ने पक्ष-सेनापति सुगुप्त को स्थिर होकर रथियों और हाथियों से युद्ध

करने का आदेश दे, कक्ष-स्थित भोज, समुद्रपाल और आन्ध्र-सामन्त भद्र को वृत्ताकार घूम कर शत्रु के पक्ष भाग पर दुर्धर्ष आक्रमण का आदेश दिया। इस समय मागधी और लिच्छवि सेना आठ योजन विस्तार भूमि में फैल कर युद्ध करने लगी। अपने पक्ष-भाग पर दो ओर से आक्रमण होता देख सिंह ने हाथियों के शृद्ध-व्यूह को शत्रु के अग्रभाग में ठेल देने का आदेश दिया। मदमस्त, उन्मत्त हाथी चीखते चिघाड़ते, भारी-भारी लौह-शृंखलाओं को सूँड़ में लपेट कर चारों ओर घुमाते मागध सैन्य के अग्रभाग को कुचल-कुचल कर छिन्न-भिन्न करने लगे। ऊपर से हाथी-सवार सैनिक बाण-वर्षा करने चले। यह देख सोमप्रभ ने आठ सहस्र सुरक्षित पादातिकों को छोटे खड्ग लेकर घुटनों के बल रेंग-रेंग कर हाथियों के पैरों और पेट पर करारे आघात करने का आदेश दिया। इसी कार्य में सुशिक्षित मागध पादाति हाथियों की मार से बच कर उन के पार्श्व में हो उनके पैरों और पेट में खड्ग से गम्भीर आघात करने और उछल-उछल कर उनकी सूंड़ काट-काट कर फेंकने लगे। सूंड़ कटने से तथा पैरों और पेट में करारे घाव खा-खा कर हाथी विकल हो महावत के अंकुश का अनुशासन न मान, आगे-पीछे इधर-उधर अपनी और शत्रु की सेना को कुचलते हुए भाग चले। सिंह ने फिर आठ सहस्र कवच-धारी अश्वों को आगे बढ़ा कर उन्हें आदेश दिया कि वे शत्रु की सेना के चारों ओर घूम-घूम कर चोट पहुँचाएं। सोमप्रभ ने यह देखा तो वह हाथियों को आगे कर तथा दोनों पार्श्वों में रथी स्थापित कर आगे पीछे अश्वारोही ले लिच्छवि सैन्य के मध्य भाग में सूई की भांति घुस कर उसके उरस्य तक जा पहुँचा। लिच्छवि-सैन्य की शृंखला भंग हो गई। तब मागध अश्वरोही सेना तेजी से अभिसृत, परिसृत, अतिसृत, अपसृत, गोमूत्रिका, मण्डल, प्रकीर्णिका, अनवेश, भग्नरक्षा आदि विविध गतियों से शत्रु-सैन्य में घुस कर उसे मथने लगी। अध-मरे अश्व-गज चिल्लाने लगे। घायल सैनिक चीत्कार करने लगे। भट हुंकृति करके भिड़ने और खटाखट शस्त्र चलाने लगे। दोनों ही पक्षों

का संतुलन ऐसा हुआ, कि प्रत्येक क्षण दोनों ही जय की आशा करने लगे। अब सिंह ने परिस्थिति विकट देख उरस्य में हाथियों के शृङ्ग-व्यूह को स्थिर होकर युद्ध करने तथा रथियों के चारों ओर घूम कर शत्रुओं को दलित करने का आदेश दिया। पादाति भट जहाँ तहाँ जम कर बाण, शूल, शक्ति और धनुष से शस्त्र-वर्षा करने लगे।

सम्राट् युद्धस्थल से सौ धनुष के अन्तर पर अपने प्रसिद्ध हाथी मलयागिर पर खड़े युद्ध की गति-विधि देख रहे थे। क्षण-क्षण पर सूचनाएं उन्हें मिल रही थीं। वे शत्रु द्वारा छिन्न-भिन्न होती सेना को ढाढ़स बँधा कर फिर इकट्ठी कर रहे थे।

अब अवसर देख कर लिच्छवि सेनापति सिंह ने दण्ड-व्यूह और प्रदर-व्यूह रच कक्ष भागों की ओर से शत्रु-सेना पर आक्रमण का आदेश दिया। सोमप्रभ ने देखा तो उसने तुरन्त दृढ़क-व्यूह रच पक्ष-स्थित सेना को मुड़कर शत्रु-सैन्य पर वार करने का आदेश दिया। सिंह सन्नाह्य-अश्वों से सुरक्षित दस सहस्र अश्वों को असह्य-व्यूह में अवस्थित कर स्वयं दुर्धर्ष वेग से सेना के बीच भाग में घुस गए।

जय-पराजय अभी अनिश्चित थी। सूर्य इस समय अपराह्न में ढल चले थे। दोनों ओर की सैन्य रक्तपिपासु हो निर्णायक युद्ध करने में लगी थी। धीरे-धीरे युद्ध की विभीषिका बढ़ने लगी। घायल भट मृतक मुण्डों और पशुओं की ओट में होकर बाण-वर्षा करने लगे। मरे हुए हाथी, घोड़ों, सैनिकों तथा टूटे-फूटे रथों से युद्धस्थल का सारा मैदान भर गया। एक दण्ड दिन रहे दोनों ओर से युद्ध बन्द करने के संकेत किए गए। हाथी, घोड़े, सैनिक धीरे-धीरे अपने-अपने आवास को लौटने लगे। सूर्यास्त से कुछ प्रथम ही युद्ध-विभीषिका शान्त हो गई, परन्तु इस एक ही दिन के युद्ध में दोनों पक्षों की अपार हानि हो गई। यह महा-भीषण युद्ध जब सूर्यास्त होने पर बन्द हुआ तो आहत, थकित, भ्रमित योद्धा अपने-अपने स्थानों पर उदास और निराश भाव से लौट आए।

१४२

लघु विमर्श

सेनापति सिंह ने युद्धस्थल से लौट कर तुरन्त सम्पूर्ण स्कन्धावार का निरीक्षण किया। फिर घायलों और मृतकों की अविलम्ब व्यवस्था कर घायलो को जल्द-से-जल्द सेवा-केन्द्रों में भिजवाने का प्रबन्ध किया। युद्ध-बन्दियों तथा शत्रु के घायलो को अनुक्रम से शिविरों में भिजवाने के आदेश दिए। इसके बाद उन्होंने भूर्जपत्र पर युद्ध-विवरण के साथ आगे की योजनाएं भी सेनानायक सुमन के पास भिजवा दी। फिर उन्होंने सब सेनानायकों को एकत्र कर भावी कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया। शत्रु की गतिविधि का अनुमान कर नए-नए आदेश दिए। घायल और मृत सैनिकों, नायकों, उपनायकों के स्थान पर नवीनों को नियुक्ति की। स्कन्धावार की सुरक्षा की व्यवस्था और भी दृढ़ की। इसके बाद वे गहन चिन्तामग्न होकर युद्धक्षेत्र के मानचित्र को देखकर कोई योजना बनाने लगे।

सब कार्यों से निपटकर उन्होंने स्नान, भोजन और थोड़ा विश्राम किया। इस बीच जल-सेना-नायक काप्यक गान्धार ने आकर सूचना दी।

दोनों वीर सेनापति इस प्रकार परामर्श करने लगे।

सिंह ने कहा--"मित्र काप्यक, मागध सेनापति सोमप्रभ उत्तम सेनानी है।"

"क्यों नहीं, वह भी तो आचार्य बहुलाश्व का अन्तेवासी है" काप्यक ने हँसकर कहा।

सिंह ने कहा--"यद्यपि आज शत्रु की बहुत भारी हानि हुई है परन्तु हमारी क्षति भी ऐसी नहीं, जिसकी उपेक्षा की जा सके।"

"क्या शासानुशास का दर्पदलन करके सिंह आज मागधों से हतोत्साह हुए हैं?"

"नहीं मित्र, परन्तु मैं वस्तुस्थिति की बात कहता हूँ। अब सम्भवतः कल पाटलिग्राम तीर्थ से गंगा पार कर वैशाली पर आक्रमणकरेंगे। निरर्थक प्रकाश युद्ध करके नर-संहार कराएँगे।"

"तो मित्र, पाटलिग्राम तीर्थ से गंगा पार करना इतना आसान नहीं है।"

"तेरे रहते? यह मैं जानता हूँ मित्र, वैशाली की लाज तेरे हाथ है।"

"चिन्ता नहीं मित्र सिंह, वचन देता हूँ मागध गंगा के इस ओर का तट न छू सकेंगे।"

"आश्वस्त हुआ मित्र, क्या तुझे कुछ चाहिए?"

"नही मित्र, मैं चाहता हूँ तू विश्राम कर।"

"तो मित्र एक बात ध्यान में रखना। मागध कदापि दिन में गंगा पार न करेंगे।"

"तब तो और अच्छा है, हमें अपनी योजना सफल करने का सुअवसर मिल जायगा।"

"तो मित्र, अब मैं विश्राम करूँगा।"

"निश्चिन्त रह सेनापति!"

दोनों विदा हुए।

१४३

व्यस्त रात्रि

वह रात और दूसरा दिन शान्ति से सिंह का व्यतीत हुआ, दोनो ओर के सैनिक अपने-अपने मृत सैनिकों, घायलों बन्दियों की व्यवस्था में रत रहे। सूर्यास्त के समय सिंह को सूचना मिली--पाटलि-ग्राम के गंगा-तट पर हाथियों की बडी भीड एकत्रित है। मगध-सेना संभवतः आज ही रात में इस पार उतरना चाहती है। सिंह ने तुरन्त कर्तव्य स्थिर किया। एक भूर्जपत्र पर मिट्टी की मोहर लगा, मिही-संगम पर अवस्थित काप्यक के पास भेज दिया। दूसरा पत्र उसी प्रकार सेनापति और गण-पति के पास भेज दिया। जिनमें सूचना थी कि युद्ध आज रात ही को प्रारम्भ हो रहा है। गान्धार काप्यक ने आदेश पाते ही पाटिल-ग्राम के सामने वाले घाट पर आकर अपनी योजना ठीक की। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि थी। गहरा अन्धकार छाया था। हिलते हुए गंगाजल में काँपते हुए तारे टिमटिमा रहे थे। उस ओर मगध शिविर में दूर कहीं कहीं आग जल रही थी। इधर के तट पर काप्यक ने धनुर्धारियों की एक सुदृढ़ पादाति-सेना को गंगा-तीर के गहन वन में छिपा दिया। उनमें से बहुत तो अपने धनुषबाण ले वृक्षों पर चढ़ गए। बहुत से तटवर्ती ऊँचे-ऊँचे ढहों पर चढ़ गए। बहुत से पेड़ों की आड़ में छिपकर चुपचाप बैठ गए। इनका नेतृत्व उपनायक प्रियवर्मन कर रहा था।

भटों की दूसरी टुकड़ी बड़े-बड़े खड्ग और शूल लिए हुए गंगा-तट पर फैले हुए बालू के मैदान में घाट के नीचे की ओर मिही-संगम तक चुपचाप पृथ्वी पर लेट गई; और संकेत की प्रतीक्षा करने लगी। इनका नेतृत्व उपनायक पुष्पमित्र कर रहे थे।

धनुष, शूल और खड्ग धारी तीसरी सेनाको रणतरियों में सजाकर काप्यक ने अपने नेतृत्व में ले लिया। प्रत्येक तरी में पचास योद्धा थे। ये रणतरी मरकट-ह्रद से गंगा-तीर तक आड़ में अवस्थित चुपचाप आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी।

सब ओर सघन अन्धकार और नितान्त सन्नाटा छाया हुआ था। किसी जीवत प्राणी के अस्तित्व का यहाँ पता ही नहीं लगता था।

अभी रात एक पहर गई थी। काश्यप ने धीवरों के दल के पास जाकर एक-एक को ध्यान से देखा। उनमे से एक तरुण को संकेत से पास बुलाया। पास आने पर कहा--

"तुम्हारा क्या नाम है मित्र?"

"शुक, भन्ते सेनापति।"

"तुममे कितना साहस है, मित्र?"

"बहुत है सेनापति!"

"सच?" काश्यप ने हँसकर कहा। तरुण की धवल दन्तावलि भी अन्धकार में चमक उठी। कपिल ने उसके उसी रात के जैसे गहन कृष्ण कन्धों को छूकर कहा--

"शुक, एक गुरुतर कार्य कर सकोगे?"

"निश्चय सेनापति!"

"पर प्राण-संकट आया तो?"

"कार्य पूरा होने पर आए तो हानि नहीं, भन्ते!"

"पर पहिले ही आया तो?"

"ऐसा हो ही नहीं सकता सेनापति!"

"तुम बड़े वीर हो प्रिय, पर काम बहुत भारी है।"

"आप कहिए तो?"

"उस पार धार चीरकर जा सकोगे?"

"इसमें कौन कठिनाई है, वहाँ जाकर क्या करना होगा, भन्ते?"

"जल में छिपे रहना होगा। ठीक पाटिल-ग्राम के घाट के नीचे।'

"मुझे छिपने के सौ हथकण्डे याद हैं, भन्ते!"

"पर वहाँ शत्रु की अनगिनत नाव हैं, सब पर चौकन्ने मागध धनुर्धारी भट हैं।"

"पर शुक को कौन देख पा सकता है, सेनापति? मैं जल ही जल में डुबकी लगाता जाऊँगा फिर किसी नाव की पेंदी में चिपट जाऊँगा बड़ी मौज रहेगी, भन्ते!"

"परन्तु इतना ही नहीं शुक, तुम्हें और भी कुछ करना होगा।"

"और क्या सेनापति।"

"ज्यों ही तुम देखो कि शत्रु की नावें भटों से भरी इस पार आने को हैं, तुम्हें हमें संकेत करना होगा।"

शुक ने दो उंगलियाँ मुंह में लगाकर एक तीव्र शब्द किया, और कहा--"इसी तरह शब्द करूँगा, भन्ते! वे समझेंगे कोई पानी का पक्षी बोल रहा है।"

काश्यप ने हँसकर कहा—"ऐसा ही करो शुक!"

फिर उन्होंने अन्धकार को भेदकर अपनी दृष्टि उस पार पाटिल-ग्राम के पार्श्व में पड़े मगध-स्कन्धावार की ओर दौड़ाई। फिर इन्होंने कहा --"तो शुक, अब देर न करो। तुम्हें क्या चाहिए?"

"कुछ नहीं। यह मेरे पास है।" उसने एक विकराल दाव अपनी टेंट से निकालकर दिखाया और छप से पानी में पैठ गया।

कुछ देर तक काश्यप उस साहसी वीर की ओर आशा-भरी दृष्टि से देखते रहे। इसके पीछे उन्होंने चुपचाप गहन वन में प्रवेश किया। एक झाड़ी में थोड़ा स्थान था, उसे स्वच्छ करके दो सैनिक वहाँ बैठे थे, काश्यप के संकेत पर उन्होंने प्रकाश किया। काश्यप ने कुछ पंक्तियाँ भूर्जपत्र पर लिखकर मिट्टी की मुहर कर सिंह के पास उल्काचेल भेज

दी। फिर उन्होंने उपनायकों से परामर्श किया, उन्हें आदेश दिए और फिर सब.....

अकस्मात् दूर से वही क्षीण शब्द सुनाई पड़ा। कुछ ठहरकर फिर वही शब्द हुआ। काश्यप तन्मय हो संकेत ध्वनि सुनने लगे, फिर उन्होंने तुरन्त प्रियवर्मन को संकेत किया। प्रियवर्मन ने अपने भटों को संकेत किया, सब ने सावधान हो अपने-अपने धनुष पर तीर चढ़ा लिए। वे गंगा-तीर पर घन अन्धकार मे आँख गड़ा-गड़ा कर देखने लगे। नीरवता ऐसी थी कि प्रत्येक की साँस सुनाई दे रही थी। काश्यप की रणतरियों में भी हलचल हो रही थी। पर यहाँ भी सब कुछ निश्शब्द। काश्यप गंगा तीर के एक सघन वृक्ष की छाया में एक तरी में खड़े चारों ओर चौकने हो देख रहे थे।

जल मे शब्द सुनाई दिया—छप छप। घाट से कुछ नीचे की धार बहुत उथली थी। उसी ओर से वह शब्द आ रहा था। शब्द निकट आने लगा। काली-काली छाया बराबर जल में आगे बढ़ रही थी। प्रियवर्मन ने संकेत किया, बाणो की एक प्रबल बाढ़ धनुष से निकली।

गंगा की मध्य धार में तैरती नौकाओं में से चीत्कार सुनाई दिया। पतवार के शब्द पीछे की ओर लौटते सुनाई देने लगे। काश्यप ने प्रिय वर्मन को एक सन्देश भेजा। क्षण भर में फिर सन्नाटा छा गया। काश्यप सोचने लगे कि शत्रु क्या अब इस रात चेष्टा न करेगा? परन्तु इसी समय उन्हें शुक का शब्द फिर सुनाई दिया। काश्यप ने प्रिय-दर्शन के पास सन्देश भेजा—

"शत्रु अधिक तेयारी से आ रहा है, सावधान रहो।"

गगा की धार मे अनगिनत नावें तैरती दिखाई दी। चप्पुएँ चलने के शब्द स्पष्ट दीख पड़ने लगे। सैकड़ों नावें तीर की भांति धँसी चली आ रही थीं। प्रियवर्मन की सेना अन्धाधुन्ध बाण वर्षा रही थी। परन्तु शत्रु वेग से बढ़ा ही आ रहा था। उसकी नावें इस किनारे पर आ

लगीं। कपिल ने तट पर एकत्रित पत्तों और लकड़ियों में आग लगा दी। उसके प्रकाश में सबने देखा—शत्रु के अनगिनत भट इधर तट पर आ रहे हैं, और भी चले आ रहे हैं। प्रियवर्मन् के धानुष्क बाण-वर्षा कर रहे थे। प्रकाश की सहायता से उनके बाणों से विद्ध हो हो कर शत्रु जल में गिर रहे थे। शत्रु की जो सेना थल पर उतरन लगी, पुष्पमित्र की टुकड़ी उस पर टूट पडी। तट पर गहरी मार काट मच गई। इसी समय ही सैकड़ों रणतरी गंगा में इधर उधर फैल गई। उनमें जड़ी लोह-शृंगों से टकरा कर मागधी नावों में छिद्र हो गए। वे डूबने लगी।

शूलों और खड्गों से युद्ध तुमुल हो गया। दोनों ओर के वीर चीत्कार करते हुए युद्ध करने लगे। काप्यक ने देखा—एक सुदृढ नौका पर एक व्यक्ति खडा आदेश दे रहा है। काप्यक ने साहस कर अपनी तरणी उस ओर बढ़ाई। वह तट के समीप ही था। काप्यक ने देखा— वह कवच से सुसज्जित है। बाण और खड्ग की चोट उस पर काम न देगी। काप्यक धीरे से अपनी नाव से जल में कूद पडे, और छिपकली की भांति उछल कर शत्रु की नाव पर जा कवच-धारी के सिर पर गदा का एक भरपूर प्रहार किया, चोट से वह भहरा कर जल में आ गिरा। काप्यक भी गदा फेंक, खड्ग ले जल में कूद पड़े। इसी समय मगध की अनगिनत नावों ने दोनों को घेर लिया। काप्यक उस मूर्छित पुरुष को बाएं हाथ में उठाए दाहिने हाथ मे दोनों ओर खड्ग चला रहे थे। परन्तु उसका कवच सहित भारी बोझा उनमे सम्हल नहीं रहा था। उधर उन पर चारों ओर से प्रहार हो रहे थे। इसी समय एक बर्छा उनकी जंघा में घुस गया। कवचधारी-व्यक्ति उनके हाथ मे छूट गया। उन्हें मर्छा ने घेर लिया। पर मूर्छित होते-होते उन्होंने अपने निकट एक सुपरिचित मुख देखा, वह शुक था। उसका भारी दाव रक्त से भरा था, और वह प्रबल प्रयास से काप्यक और कवचधारी को तट की ओर ला रहा था।

इसी समय दो व्यक्तियों ने पानी से सिर निकाला। दोनों नौकाओं के तल में चिपक रहे थे। सिर निकाल कर उन्होंने अघा कर साँस लिया फिर वे टूटी हुई नौकाओं की आड़ लेते हुए तट तक आए और जल ही जल में करार के सहारे-सहारे पानी के बहाव के विपरीत ऊपर को चलते गए। दोनों के हाथ में नग्न खड्ग थे। अब वे वैशाली के तीर्थ पर आ पहुँचे, यहाँ कोई मनुष्य न था। एक सघन वृक्ष की आड़ में पानी से उचक कर एक पुरुष बैठ कर सुस्ताने लगा। दूसरा घाट से ऊपर आ चारों ओर सावधानी से इधर उधर देखने लगा। इसके बाद उसने एक संकेत किया। संकेत सुनते ही दूसरा पुरुष काले लबादे से अपने भीगे हुए शरीर को और खड्ग को ढांप कर उसके पीछे-पीछे वृक्षों की आड़ देता हुआ वैशाली के गुप्त द्वार की ओर अग्रसर हुआ।

१४४

अभिसार

वैशाली के राजपथ जन-शून्य थे। दो दण्ड रात जा चुकी थी। युद्ध के आतंक ने नगर के उल्लास को मूर्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अन्धकार-रात्रि में भयानक भूत से प्रतीत हो रहे थे। दो मनुष्य-मूर्तियाँ अन्धकार को भेदन करती, हर्म्यों की छाया में वैशाली के गुप्त-द्वार के निकट आ पहुची। एक ने द्वार पर आघात किया। भीतर मे प्रश्न हुआ —'संकेत ?'

मनुष्य-मूर्ति ने मृदुस्वर में कहा—'अभिनय" हल्की चीत्कार करके द्वार खुल गया। दोनों मूर्तियाँ भीतर घुस कर राजपथ छोड़ अंधेरी गलियों में अट्टालिकाओं की परछाई में छिपती छिपती आगे बढ़ने लगीं। प्रत्येक मोड़ पर एक काली छाया आड़ से निकल कर आगे बढ़ती और दोनों मूर्तियाँ निःशब्द उसका अनुसरण करतीं।

सप्तभूमि-प्रासाद के सिंह द्वार पर आकर दोनों मूर्तियाँ रुक गई। संकेत के साथ ही द्वार खुल गया और आगन्तुकों को भीतर ले द्वार फिर उसी प्रकार बन्द हो गया।

प्रासाद में सन्नाटा था। न रंग-बिरंगे प्रकाश, न फव्वारे, न दास-दासियों की–दण्डधरों की भाग दौड़। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतीहार के साथ पीछे पीछे चले गए। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा-एक और काली मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—"इधर से भन्ते"

प्रतीहार वहीं रुक गया। नवीनमूर्ति स्त्री थी। वह सर्वांग काले कपड़े से आच्छादित थी। दोनों आगन्तुक कई प्रांगण, अलिन्द और

कक्षों को पार करते हुए कुछ सीढ़ियाँ उतर, एक छोटे-से द्वार पर पहुंचे जो चाँदी का था। इस पर अतिभव्य जाली का काम हो रहा था। इस जाली में छन-छन कर रंगीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा—एक बहुत विशाल कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियो से परिपूर्ण था। यद्यपि यह उतना बड़ा न था जहाँ नागरिक जनों का सत्कार होता था, परन्तु उत्कर्ष की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नही हो सकती थी। यह सम्पूर्ण भवन श्वेत और काले पत्थरो से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था उसमें बड़े बड़े स्फटिक के अष्टपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हू-बहू प्रतिबिम्ब सहस्रों की सख्या मे दीखता था। विशाल भावपूर्ण चित्र भीतों पर अंकित थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। धरती पर एक महामूल्यवान् रंगीन रत्न-कम्बल बिछा था, जिस पर पैर पड़ते ही हाथ भर धँस जाता था। ठीक बीचो-बीच एक विचित्र आकृति की सोलह पहलू ठोस सोने की चौकी पड़ी थी, जिस पर मोर-पंख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चँदोवा तना हुआ था। तथा पीछे कौशेय के स्वर्ण-खचित पर्दे लटक रहे थे। जिनमे ताजे पुष्पों की कीर्णकाएं बड़ी ही कारीगरी से गूंथ कर लगाई गई थी। निकट ही एक छोटी-सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का एक बड़ा-सा पात्र धरा था।

हठात् सामने का पर्दा हटा, और उसमें से वह रूप-राशि प्रकट हुई, जिसके बिना यह अलिन्द सूना हो रहा था। उसे देखते ही दोनों आगन्तुकों में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हट कर कक्ष से बाहर हो गया। दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा वही खड़ा रह गया। अम्बपाली आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत कार्पास पहिने थी। वह इतनी महीन थी कि उसके आर-पार साफ दीख पड़ता था। उसमें से छन कर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रंग कमर

नक ही था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी, इसलिए उसकी कमर के ऊपर के सब अंग-प्रत्यंग स्पष्ट दीख पड़ते थे।

न जाने विधाता ने उसे किस क्षण में गढ़ा था। कोई चित्रकार न तो उसका चित्र ही अंकित कर सकता था, न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

इस भुवन-मोहिनी की वह छटा आगन्तुक के हृदय को छेद कर पार हो गई। उसके घनश्याम-कुंचित कुन्तल-केश उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कन्धों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुंथा हुआ चन्द्रभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आँखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्बफल जैसे अधर-ओष्ठ और अनारदाने के समान उज्ज्वल दाँत, गौर और गोल चिबुक बिना ही शृंगार के अनराग और आनन्द बखेर रहा था।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी, और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख स्पष्ट देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला-सा बहुमूल्य रंगीन शाल लपेटे हुए थी। उसकी हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अंगूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी, तथा गोरी-गोरी कलाइयों में नीलम की पहुँची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान महीन उज्ज्वल परिधान के नीचे सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्‌भुत घाघरा था। जो उस प्रकाश में शत सहस्र बिजलियों की भांति चमक रहा था। पैरों में छोटी-छोटी लाल रंग की उपानत थी, जो सुनहरी फीते से कसी थी।

उस समय कक्ष में गुलाबी रंग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपाली का इस प्रकार मानो आवरण भेदन कर इस रूप-रंग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत

हुआ। रूप-सौन्दर्य, सौरभ और आनन्द के अतिरेक से वह भाव-विमोहित-सा स्तब्ध निस्पन्द खड़ा रहा।

अम्बपाली आगे बढ़ीं, उनके पीछे सोलह दासियाँ एक ही रूप रंग की, मानो उसी की प्रतिमाएँ हों अर्घ्य पाद्य लिए आई थीं।

अम्बपाली ने आगन्तुक के निकट पहुँच नीचे झुक नतजानु हो, आगन्तुक का अभिवादन किया, उसके चरणों में मस्तक झुकाया। दासियाँ भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महाप्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ा कर अम्बपाली को ऊपर उठाया। अम्बपाली ने कहा—'देव, पीठ पर विराजें। सम्राट् ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका। वे रत्नपीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपाली ने नीचे धरती पर बैठ कर सम्राट् का अर्घ्य पाद्य गन्ध पुष्प आदि से सत्कार किया। फिर इसके बाद उसने अपनी मदभरी आँखें सम्राट् पर डाल कर कहा—"देव, इतना दुःसाहस, इतना असाध्य साधन ?"

"प्रिये, स्थिर न रह सका।"

"मैं जानती थी देव!"

"ओह, तो तुम बिम्बसार के मनोदौर्बल्य से अभिज्ञात हो?"

"मैं प्रतीक्षा कर रही थी।"

"मैंने सोचा, अब नहीं तो फिर कभी नहीं, कौन जाने यह युद्ध का दानव बिम्बसार को भक्षण ही कर ले, मन की मन ही में रह जाय।"

"शान्तं पापम्!"

"किन्तु प्रिये, तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है!"

"देव, कोटि-कोटि प्राणों के मूल्य से अधिक मेरे लिए आपका जीवन धन था। किन्तु शत्रुपुरी में आपका यों आना अच्छा नहीं हुआ।"

"वाह, कैसा आनन्दवर्धक है; प्रिये प्राणसखे, आज ही, इस क्षण बिम्बसार के प्राणों में यौवन दर्शन हुआ है, इस आनन्द के लिए तो कोई भी पुरुष सौ बार प्राण दे सकता है।"

"मैं कृतार्थ हुई देव", इतना कह अम्बपाली ने सुवासित मद्य का पात्र भर कर सम्राट् के आगे किया। सम्राट् ने पात्र ले अम्बपाली का हाथ पकड़ उसे खींच कर बगल में बैठा लिया और कहा—"इसे मधुमय कर दो प्रिये" और उन्होंने वह पात्र अम्बपाली के अछूते होठों से लगा दिया। इसके बाद वे गटागट उसे पी गए।

संकेत पाते ही दासियों ने क्षण में गायन वाद्य का आयोजन जुटा दिया। कक्ष सुवासित मदिरा की सुगन्ध और सुरंग में सुरभित सुरंजित हो संगीत-लहरी में डूब गया, और उस गम्भीर रात्रि में जब वैशाली में युद्ध की महती विभीषिका रक्त की नदी बहा रही थी, मगध के प्रतापी सम्राट् सुरा सौन्दर्य के दाव पर शत्रुपुरी में अपने प्राण और अपने साम्राज्य को लगा रहे थे।

१४५

प्राणाकर्षण

उसी गम्भीर रात्रि में अर्ध रात्रि व्यतीत होने पर किसी ने भद्र-नन्दिनी के द्वार पर डंके की चोट की। प्रहरी शंकित भाव से आगन्तुक को देखने लगे। आगन्तुक देवजुष्ट सेट्ठिपुत्र पुण्डरीव था। वह मोहक नागर वेश धारण किए बाड़वाश्व की वल्गु थामें मुस्करा रहा था। उसने सुवर्ण से भरी हुई दो थैलियाँ प्रहरी पर फेंक कर कहा—एक तेरे लिए और दूसरी तेरी स्वामिनी के लिए। आगत का वेश, सौन्दर्य, अश्व और उसकी स्वर्ण राशि देख प्रहरी, प्रतीहार, द्वारी जो वहाँ थे, सभी आ जुटे, और कर्तव्य-विमूढ़ की भाँति एक दूसरे को देखन लगे। सेट्ठिपुत्र ने कहा—"क्या कुछ आपत्ति है भणे"

"केवल यही भन्ते, कि स्वामिनी आजकल किसी नागरिक का स्वागत नहीं करतीं।"

"इसका कारण क्या है मित्र?"

"युद्ध की विभीषिका तो आप देख ही रहे हैं, राजाज्ञा है।"

"परन्तु मैं किसी की चिन्ता नहीं करता, तू मेरी आज्ञा से मुझे अपनी स्वामिनी के निकट ले चल।"

"किन्तु भन्ते....."

"क्या मैंने तुझे शुल्क और उत्कोच दोनों ही नहीं दे दिए हैं?"

"दिए हैं भन्ते, यह आपका सुवर्ण है।"

"तब मेरे पास एक और वस्तु है, देखो" यह कह कर उसने खड्ग कमर से निकाला।

खड्ग देख और उससे अधिक नागरिक की दृढ़ मुद्रा देख कर प्रहरी, प्रतीहार भय से थर-थर काँपने लगे। उनके प्रधान ने कहा—"भन्ते, हमारा अपराध नहीं है, हम स्वामिनी के अधीन हैं।"

"मैं तेरी स्वामिनी का स्वामी हूँ रे!" सेट्ठिपुत्र ने कहा और उन्हें खड्ग की नोक से पीछे धकेलता हुआ ऊपर चढ़ गया।

इस पर एक प्रतीहार ने दौड़ कर मार्ग बताते हुए कहा—"इधर से भन्ते, इधर से"

नग्न खड्ग लिए एक तरुण सुन्दर नागरिक को आते देख दासियाँ भय-शंकित हो पीछे हट गईं।

नागर हँसता हुआ कुण्डनी के सम्मुख जा खड़ा हुआ। कुण्डनी ने किंचित् कोप से कहा—

"आपको राजनियम की भी चिन्ता नही है भन्ते ?"

"नहीं सुन्दरी, मुझे केवल अपनी ही चिन्ता रहती है।"

"किन्तु मैं आपका स्वागत नही कर सकती।"

"ओह प्रिये, मैं इस थोथे शिष्टाचार की परवा नहीं करता, बैठो तुम।"

"किन्तु मैं बैठ नही सकती।"

"तब नृत्य करो।"

"आप भद्र हैं, किन्तु आपका व्यवहार अभद्र है।"

"यह तो प्रिये, मैं तुमसे कह सकता हूं।"

"किस प्रकार ?"

"मैंने तुम्हारी शुल्क दे दी, आज रात तुम मेरी वशवर्तिना हो।"

"मैं जिस भांति चाहूं तुम्हारे विलास का आनन्द प्राप्त कर सकता हूं"

"सो आप खड्ग की नोक चमका कर विलास सान्निध्य प्राप्त करेंगे ?"

नागर हँस पड़ा। उसने खड्ग एक ओर फेंक कर कहा—

"ऐसी बात है तो यह लो प्रिये, परन्तु मेरा विचार था कि खड्ग से तुम आतंकित होने वाली नहीं हो।"

कुण्डनी समझ गई कि आगन्तुक कोई असाधारण पुरुष है। उसने

कहा—"भन्ते, यदि आप बलात्कार ही किया चाहते हैं तो आपकी इच्छा।"

"बलात्कार क्यों प्रिये, जितना अधिकार है उतना ही बस"

"तो भद्र, क्या आप पान करेंगे?"

"मैं सब कुछ करूंगा प्रिये। आज की रात्रि महाकाल-रात्रि है। तुम्हारी जैसी विलासिनी के लिए एकाकी रहने योग्य नहीं। फिर आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं तुम्हारे सान्निध्य में और भी प्रसन्न हुआ चाहता हूँ।"

कुण्डनी विमूढ की भांति आगन्तुक का मुंह ताकने लगी। फिर उसने मन का भाव छिपा कर हंस कर कहा—"आप तो अद्भुत व्यक्ति प्रतीत होते हैं।"

"क्या सचमुच?"

"नहीं तो क्या झूठ!" उसने दासी को पान-पात्र लाने का संकेत किया। फिर नागर से कहा—"तो आप बैठिए भन्ते!"

सेट्ठिपुत्र सोपधान आराम से बैठ गया। उसने हाथ खींच कर कुण्डनी को निकट बैठाते हुए कहा—

"तुम तो भुवन-मोहिनी हो सुन्दरी!"

"ऐसा?" कुण्डनी ने व्यंग से हंस दिया और पानपात्र बढ़ाया।

"इसे उच्छिष्ट कर दो प्रिये?"

कुण्डनी ने शंकित नेत्रों से नागर को देखा फिर कुछ रूखे स्वर में कहा—"नहीं, भन्ते ऐसा मेरा नियम नहीं है।"

"ओह, विलास में नियम अनियम कैसा प्रिये, जिसमें मुझे आनन्द लाभ हो वही करो प्रिये?"

"तो आप आज्ञा देते हैं?"

"नहीं प्रिये, विनती करता हूँ।"

नागर खिल-खिलाकर हँस पड़ा। उस हास्य से अप्रतिहत हो

छद्मवेशिनी कुण्डनी आगन्तुक को ताकने लगी। वह सोच रही थी--'क्या यह मूढ़ अकारण ही आज मरा चाहता है।'

नागर ने तभी मद्यपात्र कुण्डनी के होठों से लगा दिया। कुण्डनी गटागट सम्पूर्ण मद्य पीकर हँसने लगी। नागर ने कहा--"मेरे लिए एक बूंद भी नही छोड़ा प्रिये!"

"उस पात्र में यथेष्ट है, तुम पिओ भद्र!"

"उस पात्र में क्यों? तुम्हारे अधरामृत स्पर्श से सुवासित सम्पन्न इसी पात्र में पीऊँगा, दो मुझे।"

"यह पात्र तो नहीं मिलेगा।"

"वाह, यह भी कोई बात है?"

"यही बात है भन्ते, कुण्डनी ने वह पात्र एक ओर करते हुए कहा।"

"समझ गया, तुम मुझ पर सदय नहीं हो प्रिये, मुझे आल्हादित किया नही चाहतीं।"

"उसके लिए तो मै बाध्य हूँ भन्ते!"

"तो दो हला, वही पात्र भरकर, उसे फिर से उच्छिष्ट करके, उसे अपने अधरामृत की सम्पदा से सम्पन्न करके।"

"भन्ते, आप समझते नहीं हैं"

"अर्थात् मैं मूढ़ हूँ"

"यदि मैं यही कहूँ?"

"तो साथ ही वह पात्र भी भर कर दो तो क्षमा कर दूंगा"

"नहीं दूंगी तब?"

"तो क्षमा नहीं करूंगा"

"क्या करोगे भन्ते?"

"अधरामृत पान करूंगा।"

कुण्डनी सिर से पैर तक काँप गई। पर संयत होकर बोली—"बहुत हुआ भन्ते, शिष्टनागर की भांति आचार कीजिए।"

"तो वह पात्र दो प्रिये!"

"कुण्डनी ने क्रुद्ध हो पात्र भर दिया।"

"अब इसे उच्छिष्ट भी करो!"

"कुण्डनी ने होठों से छू दिया और धड़कते हृदय से परिणाम देखने लगी। नागर ने हँसते हँसते पात्र गटक लिया। खाली पात्र कुण्डनी को देते हुए कहा—"बहुत उत्तम सुवासित मद्य है और दो प्रिये!"

कुण्डनी का मुंह भय से सफेद हो गया। पृथ्वी पर ऐसा कौन जन है जो उस विष-कन्या के होठों से छुए मद्य को पीकर जीवित रह सके। परन्तु इस पुरुष पर तो कोई प्रभाव ही नहीं हुआ। उसने काँपते हाथों से पात्र भरा, एक घूंट पिया और नागर की ओर बढ़ा दिया; नागर ने हँसते-हँसते पीकर खाली पात्र फिर कुण्डनी की ओर बढ़ा दिया। और एक हाथ उसके कण्ठ में डाल दिया। उसे हटा कर कुण्डनी भयभीत हो खड़ी हो गई। वह सोच रही थी—'कौन है यह मृत्युञ्जय!"

नागर ने कहा—"रुष्ट क्यों हो गई प्रिये!"

"तुम कौन हो भन्ते?"

"तुम्हारा तृषित प्रेमी हूँ प्रिये, निकट आओ और मुझे तृप्त हो कर आज मद्य पिलाओ। उसने अपने हाथों से पात्र भर कर कुण्डनी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"सम्पन्न करो प्रिये!" कुण्डनी आधा मद्य पी गई और विह्वल भाव से आगन्तुक की गोद में लुढ़क गई। उसकी सुप्त लुप्त वासना जाग्रत हो गई। उसने देखा इस मृत्युञ्जय पुरुष पर उसका प्रभाव नहीं है। न जाने कहाँ से आज की कालरात्रि में उसके विदग्ध भाग्य और असाधारण जीवन को, जिसके विलास में केवल मृत्यु विभीषिका ही रहती रही है, यह गूढ़ पुरुष आ पहुँचा है। उसने अन्धाधुन्ध मद्य ढाल ढाल कर स्वयं पीनी और उस पुरुष को पिलानी प्रारम्भ की।

अन्ततः अवश हो आत्म-समर्पण के भाव से वह अर्धनिमीलित नेत्रों से उससे एक चुम्बन की प्रार्थना-सी करती हुई उसकी गोद में लुढ़क गई। यह दृष्टि उन दृष्टियों से भिन्न थी, जो अब तक मृत्यु चुम्बन देते समय वह अपने आखेटों पर डालती थी। मदिरा के आवेश में उसके उत्फुल्ल अधर फड़क रहे थे। उन्हीं फड़कते और जलते हुए अधरों पर मदिरा से उन्मत्त नागर ने अपने असंयत होठ रख दिए। परन्तु यह चुम्बन न था प्राणाकर्षण था। एक विचित्र प्रभाव से अवश होकर कुण्डनी के होठ आप ही आप खुल गये, उसके श्वास का वेग बढ़ता ही गया। शरीर और अंग निढाल हो गए, देखते ही देखते कुण्डनी के चेहरे पर से जीवन के चिह्न लोप होने लगे। शरीर में रक्त का कोई लक्षण न रह गया और वह कुछ ही क्षणों में मृत होकर उस मृत्युञ्जय पुरुष-सत्त्व की गोद में ढुलक गई।

तब उसके मृत शरीर को भूमि पर एक ओर फेंक कर तृप्त होकर भोजन किए हुए पुरुष के समान आनन्द और स्फूर्ति से व्याप्त वह पुरुष निश्चित चरण रखता हुआ उस तथाकथित नागपत्नी—वेश्या भद्रनन्दिनी के आवास से बाहर आ, एक मुट्ठी सुवर्ण प्रहरियों दौवारिकों तथा दण्डधरों के ऊपर फेंक बाड़वाश्व पर चढ़ अन्धकार में लोप हो गया।

१४६

सांग्रामिक

मागध सैन्य अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो उस रात के अभियान से लौटी। सम्राट् और सेनापति आर्य उदायि उसके साथ नहीं थे। यह अत्यन्त भयानक बात थी। वे दोनों शत्रु के बन्दी हुए या युद्ध में मारे गए इसका कोई सूत्र नही प्राप्त हुआ। केवल एक सैनिक ने सेनापति उदायि को बन्दी होते देखा था। परन्तु सम्राट् के सम्बन्ध में कोई भी कुछ नही बता सका। सोमप्रभ ने सुना तो हतबुद्धि हो गए। उन्होंने जल्दी-जल्दी एक लेख लिखकर आर्य भद्रिक के पास दक्षिण युद्ध-केन्द्र पर भेज दिया, और स्वयं दौड़े हुए तटस्थ केन्द्र पर आ पहुँचे। सेना की दुर्दशा देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गए। सब विवरण सुनकर उन्होंने तत्काल ही अपना कर्त्तव्य स्थिर किया। प्रथम उन्होंने यह कठोर आज्ञा प्रचारित की, कि सम्राट् का लोप होने का समाचार स्कन्धावार में न फैलने पाए। सेनापति उदायि के बन्दी होने का समाचार भी गुप्त रखा गया। आहतों की व्यवस्था और सेना का पुनर्संगठन करने की जल्दी-जल्दी जो व्यवस्था हो सकती थी, उन्होंने फुर्ती से कर डाली। इसी समय आर्य भद्रिक भी आ पहुँचे। सोम ने कहा—"आर्य सेनापति, बड़े ही दुर्भाग्य की बात है"

"क्या सम्राट् हत हुए ?"

"ऐसी कोई सूचना नहीं है"

"और उदायि ?"

"उन्हें बन्दी होते देखा गया है।"

"सम्राट् के साथ कौन था ?"

"आर्य गोपाल थे, वे भी नहीं लौटे है।"

"उन्हें जीवित या मृत किसी ने देखा है?"

"नहीं।"

"यह संदिग्ध है भद्र, सम्राट् के अन्वेषण के लिए अभी चर भेजने होंगे।"

"वह सब सम्भव व्यवस्था मैंने कर दी है, पर आपके संदेह से मैं सहमत हूं भन्ते सेनापति, कैसे सम्राट् और आर्य गोपाल दोनों ही एक बार ही लोप हो गए।"

"किसी भी सैनिक ने उन्हें देखा।?"

"किसी ने भी नही।"

"तो उन्होंने युद्ध में भाग नही लिया?"

इतना कहकर आर्य भद्रिक गहन चिन्ता में पड़ गये। सोमप्रभ महासेनापति का मुंह ताकने लगे। उन्होंने कहा--"क्या कोई गूढ़ रहस्य है भन्ते सेनापति?"

"यदि है तो अतिभयानक भद्र, नौसेना की कैसी हालत है?"

"वह अब युद्ध करने के योग्य नही रही, नौका सब छिन्न-भिन्न हो चुकीं। नौकाओं पर किसी योजना से प्रहार हुआ है।"

"किन्तु सोमभद्र, तुमने कैसे इस अभियान की सहमति दी?"

"सम्राट् ने नहीं माना भन्ते सेनापति, उन्होंने बहुत हठ की।"

"तो उन्हें जाने क्यों दिया?"

"इसके लिए वे अड़ गए। उन्होंने इस अभियान की योजना स्वयं बनाई थी। नेतृत्व भी स्वयं किया था। आर्य उदायि को सहमत होना पड़ा और मुझे भी स्वीकृति देनी पड़ी। परन्तु ऐसी दुर्घटना की तो सम्भावना न थी।"

"यदि सम्राट हत हुए?"

"तो भन्ते सेनापति अतिदुर्भाग्य का विषय होगा।"

"भद्र सोम, यदि सम्राट् हत हुए तो जम्बूद्वीप की अपार क्षति होगी। पूर्व का साम्राज्य भंग हो जायगा।"

"यदि बन्दी हुए?"

"पर किसी ने देखा तो नहीं।"

"इसी में एक गूढ़ संकेत मुझे मिलता है भद्र, हमें गुरुतर कार्य करना होगा।"

"मैं प्राणान्त उद्योग करूँगा भन्ते सेनापति!"

"आश्वस्त हुआ भद्र, अब हमें मागध सैन्य दो स्वतन्त्र भागों में विभक्त करनी होगी, एक भाग तो तुम लेकर वैशाली को निर्दयता-पूर्वक रौंद डालो। दूसरे भाग को मैं लेकर लिच्छवि महासैन्य पर घोर संकट उपस्थित करूँगा। उसका वैशाली से सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा। मैं एक भी लिच्छवि भट को जीवित नहीं लौटने दूंगा।"

"और मैं एक भी हर्म्य, एक भी प्रासाद, एक भी अट्टालिका वैशाली में खडी नहीं रहने दूँगा, मैं सबको भस्म का ढेर बनाकर वैशाली को खेत बनाकर उस पर गधों से हल जुतवाऊँगा।"

"तभी सत्य प्रतिकार होगा भद्र, सम्राट् मृत हों या बन्दी। जम्बू-द्वीप का पूर्वी द्वार भंग नहीं हो सकता, जब तक यह ब्राह्मण खड्गहस्त जीवित है। मगध-साम्राज्य अजेय अखण्ड है।"

महासेनापति भद्रिक का अंग-प्रत्यंग क्रोध से काँप उठा, उनके नेत्रों से एक तीव्र ज्वाला-सी निकलने लगी। उन्होंने उसी समय सब सेनापति नायक उपनायकों को बुलाकर एक अत्यन्त गोपनीय युद्ध-मन्त्रणा की।

सम्राट् का लोप होना यत्न से गुप्त रखा गया। सेनापति उदायि आहत हुए हैं, यह प्रचारित किय गया।

१४७

द्विशासन

पाटलिग्रामाल के पूर्वीय भाग पर मगध सैन्य का अधिकार था; और पश्चिमीय भाग पर लिच्छवियों का। दोनों ओर से रह रह कर बाण-वर्षा हो रही थी। ग्राम के बहुत-से घर आग से जल और ढह गए थे। ग्रामवासी बहुत-से भाग गए थे। जो रह गए थे—वे अपने-अपने घरों के खण्डहरों में छिपे थे। गली-कूचों में मृत नागरिकों और सैनिकों की लोथें सड़ रही थीं। कूड़ा-कर्कट और सड़ी अधजली लोथों को सूअर, गृद्ध और दूसरे वन्य पशुओं ने खोद-खोद कर बखेर दिया था। दुर्गन्ध से नाक नहीं दी जाती थी। ग्राम में कोई व्यक्ति नही दीख रहा था।

अभी एक आक्रमण होकर चुका था। मागधों न वज्जी सैन्य को मार भगाया था। एक मागध सेना-नायक ने अश्वारूढ़ हो, एक सैनिक टुकड़ी के साथ ग्राम के मध्य भाग में खडे हो, ऊँचे स्वर से ढोल पीट-पीट कर घोषणा की—"इस पाटलि ग्राम पर मगध सम्राट् का अधिकार है, जो कोई लिच्छवि गण को बलि देगा उसे सूली होगी। जो कोई लिच्छवि जन को आश्रय देगा उसका शिरश्छेद होगा। ग्रामवासियो! अपने-अपने घरों से निकल आओ। तुम्हें मगध-सम्राट अभय-दान करते हैं।" घोषणा सुनकर एक दो कुत्ते भूंस उठे। परन्तु कोई नर-नारी नहीं आए। नायक ने फिर ढोल पीट कर घोषणा की। तब एक वृद्ध ने फूटे हुए खण्डहर की ओर से सिर निकाल कर देखा। वह काँपता काँपता बाहर आया। आकर हाथ जोड़ कर बोला—"भन्ते सेनापति मैं मागध प्रतिजन हूं, मुझे अभय दो, मैं सम्राट् को बलि दूंगा।"

"तो भणे, तुझे अभय, किन्तु ग्राम में और कौन है ?"

"जीवित मनुष्य कोई नहीं।"

"सब मृतक हैं ?"

"सब"

"शेष कहाँ गए ?"

"भाग गए।"

"तुम क्यों नहीं भागे ?"

"भाग नहीं सकता, भन्ते सेनापति, वृद्ध हूँ, जर्जर हूँ, शक्तिहीन हूँ।"

"तो भणे, तू मागध प्रतिजन है न ?"

"हाँ सेनापति !"

"तो तुझे अभय, मगध-सम्राट् को बलि देगा ?"

"दूँगा सेनापति !"

इसी समय बाणों की वर्षा करती हुई लिच्छवि सैन्य की एक टुकड़ी ने इस मागध टुकड़ी पर आक्रमण किया। उनका ढोल छीन लिया। कुछ सैनिक मारे गए। कुछ भाग गए। बूढ़ा फिर भागकर घर के छप्पर के नीचे छिप गया।

लिच्छवि नायक ने ढोल पीट कर घोषणा की—"इस पाटलिग्राम पर लिच्छविगण का अधिकार है, जो कोई मागध जन को आश्रय देगा उसे सूली होगी। पाटलि-ग्रामवासियों! सुनो, बाहर आओ। प्रतिज्ञा करो—कि तुम वज्जीगण को बलि दोगे, तुम्हें अभय।"

वृद्ध ने फिर सिर निकाल कर देखा। काँपते-काँपते बाहर आया। आकर उसने सेनापति नायक को अभिवादन किया।

नायक ने पूछा—"ग्राम के और जन कहाँ हैं ?"

"जीवित सब भाग गए। मृत यत्र तत्र पड़े हैं। कुछ को वन्य पशु खा गए।"

"तुम नहीं भागे ?"

"भाग नहीं सकता भन्ते, अशक्त हूँ, रोगी हूँ।"

"क्या ग्राम में अन्य पुरुष नही हैं?"

"जीवित नहीं भन्ते!"

"तो सुनो, तुम अब से वज्जीगण शासन के अधीन हो।"

"अच्छा भन्ते!"

"वज्जीगण को बलि देना होगा!"

"दूंगा भन्ते!"

"भागधों को आश्रय देने से सूली होगी!"

"समझ गया भन्ते!"

"तो तुझे अभय"

नायक अपनी सेना लेकर सड़ती लोथों के बीच में होकर चला गया। वृद्ध फिर घर के खण्डहर में जा छिपा।

१४८

रथ-मुशल-संग्राम

सोम ने साम्ब को बुलाकर कहा—"साम्ब, तू अभी मधुवन जा और महाराज विदूडभ से कह कि चापाल-चैत्य, सप्ताम्र-चैत्य, कपिनैह-चैत्य में प्रच्छिन्न सैन्य को लेकर चारों ओर आग लगाते हुए, सम्पूर्ण दुर्गों और सत्रों को सुरक्षित करते हुए दक्षिण वाम पार्श्व से वैशाली की ओर बढ़े। मार्ग में जो पुरुष, जो घर, जो खेत, जनपद मिले, नष्ट करते जाएं। तथा ज्यों ही इधर दक्षिण पार्श्व से वैशाली कोट पर आक्रमण हो वे सुरक्षित पचास सहस्र मागध भट और पचास सहस्र अपनी कौशल सैन्य लेकर दुर्धर्ष वेग से वैशाली को रौंद डालें। उनसे कहना—कल हम वैशाली की उन्मुक्त अभिषेक पुष्करिणी में एक ही काल में अपने-अपने खड्ग धोएंगे। जा, सूचना देकर सूर्यास्त से पूर्व ही तू आकर, मैं जहाँ जिस दशा में होऊँ, संदेश दे।"

साम्ब गम्भीर-मूर्ति हो चला गया। सोम ने अब अपना प्रच्छिन्न महास्त्र रथ-मुशल उद्घाटित किया। अस्त्र का बारीकी से निरीक्षण किया। उसकी यन्त्रकला को यथावस्थित किया। तदन्तर सामने हाथी पक्ष-स्थान में, अश्व उरस्य में, और रथ कक्ष में तथा पादाति प्रतिग्रह में करके 'अतिप्रतिहत' व्यूह की रचना की। इस व्यूह में बारह सहस्र हाथी, ६० सहस्र अश्वारोही, आठ सहस्र रथी और ढाई लाख पादातियों ने योग दिया। रथ-मुशल महास्त्र को व्यूह के उरस्य में स्थापित-गोपित कर सोमप्रभ ने सम्पूर्ण सेना की परेड की, और जो जहाँ है, वहीं चार महूर्त विश्राम करने का आदेश दिया।

सके बाद पाटलिग्राम तीर्थ पर आकर उन्होंने तीर्थ का निरीक्षण

किया। पदिकों, सेनापतियों और नायकों को पृथक्-पृथक् आदेश दिए। संकेत-शब्दों, पताका-संकेतों द्वारा व्यूह में अवस्थित सेना को अवसर पड़ने पर विभक्त करने, बिखरी सेना को एकत्र करने, चलती सेना को रोकने, खड़ी सेना को चलाने, आक्रमण करती सेना को लौटाने में, यथावसर आक्रमण करने में, जिन-जिन संकेत प्रकारों की आवश्यकता समझी, सबको सुव्याख्यात किया। इसके अनन्तर कुछ आवश्यक लेख लिख कर उन्होंने आर्य भद्रिक के पास भेज दिए और फिर विश्राम किया।

तीन दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर सोम ने वैशाली अभियान किया। संकेत पाकर कौशलराज विदर्भ ने दूसरी ओर से चन्द्राकार सैन्य बखेर कर वैशाली को घेर लिया। प्रभात होने से प्रथम ही घनघोर युद्ध होने लगा। इस मोर्चे पर काप्यक गान्धार और उनके भटों ने विकट पराक्रम प्रकट किया। परन्तु सोमप्रभ लिच्छवि और गान्धारों का व्यूह तोड़ गंगा पार कर आए। रथ-मुशल महास्त्र ने अपना संहार कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह एक लोह-निर्मित विराट्काय बिना योद्धा और बिना सारथी का रथ था। इस पर किसी भी शस्त्र का कोई प्रभाव नहीं होता था। यह रथ लिच्छवि-सैन्य में घुस कर रथ हाथी-अश्व-पादाति घर-हर्म्य सभी का महाविध्वंस करने लगा। जो कोई इस लोह-यन्त्र की चपेट में आ जाता, उसी की चटनी हो जाती। भारतीय युद्ध में सर्वप्रथम इस महास्त्र का प्रयोग किया गया था, जिसका निर्माण आचार्य काश्यप ने अपनी अद्भुत प्रतिभा से किया था। इसका रहस्य अतिगोपनीय था। मरे हुए हाथियों, घोड़ों और सैनिकों के अम्बार लग गए। ढहे हुए घरों की धूल गर्द से आकाश पट गया। यह लोह-यन्त्र केले के पत्ते की भांति घरों, प्राचीरों की भित्तियों को चीरता हुआ पार निकल जाता था। इस महाविध्वंस विनाशक महास्त्र के भय से प्रकम्पित विमूढ़ लिच्छवि भट सेनापति सब कोई निरुपाय रह गए। शत

सहस्र भट भी मिल कर इस निर्द्वन्द महास्त्र की गति नहीं रोक सके, इस लोहास्त्र का सम्बल प्राप्त कर अजेय मागधी सेना विशाल लिच्छवि सैन्य को चीरती हुई चलती चली गई। अब उसकी मार वैशाली की प्राचीरों पर होने लगी। सहस्रों भट धनुष पर अग्नि-बाण चढ़ा-चढ़ा कर नगर पर फेंकने लगे। महास्त्र ने झील तालाब और नदी के बाँधों को तोड़ डाला, सारे ही नगर में जलप्रलय मच गई। आग और जल के बीच वैशाली महाजनपद ध्वंस होने लगा। लिच्छवि भट प्राणों का मोह छोड़ युद्ध करते-करते कट-कट कर मरने लगे। सोमप्रभ निर्दय, निर्भय दैत्य की भांति महानरसंहार करता हुआ आगे बढने लगा। मागध सैन्य ने अब बहुत मात्रा में योगाग्नि और योगधूम का प्रयोग किया। औपनिषद् पराघात प्रयोग भी होने लगे। मदनयोग, दूषीविष, अन्धादृक के आक्षेप से सहस्रों हाथी, घोड़े और सैनिक उन्मत्त, बधिर और अन्धे हो गए।

चार दण्ड दिन रहते सोमप्रभ वैशाली के कोट-द्वार पर जा टकराए। इसी समय कौशलराज विदूढव भी अपनी सुरक्षित चमू लेकर वैशाली की परधि पार कर वैशाली के अन्तःकोट पर आ धमके। उनके सहस्रों भट सीढ़ियाँ और कमन्द लगा कर प्राचीरों, दुर्गों और कंगूरों पर चढ गए।

वैशाली का पतन सन्निकट देख, महासेनापति सुमन ने स्त्रियों, बालकों तथा राजपुत्रों को सुरक्षित ठौर पर भेज दिया। इस समय सम्पूर्ण वैशाली धांय-धांय जल रहा था, और उसके कोट-द्वार के विशाल फाटकों पर निरन्तर प्रहार हो रहे थे। सेनापति सोमप्रभ हाथ में ऊँचा खड्ग लिए मागधी जनों के उत्साह की वृद्धि कर रहे थे। शत्रु मित्र सभी को यह दीख गया था कि वैशाली का किसी भी क्षण पतन सुनिश्चित है।

१४९

कैंकर्य

इसी समय रक्तप्लुत खड्ग हाथ में लिए हुए गोपाल भट्ट ने सोमप्रभ के निकट आकर कहा—

"भन्ते सेनापति, सम्राट् का एक आदेश है।"

सम्राट् का समाचार सुनकर सोमप्रभ वेग से चिल्ल उठे—'सम्राट् की जय'। उन्होंने कूद कर गोपाल भट्ट के निकट आकर कहा—

"सम्राट् जीवित हैं?"

"हैं भन्ते सेनापति!"

"कहाँ?"

"देवी अम्बपाली के आवास में।"

सोमप्रभ के हृदय की जैसे गति रुक गई। उसने थक निगल कर सूखते कंठ से कहा—

"क्या कहा? कहाँ?"

"देवी अम्बपाली के आवास में, भन्ते सेनापति!"

"क्या सम्राट् बन्दी नहीं हुए?"

"नहीं भन्ते, वे स्वेच्छा से देवी अम्बपाली के आवास में गए हैं।"

"आप कहते हैं आर्य, स्वेच्छा से?"

"हाँ भन्ते सेनापति!"

सोम ने दाँतों से होठ काटे, फिर स्थिर मुद्रा से कहा—

"सम्राट् का क्या संदेश है भन्ते?"

"सम्राट् का आदेश है, कि देवी अम्बपाली के आवास की रक्षा की जाय। आवास पर लिच्छवि सैन्य ने आक्रमण किया है।"

"किस लिए आर्य?

"सम्राट् को बन्दी करने के लिए।"

सोमप्रभ ने अवज्ञा से मुस्करा कर कहा--"इसी से भन्ते!"

फिर उन्होंने उधर से मुंह फेर लिया। बगल से तूर्य लेकर एक ऊँचे स्थल पर चढ़ कर वेग से तूर्य फूंका। तूर्य की वह ध्वनि दूर दूर तक फैल गई। इसके बाद उन्होंने अपना श्वेत उष्णीय खड्ग की नोक से लगा कर हवा में ऊँचा किया। इसके बाद फिर तीन बार तूर्य फूंका। इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। मागध सैन्य में जो जहाँ था वहीं स्तब्ध् खड़ा रह गया। शत्रु मित्र आश्चर्य-चकित रह गए। युद्ध बन्द हो गया। सोमप्रभ ने तत्काल सैन्य को पीछे लौटने का आदेश दिया। कराहते हुए घायलों और जलते हुए हर्म्यों के बीच मागध सैन्य चुपचाप लौट चली। सब से आगे अश्व पर सवार मागध सेनापति सोमप्रभ खड्ग की नोक पर अपने उष्णीष की धवल ध्वजा फहराता अवनत वदन जा रहा था।

मागध स्कन्धावार पर श्वेत पताका चढ़ा दी गई। वैशाली को साँस लेने का अवसर मिला।

१५०

महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र

जिस समय मागध सेनापति ने दुर्धर्ष वेग से वैशाली पर रथ-मुशल अभियान किया था, उसी समय दक्षिण मोर्चे पर लिच्छवि सेनापति ने मागध महासेनाधिपति आर्य भद्रिक को तीन ओर से घेर लिया था। लिच्छवियों के पास भी एक अद्‌भुत महास्त्र था—इसका नाम महाशिला कण्टक था। इस यन्त्र में कंकड़-पत्थर, घास-फूंस, काठ-कूड़ा, जो कुछ तुच्छ से तुच्छ साधन मिले उन्हीं को वह बडे वेग से शत्रु पर फेंकता था और वह फेंका हुआ पदार्थ महाशिला की भांति शत्रु पर आघात करता था।

मागध-महासेनापति आर्य भद्रिक ने अपने व्यूह में हाथियों को, पक्ष में और अश्वारोहियों को कक्ष में रख उरस्य मे रथियों की स्थापना करके कठिन पारिपतन्तक व्यूह की रचना की थी।

ज्योंही पूर्वीय सीमा-भूमि में सोमप्रभ ने युद्ध छेड़ा त्योंही लिच्छवि सेनापति सिंह ने महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र को लेकर मकर-व्यूह रच मागध सैन्य पर आक्रमण किया। महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र की प्रलयंकर मार के सम्मुख मागध सैन्य का शीघ्र ही व्यूह भंग हो गया। महासेनापति सुरक्षित सैन्य को ले व्यूह के पक्ष में स्थित सैन्य संचालन कर रहे थे। विनाशयन्त्र से उनके पक्षस्थ हाथी जब पटापट मरने लगे, और शेष विकल हो अपनी ही सैन्य को रौंदते हुए पीछे भाग चले, तब आर्य भद्रिक के लिए सैन्य को व्यवस्था में रखना दुस्सह हो गया। अन्ततः उन्होंने धनुर्धर रथियों को चौमुखा युद्ध करने का आदेश दिया,

और स्वयं रक्षित सैन्य को ले पचास धनुष अन्तर पर पीछे हट भागी हुई अव्यवस्थित सेना का पुनर्संगठन करने लगे। साथ ही आसन्न संकट की सम्भावना से उन्होंने सहायक सैन्य भेजने के लिए सोमप्रभ को संदेश भेज दिया। परन्तु लिच्छवि सेनापति सिंह ने चारों ओर से मागध सैन्य पर ऐसा अवरोध डाला, कि मध्याह्न होते-होते आर्य भद्रिक का अपने स्कन्धावार और प्रधान सैन्य से सम्पूर्णरीत्या सम्बन्ध-विच्छिन्न हो गया, और वे चारो ओर से लिच्छवि-कोल और कामियो की सेना से घिर गए।

अब उन्होंने आक्रमण को रोकने तथा अपनी व्यवस्था बनाए रखने के लिए—और हटना ठीक समझा। परन्तु इसका प्रभाव उल्टा पड़ा। मागध-सैन्य हतोत्साह हो गई। इसी समय सिंह प्रबल वेग से अपने और गान्धारों के चुने हुए सम्मिलित चालीस सहस्र कवचधारी अश्वारोही ले, तथा अगल-बगल रथियों को साथ लिए सुई की भांति मागध सैन्य को चीरते हुए उसके बीच में घुस गए और सेना का सारा संगठन नष्ट कर फिर पक्ष भाग में आ अवस्थित हुए।

इस समय सूर्य अपराह्न की पीली तिरछी किरणें उन पर फेंक रहा था, उस गिरते हुए सूर्य की पीली धूप इस महान् सेनानायक के चांदी के समान चमकते हुए श्मश्रुओं में से गहरी चिन्ता और भीति की रेखाएं व्यक्त कर रही थी।

सेनापति को क्षण-क्षण सोमप्रभ से सहायता पाने की आशा थी। सेनापति के निकट ही सोम के स्थापित—धान्वन, वन, पार्वत दुर्गों में कोशलपति के पचास सहस्र भट छिपे हुए थे। परन्तु उनमें से एक भी आर्य भद्रिक की सहायतार्थ नहीं आया। जब एक पहर दिन शेष रह गया, तो आर्य भद्रिक सर्वथा निराश हो गए। इसी समय उन्हें सेनापति सोमप्रभ के युद्ध बन्द कर देने का समाचार मिला। आर्य भद्रिक

मर्मान्तिक वेदना से तड़प उठे. और वे पाँच सौ धनुष पीछे हट कर खण्ड-युद्ध करनें लगे।

सेनापति सिंह ने समझा—अब जय निश्चित है। वे अपने नायकों को निरन्तर अन्त तक युद्ध जारी रखने का आदेश दे स्कन्धावार को लौट आए। अभी दो दण्ड दिन शेष था

१५१

छत्र-भङ्ग

सम्राट् बिम्बसार अलस भाव से शैया पर पड़े थे। उनके शरीर पर एक कौशेय और हल्का उत्तरीय था। उनके केशगुच्छ कन्धों पर फैले थे। अधिक आसव पीने तथा रात्रि-जागरण के कारण उनके बड़े-बड़े नेत्र गुलाबी आभा धारण किए, अध-खिले नूतन कमल की शोभा धारण कर रहे थे। द्वार पर बहुत से मनुष्यों का कोलाहल हो रहा था. परन्तु सम्राट् को उसकी चिन्ता न थी, वे सोच रहे थे देवी अम्बपाली का देव-दुर्लभ हेसान्निध्य सुख। जिसके सम्मुख राज-वैभव, साम्राज्य और अपने जीवन को भी वे भूल गए थे।

परन्तु द्वार पर कोलाहल के साथ शस्त्रों की झनझनाहट तथा अश्वों और हाथियों की चीत्कार भी अधिकाधिक बढती गई। सुरा स्वप्न की कल्पना में यह कटु कोलाहल सम्राट् को विघ्न रूप प्रतीत हुआ। उन्होंने हाथ बढ़ाकर निकट आसन्दी पर रक्खी स्फटिक काप्यक की ओर हाथ बढ़ाया, दूसरे हाथ में पन्ने का हरित पात्र ले उसमें समूचा पात्र उड़ेल दिया, परन्तु उसमें एक बूंद भी मद्य नहीं था। पात्र को एक ओर विरक्ति से फेंककर उन्होंने एक बार पूरी आँख उघाड़ कर कक्ष में देखा—वहाँ कोई भी व्यक्ति न था। सम्राट् ने हाथ बढ़ा कर चाँदी के घन्टे पर जोर से आघात किया। परन्तु उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मद-लेखा के स्थान पर स्वयं देवी अम्बपाली दौड़ी चली आ रही हैं। उनके मुंह पर रक्त की एक बूंद भी नहीं है और उनकी आँखें भय से फट रही हैं, तथा वस्त्र अस्त-व्यस्त है।

"हुआ क्या, देवी अम्बपाली ?" सम्राट् ने संयत होने की चेष्टा करते हुए पूछा।

"आवास पर आक्रमण हो रहा है, देव !"

"किस लिए ?"

"आपको पकड़ने के लिए ।"

"क्या मैंने लिच्छवि सेनापति, गणपति और राजप्रमुख जनों को बन्दी करने की आज्ञा नहीं दी थी ?"

"दी थी देव !"

"तो वे बन्दी हुए ?"

"नहीं देव, वे आपको बन्दी किया चाहते है ।"

"हुँ, कह कर सम्राट् बिम्बसार उठ बैठे। उनका गौर शरीर एक बार कम्पित हुआ। होठ सम्पुटित हुए। उन्होंने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से अम्बपाली की ओर देख कर हँसते हुए कहा—"फिर इतना अधैर्य क्यों, प्रिये ! जब तक यह मागध सम्राट् का खड्ग है" उन्होंने अपने निकट रक्खे हुए अपने खड्ग की ओर देख कर कहा।

"देव, मुझे कुछ अप्रिय सन्देश सम्राट् से निवेदन करना है ।"

"अप्रिय संदेश ? युद्धकाल में यह असंभाव्य नही । तुम क्या कहना चाहती हो देवी अम्बपाली ?"

"देव, सेनापति उदायि मारे गए ।"

"उदायि मारे गए ? सम्राट् ने चीत्कार कर कहा ।"

"और आर्य भद्रिक निरुपाय निरवलम्ब हैं, वे घिर गए हैं और किसी भी क्षण आत्म-समपर्ण कर सकते हैं ।"

अरे, तब तो आयुष्मान् सोमप्रभ और मेरे हाथियों ही पर आशा की जा सकती है ।"

"भद्र सोमप्रभ ने युद्ध बन्द कर दिया देव !"

"युद्ध बन्द कर दिया ? किसकी आज्ञा से ?"

"अपनी ही आज्ञा से देव !"—अम्बपाली ने मरते हुए प्राणी के से टुटते स्वर में कहा।

सम्राट् का सम्पूर्ण अंग थर-थर काँपने लगा। मस्तक का सम्पूर्ण रक्त नेत्रों में उतर आया। उन्होंने खूंटी पर लटकता अपना मणि-खचित विकराल खड्ग फुर्ती से उठा लिया और उच्च स्वर से कहा—

"यह मागध सम्राट्श्रेणक बिम्बसार का सागर स्नात पूत खड्ग है। मैं इसी की शपथ खाकर कहता हूँ-कि अभी उस अधम वंचक का शिरश्छेद करूँगा।"उन्होंने वेग से तीन बार विजय घण्ट पर प्रहार किया।

सिंहनाद ने नतमस्तक कक्ष मे प्रवेश किया। सम्राट् ने अकम्पित कण्ठ से कहा—"सिंहनाद, मुझे गुप्त-मार्ग दिखा, मैं अभी मागध स्कन्धावार में जाऊंगा। देवी अम्बपाली, भय न करो, मैं अभी एक मुहूर्त में उस कृतघ्न विद्रोही को मारकर तुम्हारे महालय का उद्धार करता हूँ।"

सिंहनाद ने साहस करके कहा—"किन्तु देव..."

"एक शब्द भी नहीं, भणे, मार्ग दिखा।"

अम्बपाली पीपल के पत्ते की भांति काँपने लगी। उन्होंने अर्थपूर्ण दृष्टि से एक ओर देखा। सिंहनाद ने गुप्त गर्भद्वार का उद्घाटन करके कहा—"इधर से देव!"

सम्राट् उसी उत्तरीय को अंग पर भली भांति लपेट, उसी प्रकार काक-पक्ष को मुकटहीन खुले मस्तक पर हवा में लहराते हुए गर्भ-मार्ग में घुस गए, पीछे-पीछे सिंहनाद ने भी सम्राट् का अनुसरण किया। जाते-जाते उसने देवी अम्बपाली से होठों ही में कहा—

"देवी, आज इस क्षण सम्राट् या सोमप्रभ दोनों में से एक की मृत्यु अनिवार्य है। अब आप ही केवल इसे रोकने में समर्थ हैं। समय रहते साहस कीजिए।" वह गर्भमार्ग में उतर गया।

अपने पीछे पैरों की आहट पाकर सम्राट् ने कहा—"कौन है?"

"सिंहनाद देव!"

"तब ठीक है, तेरे पास शस्त्र है?"

"है, महाराज!"

"इस मार्ग से परिचित है?"

"हाँ महाराज!"

"तब आगे चल।"

"जैसी आज्ञा, देव!"

सिंहनाद चुपचाप आगे-आगे और सम्राट् उसके पीछे चल दिए। कुछ चलने पर सिंहनाद ने कहा—"बस महाराज!"

"अब?"

"गंगा है, मैं पहिले देख लूँ, नाव है या नहीं, हमें उस पार चलना होगा।"

"इस पार भी तो हमारी सेना है।"

"सब लौट गई देव! थोडे हाथी है वे भी लौट रहे हैं।"

सम्राट् ने कसकर होठ दबाए।

सिंहनाद अंधेरे में लोप हो गया। घड़ी भर बाद गढ़े में से उसने सिर निकाल कर कहा—

"इधर महाराज!"

सम्राट् भी चुपचाप गढ़े में कूद पड़े। एक सघन किनारे पर छोटी नाव बँधी थी, दोनों उस पर बैठ गए। सिंहनाद ने नाव खेना प्रारम्भ किया।

मागध स्कन्धावार में बड़ी अव्यवस्था थी। सैनिक स्थान-स्थान पर अनियम और अक्रम से खड़े भीड़ कर रहे थे। आग जल रही थी; घाट पर हाथियों, अश्वों और शकटों की भारी भीड़ भरी थी।

सम्राट् विकराल नग्न खड्ग हाथ में लिए, नंगे बदन, नंगे सिर बढ़े चले गए। पीछे-पीछे सिंहनाद पागल की भांति जा रहा था। क्षण भर में क्या होगा, नहीं कहा जा सकता था।

भीड़-भाड़ और अव्यवस्था में बहुतों ने सम्राट् की ओर देखा भी

नहीं। जिन्होंने देखा उनमें से बहुतों ने उन्हें पहिचाना नहीं। जिसने पहिचाना वह सहमकर पीछे हट गया। सम्राट् भारी-भारी डग भरते सेनापति सोमप्रभ के मण्डप के सम्मुख जा खड़े हुए।

द्वार पर दो शूलधारी पहरी खड़े थे। उनके कवच अस्तंगत सूर्य की पीली धूप में चमक रहे थे। सिहनाद ने धीरे से आकर उनके कान में कुछ कहा। वे सहमते हुए पीछे हट गए। आगे सम्राट् और पीछे सिहनाद ने मण्डप में प्रवेश किया।

मण्डप में नायक, उपनायक, सेनापति सब विषण्ण वदन, मुंह लटकाए खड़े थे। सेनापति सोमप्रभ एकाग्र हो कुछ लेख लिख रहे थे। हठात् सम्राट् को नंगे सिर, नंगे शरीर, विकराल-खड्ग हाथ में लिए आते देख सभी खड़े हो गए। सम्राट् ने कठोर स्वर से पुकारा—

"सोम"

सोम ने देखा। उसने पास पड़ा हुआ खड्ग उठा लिया और वह सीधा तनकर खड़ा हो गया। उसने सम्राट् का अभिवादन नहीं किया।

सम्राट् ने कहा—

"तूने युद्ध बन्द कर दिया?"

"हाँ!"

"किसकी आज्ञा से?"

"अपनी ही आज्ञा से।"

"किस अधिकार से?"

"सेनापति की अधिकार से।"

"मेरी आज्ञा क्यों नहीं ली गई?"

"कुछ आवश्यकता नहीं समझी गई।"

"युद्ध किस कारण बन्द किया गया?"

"इस कारण कि युद्ध का उद्देश्य दूषित था।"

"कौन-सा उद्देश्य?"

"एक स्त्रैण कापुरुष कर्तव्यच्युत सम्राट् ने अपनी पदमर्यादा और दायित्व का उल्लंघन कर एक सार्वजनिक स्त्री को पट्टराजमहिषी बनाने के उद्देश्य से युद्ध छेड़ा था।"

"और तेरा कर्तव्य क्या था रे, भाकुटिक?"

"मैंने तक्षशिला के विश्वविश्रुत विद्या-केन्द्र में राजनीति और रणनीति की शिक्षा पाई है। मेरा यह निश्चित मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए साम्राज्य की सेना का उपयोग होना चाहिए। सम्राट् की अभिलाषा और भोगलिप्सा की पूर्ति के लए नहीं।"

"क्या सम्राट् की मर्यादा तुझे विदित है?"

"यथावत्! और साम्राज्य की निष्ठा भी!"

"वह क्या मुझसे भी अधिक है?"

"निस्सन्देह!"

"तो मैं घोषणा करता हूँ—देवी अम्बपाली को मैं पट्टराज-महिषी के पद पर अभिषिक्त करके राजगृह के राजमहालय में ले जाऊँगा। इसके लिए यदि एक-एक लिच्छवि के रक्त से भी वज्जी-भूमि को आरक्त करना होगा तो मैं करूँगा। वैशाली को भूमिसात् करना होगा तो मैं करूँगा। मैं अविलम्ब युद्ध प्रारम्भ करने की आज्ञा देता हूँ।"

"मैं अमान्य करता हूँ। इस कार्य के लिए रक्त की एक बूँद भी नहीं गिराई जायगी और देवी अम्बपाली मगध के राजमहालय में पट्टराज महिषी के पद पर अभिषिक्त होकर नहीं जा सकती।

"जाय तो?"

"तो, या तो सम्राट् नहीं या मैं नहीं।"

सम्राट् ने हुंकार भरी। और खड्ग ऊँचा किया। सोम ने कहा—"भन्ते! नायक, उपनायक, सेनापति सब सुनें—यह कामुक, स्त्रैण और कर्तव्यच्युत सम्राट् और एक कर्मनिष्ठ साम्राज्य के सेवक के बीच का युद्ध है। सब कोई तटस्थ होकर यह युद्ध देखें।"

सम्राट् ने कहा—"यह एक जारज, अज्ञातकुलशील, कृतघ्न सेवक के अक्षम्य विद्रोह का दण्ड है रे, आ।"

दूसरे ही क्षण दोनों महान् योद्धा हिंसक युद्ध में रत हो गए। खड्ग परस्पर टकरा कर घात प्रतिघात करने लगे। क्षण-क्षण पर दोनों के प्राण-नाश की आशंका होने लगी। दोनों ही घातक प्रहार कर रहे थे, तथा दोनों ही अप्रतिम योद्धा थे। युद्ध का वेग बढ़ता ही गया।

अवसर ताककर सम्राट् ने एक भरपूर हाथ सोमप्रभ के सिर को ताककर चलाया। परन्तु सोम फुर्ती से घूम गए। इससे खड्ग उनके कन्धों को छूता हुआ हवा में घूम गया। इसी क्षण सोम ने महावेग से खड्ग का एक जनेवा हाथ सम्राट् पर मारा। सम्राट् ने उसे उछलकर खंग पर लिया। आघात पड़ते ही खड्ग झन्न से दो टूक होकर भूमि पर जा गिरा, और उस आक्रमण के वेग को न सम्हाल सकने से सम्राट् फिसलकर गिर पड़े। गिरे हुए सम्राट् के वक्ष पर अपना चरण रख सोम-प्रभ ने उनके कण्ठ पर खड्ग रखकर कहा—

"श्रेणिक बिम्बसार, अब इस असिधार से तुम्हारे कण्ठ पर तुम्हारा मृत्युपत्र लिखने का क्षण आ गया। वीर की भांति मृत्यु का वरण करो। तुम भयभीत तो नहीं?"

सम्राट् ने वीर दर्प से कहा—"नहीं"

इसी समय एक चीत्कार सुनाई दी। सोम ने पीछे फिरकर देखा—देवी अम्बपाली धूल और कीचड़ में भरी, अस्तव्यस्त वस्त्र, बिखरे बाल, दोनों हाथ फैलाए चली आ रही थी। उन्होंने वहीं से चिल्लाकर कहा "सोम, प्रियदर्शी सोम, सम्राट् को प्राणदान दो, मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं मगधराज-महालय में नहीं जाऊँगी, न मगध की पट्टराजमहिषी का पदधारण करूँगी।"

सोम ने अपना चरण सम्राट् के वक्ष पर से नहीं हटाया। न उनके कण्ठ से खड्ग। उन्होंने मुंह मोड़कर अम्बपाली को देखा। अम्बपाली

दौड़कर सोमप्रभ के चरणों में लोट गई। उसकी अश्रुधारा से सोम के पैर भीग गए। वह कह रही थी—"उनका प्राण मत लो सोम, मैं उन्हें प्यार करती हूँ। परन्तु मैं कभी भी राजगृह नहीं जाऊँगी। मैं कभी इनका दर्शन नहीं करूँगी। स्मरण भी नही करूँगी। मैं हतभाग्या अपने हृदय को विदीर्ण कर डालूँगी। उनका प्राण छोड़ दो। छोड़ प्रियदर्शन सोम, उन्हें छोड़ दो। वे निरीह, शून्य और प्रेम के देवता हैं। वे महान् सम्राट् हैं। उन्हें प्राण-दान दो। मेरे प्राण ले लो—यदर्शन सोम, ये प्राण तो तुम्हारे ही बचाए हुए हैं, ये तुम्हारे हैं इन्हें ले लो, ले लो।"

अम्बपाली इस प्रकार विलाप करती हुई सोम के चरणों में भूमि पर पड़ी-पड़ी मूर्छित हो गई।

सोम ने सम्राट के कण्ठ से खड्ग हटा लिया। वक्षःस्थल से चरण भी हटा लिया। उन्होंने गम्भीर भाव से आज्ञा दी। सम्राट् को बन्दी कर लो। मैं उन्हें प्राणदान देता हूँ, परन्तु उन्हें युद्धापराधी घोषित करता हूँ। कर्तव्य न पालन करने के अभियोग पर सैनिक न्यायालय में उनका विचार होगा, और देवी अम्बपाली को यत्न से लिच्छवि सेनापति के अधिकार में पहुँचा दो।

इतना कहकर सोमप्रभ मण्डप से बाहर चले आए। उस समय सूर्यास्त हो चुका था, और चारों दिशाओं में अन्धकार फैल गया था।

१५२

आत्म-समर्पण

सिंह दक्षिण-युद्धक्षेत्र की कमान गान्धार काप्यक को सौंपकर उल्काचेल केन्द्र में लौट आए। यहाँ आकर उन्होंने अनेक लेख लिखे, बहुत से आदेश प्रचारित किए। इसके बाद उन्होंने उल्काचेल के उपनायक अभीति को बुलाकर कहा—

"सूर्यास्त में अब केवल एक घड़ी शेष है, काप्यक का कुछ न कुछ सन्देश मिलना चाहिए। मुझे आश्चर्य है विलम्ब क्यों हो रहा है। (कुछ पंक्तियाँ लिखकर) इन्हें प्रियवर्मन् के पास पश्चिमी रणस्थल पर तुरन्त भेज दो मित्र, और तनिक पुष्पमित्र से पूछो कि पाटलि-ग्राम को क्या रसद की नावें भेज दी गई हैं? हाँ, शुक से कहना, थोड़ा शूकर मार्दव और मधुगोलक ले आए, पर मांस गर्म हो, प्रातः बिल्कुल ठण्डा था।"

"और कुछ, सेनापति?"

"वह मानचित्र मुझे दो (तनिक कुछ सोचकर) निश्चय कुछ घटिकाओं ही की बात है। काप्यक अभी-अभी ही कार्य समाप्त कर लेगा। परन्तु आर्य भद्रिक महान् सेनापति हैं। फिर भी अब यहाँ से उनका निस्तार नहीं है"—यह कहकर सेनापति सिंह ने मानचित्र पर उंगली से एक स्थान पर संकेत किया।

"तो सेनापति यहीं पर समाप्ति है?"

"यदि आर्य भद्रिक आत्मसमर्पण कर दें।"

शुक ने आकर मधुगोलक और शूकर मार्दव रख दिया। उसने कहा—'भन्ते, प्रातः चूक हो गई।"

अच्छा अच्छा, चूक रसोईघर ही तक रखा कर शुक, समझा!"

"जी हाँ!"

नायका ने कहा--"पाटलिग्राम को नावें भेजी जा चुकी है, सेनापति!"

"ठीक है मित्र, (एक लेख देकर) ये सब मागधों के लूटे हुए और अपहृत शास्त्रास्त्र हैं न, इन्हें अभी उल्काचेल ही में रहने दो मित्र।"

एक सैनिक ने सूचना दी--"महासेनापति सुमन आए हैं।"

सिंह ने उठ कर उनका स्वागत किया। और कहा--

"इस समय भन्ते सेनापति, आपके आगमन का तो मुझे गुमान भी न था।"

"आयुष्मन्, तेरे उत्तेजक संदेश को पाकर स्थिर न रह सका, बैठ आयुष्मान, किंतु यह क्या चमत्कार हो गया। पराजय जय में परिणत हो गई।"

"ऐसा ही हुआ भन्ते सेनापति, मनुष्य की भांति जातियों के, राष्ट्रों के, राज्यों के भी भाग्य होते हैं।"

दोनों बैठ गए।

महासेनापति ने कहा--"सुना तूने सिंह, सोमप्रभ ने सम्राट् को बन्दी कर लिया है, और देवी अम्बपाली को आयुष्मान् सोमप्रभ के सैनिक मुझे सौंप गए हैं।"

"देवी अम्बपाली क्या मागधों की बन्दी हो गई थीं?"

"नहीं आयुष्मान्, वे सम्राट् की प्राण-भिक्षा माँगने मागध स्कन्धावार में गई थी।"

"क्या देवी अम्बपाली ने कुछ कहा?"

"नहीं सिंह, वे तो तभी से मूर्छित हैं--मैंने उन्हें आचार्य अग्निवेश के सेवा-शिविर में भेज दिया है। वे उनकी शुश्रूषा कर रहे हैं।"

"उनके जीवन-नाश की तो सम्भावना नहीं है भन्ते?"

"ऐसा तो नहीं प्रतीत होता, परन्तु सिंह, तूने आयुष्मान् सोमप्रभ की निष्ठा और महत्ता देखी ?"

"देखी भन्ते, सेनापति सोमप्रभ अभिवन्दनीय—अभिनन्दनीय हैं।"

"अरे आयुष्मान्, यह सब कुछ अकल्पित अद्‌भुत कृत्य हो गया है, इतिहास के पृष्ठों पर यह अमर रहेगा।"

"काप्यक ने दो घड़ी पूर्व सन्देश भेजा था, कि महासेनापति आर्य भद्रिक सब ओर से घिर गए हैं। केवल एक दुर्ग पर उन्हें कुछ आशा थी, परन्तु सेनापति सोमप्रभ के सम्पूर्ण मागध सैन्य को युद्ध से विरत विघटित कर देने से वे निरुपाय हो गए। फिर भी उन्होंने सोमप्रभ का अनुशासन नहीं माना। कल रात-भर और आज अभी तक भी खण्ड-युद्ध करते ही जा रहे हैं।"

"अब तो समाप्त ही समझो आयुष्मान् !"

"मैं काप्यक के दूसरे सन्देश की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"सम्भव है, और रात भर युद्ध रहे, पर भद्रिक को अधिक आशा नहीं करनी चाहिए।"

इसी समय चर ने एक पत्र देकर कहा—"भन्ते सेनापति, काप्यक का यह पत्र है।"

सिंह ने मुहर तोड़ कर पत्र पढ़ा। फिर शांत स्वर में कहा—"भंते सेनापति, आर्य भद्रिक ने आत्मसमर्पण कर दिया है। वे आ रहे हैं।"

"भद्रिक बड़े तेजस्वी सेनापति हैं आयुष्मान्, हमें उनके प्रति उदार और ससम्मान होना चाहिए।"

"निश्चय, यह अस्थायी सन्धि के नियम हैं, अब इससे अधिक हम कुछ नहीं कर सकते।"

सेनापति सुमन ने नियम पढ़े और लेख लौटाते हुए कहा—"ठीक है आयुष्मान्, तू स्वयं बुद्धिमान् है।"

"परंतु क्या आप आर्य भद्रिक का स्वागत करेंगे भन्ते सेनापति !"

"नहीं, नहीं, यह तेरा अधिकार है आयुष्मान्, मैं आशा करता हूँ—तू उदार और व्यवहार-कुशल है। और भी कहीं युद्ध हो रहा है?"

"नहीं भन्ते सेनापति!"

"ठीक है, मैं अब चला, आयुष्मान्!"

"क्या इसी समय, भन्ते सेनापति?"

"हाँ, आयुष्मान्!"

सेनापति सुमन अश्व पर आरूढ़ होकर चल दिए।

एक बड़ी नाव घाट पर आकर लगी। कुछ व्यक्ति उसमें से उतर कर स्कंधावार में आए। नायक ने भीतर आकर कहा—"काप्यक आर्य भद्रिक को ला रहे हैं भन्ते सेनापति!"

"आर्य भद्रिक को ससम्मान ले आओ भद्र, मगध विजय हो गया, बहुत बड़ा कार्य सम्पूर्ण हुआ।"—सिंह ने खड़े होकर कहा।

आगे-आगे भद्रिक चण्ड और पीछे काप्यक गान्धार ने नग्न खड्ग लिए मण्डप में प्रवेश किया।

सिंह ने आगे बढ़कर खड्ग उष्णीष से लगाकर उच्च स्वर से कहा—

"महामहिम मागध-महासेनापति आर्य भद्रिक को लिच्छवि सेनापति सिंह ससम्भ्रम अभिवादन निवेदन करता है।"

भद्रिक शांत भाव से आकर खड़े हो गए। कष्ट और सहिष्णुता की रेखाएँ उनके मुख मण्डल पर थी—परंतु नेत्रों में वीरत्व और अभय की चमक थी। उन्होंने स्थिरकण्ठ से कहा—"आयुष्मान् सिंह! मैं तुम्हें मगध-विजय पर साधुवाद देता हूँ, तथा तुम्हारी शालीनता की श्लाघा करता हूँ।"

"अनुगृहीत हुआ। आर्य ने आज मुझे गर्वित होने का अवसर दिया है।"

"परंतु भद्र, मैंने बस भर ऐसा नहीं किया। मैं पराजित होकर बन्दी हुआ हूँ। अब मैं जानना चाहता हूँ कि....."

"अस्थायी संधि के नियम? वे यह हैं। आर्य, मैं समझता हूँ, आपको आपत्ति न होगी"—सिंह ने तालपत्र का लेख सेनापति के सम्मुख उपस्थित किया।

उस पर एक दृष्टि डाल कर सेनापति ने कहा—'तुम उदार हो आयुष्मन्, किंतु मैं क्या एक अनुरोध कर सकता हूँ?"

"मैं शक्ति भर उसे पूर्ण करूँगा आर्य!"

"महामात्य वर्षकार की अब हमें अत्यंत आवश्यकता है। बिना उनके परामर्श के संधि-वार्ता सम्पन्न न हो सकेगी।"

"ठीक है आर्य!"

"और एक बात है।"

"क्या आर्य?"

"मगध सेना के बन्दी सैनिकों को उनके शस्त्र और अश्वो सहित लौट जाने दिया जाय।"

"ऐसा ही होगा, आर्य!"

"धन्यवाद आयुष्मन्, मुझे तुम्हारे नियम स्वीकार है। यह मेरा खड्ग है।"—उन्होंने खड्ग कमर से खोल कर सिंह के सम्मुख किया।

"नहीं, नहीं, वह उपयुक्त स्थान पर है आर्य, मैं विनता करता हूँ उसे वहीं रहने दीजिए।"

भद्रिक ने खड्ग कमर में बाँध, हाथ उठाकर सिंह को आशीर्वाद दिया और दो कदम पीछे हट कर चले गए; पीछे-पीछे काप्यक गांधार भी नग्न खड्ग हाथ में लिए। सिंह ने जल्दी से उसी समय कुछ आदेश तालपत्र पर लिखे और दूत को दे वैशाली भेज दिया।

१५३

दृगस्पर्श

पाटलिग्राम पहुँच कर सेनापति सिंह ने वहाँ का निरीक्षण किया। बस्ती के अधिकांश घर सूने पड़े थे। बहुत से आग से जल कर ढह गए थे। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के ध्वंस ही रह गए थे। राज-मार्ग कूड़ा-कर्कट और गंदगी से भरे थे। खेत उजाड़ और सूखे पड़े थे। गंगा के कूल पर जहाँ घाट था, वहाँ बड़ा भारी गढ़ा हो गया था, वह दल-दल से भरा था। उसमें बहुत-से हाथी पूरे धँस गए थे, बहुत मर चुके थे, बहुत निरुपाय अपनी सूंड हिला रहे थे। मागधों ने अपने घायलों का कुछ भी प्रबंध नहीं किया था। मागध स्कन्धावार सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। मागधों से छीने हुए शस्त्रास्त्रों तथा सामग्री से भरी नावें अंधाधुंध उल्काचेल की ओर जा रही थीं। काप्यक गान्धार ने दो दिन में बहुत व्यवस्था कर ली थी। सिंह के पहुँचने पर उसने कहा—"अम्बपाली से कोई वस्तु नहीं छीनी गई है, न नागरिकों को कोई असुविधा हुई है।"

सिंह ने आहतों से भरे युद्ध-क्षेत्र का निरीक्षण किया। धूप और गर्मी से उनके घाव सड़ गए थे और उनकी बड़ी दुर्दशा हो रही थी। उन्होंने काप्यक गान्धार से कहा—"मित्र, घायल मागधों की भी हमें सेवा करनी चाहिए।" उन्होंने तुरन्त ताड़-पत्र पर एक आदेश आचार्य अग्निवेश के नाम वेग से चलने वाली नाव पर उल्काचेल भेज दिया। उसमें कुछ वैद्य और औपचारिक तथा शुश्रूषा-सामग्री की माँग की गई थी। चर को भेजकर सिंह ने कहा—"मित्र काप्यक, कुछ

खाली घरों को स्वच्छ करके आहत भटों को वहाँ ले आओ। तब तक आचार्य अग्निवेश अपना सेवादल भेज देंगे।

लिच्छवि सेनापति के करुण व्यवहार और अभयदान से आशान्वित हो बहुत से ग्रामवासी जो वन में जा छिपे थे, पीछे लौट आए। उनमें से जो उपस्थित हो सके, उन ग्राम-जेट्ठकों को बुलाकर सिंह ने एक घोषणा द्वारा उन्हें अभय किया और मागध-आहतों की सेवा में सहयोग माँगा। जेट्ठकों ने प्रसन्नता से सहयोग दिया।

सब व्यवस्था कर सिंह ने काप्यक गांधार को उल्काचेल का भार सौंप कर कहा—"मित्र, वहाँ झुण्ड के झुण्ड बन्दी आ रहे हैं, उन्हें छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँट कर देश के भीतरी भागों में भेजते जाओ और अपनी सैन्य को व्यवस्थित रूप में पीछे हटाओ, तथा यहाँ की सब सूचनाएँ अब तुम्हीं देखो। मैं सन्धि-उद्वाहिका में जाऊँगा, मेरा अश्व मंगा दो।"

इतना कह कर सिंह ने बैठ कर कुछ आदेश लिखे, और उन्हें काप्यक को दिया। फिर उसे आलिंगन कर वैशाली के राज-पथ पर अश्व छोड़ दिया।

१५४

विराम-सन्धि

आज वैशाली के संथागार में फिर उत्तेजना फैली थी। महासमर्थ मागध सैन्य चमत्कारिक रूप से पराजित हुई थी। लिच्छवियो के यद्यपि मुंह उदास थे और हृदय उत्साह रहित, तथा वह उमंग और तेज उनमें न था, फिर भी आज की इस कार्यवाही में एक प्रकार की उत्तेजना का यथेष्ट आभास था। छत्तीसों-संघ-राज्यो के राजप्रमुख अष्टकुल के सम्पूर्ण राजप्रतिनिधि इस विराम-सन्धि-उद्वाहिका में योग दे रहे थे। गणपति सुनन्द और लिच्छवि-महाबलाधिकृत सुमन अति गम्भीर थे। प्रमुख सेनानायक भी सब उपस्थित थे।

जब सेनापति सिंह ने संथागार में प्रवेश किया, तब चारों ओर से हर्षनाद उठ खड़ा हुआ। महाबलाधिकृत सुमन ने सिंह का अभिनन्दन करते हुए उद्वाहिका का प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—

"भन्ते गण, आज हमें सौभाग्य ने विजय दी है। अब शत्रु सन्धि चाहता है, आज का विचारणी विषय यह है कि किन नियमों पर सन्धि की जाय।"

मल्ल-कील राजप्रमुख ने उदग्र होकर कहा—"सन्धि नही भन्ते, सेनापति, हम मगध-साम्राज्य को समाप्त किया चाहते है। वह सदैव का हमारे गण-संघों के मार्ग का शूल है। हमारा प्रस्ताव है कि सुअवसर से लाभ उठाया जाय और मुख्य मगध, अंग दक्षिण, अंग उत्तर सबको वज्जी-संघ-शासन में मिला लिया जाय। अथवा वहाँ हमें एक स्वतन्त्र-गणशासन स्थापित कर देना चाहिए।"

"किन्तु आयुष्मान्, मगध और अंग में वज्जियों के अष्टकुल नहीं

हैं। न वहाँ केवल मल्ल कोलिय और कामी हैं, उन पर उसी प्रकार हम शासन कर सकते है जैसे वज्जी में अलिच्छवियों पर करते हैं।"

गणपति सुमन्त ने कहा—

"भन्ते गण सुनें, आयुष्मान्, मगध में एक स्वतन्त्र गणतन्त्र स्थापित किया चाहता है। गण-शासन का मूल-मन्त्र गण-स्वातन्त्र है, यह शासन नहीं, व्यवस्था है। जिसका दायित्व प्रत्येक मदस्य पर है। वास्तविक अर्थों में गणतन्त्र में राजा भी नहीं है, प्रजा भी नहीं है। गण का सम्पूर्ण स्वामी गण है, और गणपरिषद उसका प्रतिनिधि। हमारे अष्टकुल के वज्जीगण में दास भी है, अलिच्छवि भी हैं, आगन्तुक भी हैं। यद्यपि इन सबके लिए हमारा शासन उदार है, फिर भी इन अलिच्छवि जनों के पास हमारे शासन निर्णय पर प्रभाव डालने का कोई साधन नहीं है। वे केवल अनुशासित हैं। यह हमारे वज्जी गणतन्त्र में एक दोष है, जिसे हम दूर नहीं कर सकते, न उन्हें लिच्छवि ही बना सकते हैं। उनमें कोट्यलाधिपति सेट्ठि है, जिनका वाणिज्य सुदूर यवद्वीप, स्वर्ण-द्वीप और पश्चिम में ताम्रपर्ण, मिस्र और तुर्क तक फैला है। हमारे गण की यह राज्य-लक्ष्मी हैं, इसी प्रकार कर्मान्त, शिल्पी और ग्रामजेट्ठक हैं। क्या हम उनके बिना रह सकते हैं। यह सब अलिच्छवि हैं, और ये सभी वज्जीगणतन्त्र में अनुशासित हैं। बहुधा हमें इन अलिच्छवियों द्वारा असुविधाएँ उठानी पड़ती हैं। अब यदि हम अंग और मगध साम्राज्य को वज्जी-शासन में मिलाते हैं, तो हमारी ये कठिनाइयाँ असाधारण हो जाएँगी और हमारी गणप्रणाली असफल हो जायगी।

"यदि आप वहाँ किसी अलिच्छवि को वहाँ का शासक बना कर भेजेंगे, तो वह प्रजा के लिए और प्रजा उसके लिए पराई होगी। यदि कोई अलिच्छवि वहाँ का शासक बन जायगा तो फिर दूसरा मगध-साम्राज्य तैयार समझना होगा। वह जब प्रभुता और साधन-सम्पन्न हो जायगा तो हम उसे सहज ही हटा नहीं सकेंगे।".

"परन्तु भन्ते, हम इन आए दिन के आक्रमणों को भी तो नहीं सह सकते?"—एक मल्लराज पुरुष ने कहा।

"भन्ते राजप्रमुख, इससे भी गम्भीर बात और है। यदि एक बार भी मगध-सम्राट् जीत जायगा, तो वे निस्संदेह हमारे गणराज्य को नष्ट कर देंगे और हमारी गण ही की अलिच्छवि प्रजा समान अधिकार माँगेगी। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि दोनों अधिकार-च्युत होंगे और गण-स्थान पर साम्राज्य स्थापित हो जायगा।"

"यही सत्य है भन्ते सेनापति, अर्थात् हमारी विजय से उनकी कुछ हानि नहीं है, और उनकी एक ही विजय हमें समाप्त कर सकती है।"

"यही तथ्य है, भन्ते, राजप्रमुख!"

"तब तो फिर इस पाप की जड़ को उन्मूलित करना ही आवश्यक है।"

"किन्तु कैसे? हमें कम से कम एक लिच्छवि बिम्बसार अंग मगध का अधिपति बनाना होगा। जो इस श्रेणिक बिम्बसार से अधिक भयंकर होगा। उससे गण लड़ भी तो न सकेगा।"

"क्यों न अंग मगध को उनकी स्वतन्त्रता फिर दे दी जाय।"

"यह कठिन नहीं है। पर प्रजा इसे स्वीकार कैसे करेगी? उसका दायित्व किस पर होगा? क्या आप समझते हैं—मागधगण और अंग-गण स्थापित होना सहज है?"

"क्या हानि है, पश्चिम में भी तो बहुत गण हैं। क्यों न हम प्राची में गण-संख्या बढ़ाएँ। इससे कभी-कभी युद्ध भले ही हो, पर उससे गणनाश का भय नहीं रहेगा।"

"परन्तु आयुष्मान्, यह सम्भव नहीं है। हम अंग मगध की प्रजा

को स्वतन्त्रता नही दे सकते। अंगराज और मगधराज की स्थापना तो सहज है, पर अंग-गण और मगध-गण की नही।"

"क्यों भन्ते गणपति?"

"इसलिए आयुष्मान्, कि इसके लिए एक-रक्त, एक श्रेणी चाहिए। जहाँ एकता का भाव हो। मगध में अब ऐसा नहीं है। यद्यपि पहिले मागध एक-रक्त थे। परन्तु अब वह इतने दिन साम्राज्यवादी रह कर राष्ट्र बन गया है। अब मागध एक जाति नही रही। अब तो वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, आर्य भी अपने को मागध कहते हैं। मागध का अर्थ अब है मगध-साम्राज्य का विषय, मगध में ब्राह्मण क्षत्रिय ही नहीं, मागध शिल्पी, मागध चाण्डाल भी हैं। ये सब असमवर्ग है। इनकी अपनी श्रेणियाँ हैं। ये कभी भी एक नही हो सकते। वह श्रेणियों की खिचडी है, वहाँ गण-तन्त्र नहीं चल सकेगा।"

"ऐसा है, तब तो नहीं ही चल सकता।"

अब सिह सेनापति ने कहा—

"भन्ते राजप्रमुख गण, मैं इस बात पर विचार करता हूँ कि मनुष्य शरीर की भांति राजवंश का भी काल है, राजवंशों का तारुण्य अधिक भयानक होता है। बृद्धावस्था उतनी नहीं। तीन चार ही पीढ़यों में राजवंश का तारुण्य जाता रहता है। फिर उसका वार्धक्य आता है। तब कोई नया राजवंश तारुण्य लेकर आता है। भन्ते, शिशुनाग-राजवंश का भी यह वार्धक्य है। यदि इसे हम समाप्त कर देते हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि कोई तरुण राजवंश अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लेकर हमारे सामने आएगा। भन्तेगण, हमें भेड़िये की मांद छोड़ कर सिंह की माँद में नहीं धँसना चाहिए। फिर, और भी एक बात है भन्ते, मगध-राज्य को परास्त करना और उसे उन्मूलन करना एक सहज बात नहीं है। फिर भी हम परास्त कर चुके। हमारी प्रतिष्ठा बच गई, परन्तु इसमें हमारी सम्पूर्ण सामर्थ्य व्यय हो गई है, इस युद्ध में दस दिनों में हमारे गण ने

ग्यारह लाख प्राणों की आहुति दी है। धन, जन और सामर्थ्य के इस क्षय की पूर्ति हमारा गण आधी शताब्दी तक भी कर सकेगा या नहीं। यह नहीं कहा जा सकता।

"हमारी सेनाएँ राजगृह के आधे दूर तक के राजमार्ग और गंगा-तट पर फैली हुई हैं। हमने मगध सेना का सम्पूर्ण आयोजन अधिकृत कर लिया है, परन्तु भन्तेगण, गंगा-तट से आगे मागधों के प्रबल और अजेय मोर्चे और सैनिक दुर्ग हैं। राजधानी राजगृह भी अत्यन्त सुरक्षित हैं। नालन्द अम्बलट्ठिका की दो योजन की भूमि पर शत्रु की बहुत भारी सैनिक तैयारी अभी भी अक्षुण्ण है। इन सब को विजय करने के लिए हमें और ग्यारह लाख प्राणों की आहुति देनी होगी। क्या गण इसके लिए तैयार है? फिर और एक बात है।"

"वह क्या?"

"हमें राजगृह का दुर्गम दुर्ग भी जय करना होगा। बिना ऐसा किए मगध का पतन नहीं हो सकता। परन्तु भन्तेगण, आप भली भाति जानते हैं, राजगृह का दुर्ग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में दुर्भेद्य है। उसके सैनिक महत्त्व को मैं जानता हूँ। यह उसका मान-चित्र उपस्थित है। यदि गंगातट की राजगृह की भूमि जय करने में हमें महीनों लगेंगे तो राजगृह को जय करने में वर्षों लगेंगे। यह अभूतपूर्व नैसर्गिक दुर्ग वैभार, विपुल, पाण्व आदि दुर्गम पर्वत शृंखलाओं से आवेष्टित और सुरक्षित है, इन पहाड़ों के ऊपर बहुत मोटी शिलाओं के प्राकार विशाल पत्थरों की चुनी हुई प्राचीर इस छोर मे उस छोर तक मीलों दूर तक फैली हुई है। केवल दक्षिण ओर एक सँकड़ी गली है, जिसमें होकर दुर्ग में जाया जा सकता है। इन प्राचीरों में सुरक्षित बैठकर एक-एक धनुर्धर सौ सौ लिच्छवियों को अनायास ही मार सकता है। इस गिरि-दुर्ग में सुमागध सरोवर है, जिसके कारण दुर्ग घेरने पर भी वर्षों तक अन्न जल की कमी बिम्बसार को नहीं रहेगी। फिर पाँचों पर्वतों पर खिची

दैत्याकार प्राचीरों को भंग करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है।

"भन्ते, इस परिस्थिति में हम यदि आगे युद्ध में बढ़ते हैं तो हमारी अपार जन-हानि होगी। इतने जन अब हमारे अष्टकुल में नहीं हैं। न हमारे छत्तीसों गणराज्यों में हैं। यदि तीन पीढ़ियों तक अष्टकुल-गण राज्य की प्रत्येक स्त्री बीस बीस पुत्र उत्पन्न करे तो हो सकता है। सो भन्तेगण, यदि हमने राजगृह जय करने का साहस किया तो सफलता तो संदिग्ध है पर अपार धन-जन की हानि निश्चित है।"

गणपति सुमन्त ने कहा—"भन्ते गण, आपने आयुष्मान् सिंह का अभिप्राय सुना, हम अपनी स्थिति सुदृढ़ रखना पहिले चाहेंगे। इसलिए अब प्रश्न यह है कि शत्रु से संधि की जाय या नहीं।"

"ऐसी दशा में संधि सर्वोत्तम है, विशेषकर जब कि शत्रु अपने हाथ में है, तथा संधि के नियम भी हमारे ही रहेंगे।" सबने एक मत होकर कहा।

"तो संधि में तीन बातों पर विचार करना है। एक यह कि—शत्रु का सैनिक-बल इतना दुर्बल कर दिया जाय कि वह चिरकाल तक हमारे विरुद्ध शस्त्र न उठा सके।"

"सदा के लिए क्यों नहीं?"—एक राजप्रमुख ने कहा।

"यह देवताओं के लिए भी शक्य नहीं है, आयुष्मन्, दूसरे—शत्रु यथेष्ट युद्ध-क्षति दे। तीसरे—सुदूर पूर्वी तट हमारे वाणिज्य के लिए उन्मुक्त रहें।"

छन्द लेने पर प्रस्ताव-सम्मति से स्वीकार हुआ।

सन्धि की सब शर्तों पर विचार करने, हस्ताक्षर करने तथा शत्रु से आवश्यक मामले तय करने का अधिकार सिंह को दिया गया।

यथा समय सन्धि हो गई। वज्जी-भूमि में इसके लिए सर्वत्र गण नक्षत्र मनाया गया। वैशाली के खण्डहर ध्वजाओं से सजाए गए। भग्नद्वारों पर जलपूरित मंगल-कलश रखे गए। रात को टूटी और सूनी अटारियों में दीपमालिका हुई।

वैशाली के इस विदग्ध समारोह में भाग नहीं लिया अम्बपाली ने। उनका प्रासाद सजाया नहीं गया, उस पर तोरण-पताकाएँ नहीं फहराई गई; और दीपमालिका नहीं की गई। अपितु सप्तभूमि-प्रासाद का सिंह-द्वार और समस्त प्रवेश-द्वार बन्द कर दिए गए। समस्त आलोक दीप बुझा दिए गए। उस आनन्द और विजयोत्सव में राग-रंग के बीच देवी अम्बपाली और उसका विश्व-विश्रुत-प्रासाद जैसे चिरनिद्रा में सो गया युग युग के लिए।

१५५

अश्रु-सम्पदा

मध्य रात्रि थी। एक भी तारा आकाश मण्डल में नहीं दीख रहा था। काले बादलों ने उस अंधेरी रात को और भी अन्धेरी बना दिया था। बीच-बीच में कभी-कभी बूंदा-बूंदी हो जाती थी। हवा बन्द थी वातावरण में एक उदासी, बेचैनी और घमस भरी हुई थी। दूर तक फैले हुए युद्ध-क्षेत्र में सहस्रों चिताएँ जल रही थीं। उनमें युद्ध में निहत सैनिकों के शव जल रहे थे। चरबी के जलने से चर-चर शब्द हो रहे थे। कोई-कोई चिता फट पड़ती थी। उनकी लाल लाल अग्निशिखा पर नीली पीली लौ एक वीभत्स भावना मन में उदय कर रही थी। सैनिक मृत शव ढो ढो कर एक महाचिता में डाल रहे थे। बड़े-बड़े वीर योद्धा, जो अपनी हुंकृति से भूतल को कम्पित करते थे, छिन्नमस्तक छिन्न-बाहु भूमि पर धूलि-धूसरित पड़े थे। राजा और रंक में यहाँ अन्तर न था। अनेक छत्रधारियों के स्वर्ण-मुकुट इधर उधर लुढ़क रहे थे। कोई कोई घायल योद्धा मृत्यु-विभीषिका से त्रस्त हो रुदन कर बैठता था। कोई चीत्कार करके पानी और सहायता माँग रहा था। वायु में चिरांध भरी थी। जलती हुई चिताओं की काँपती हुई लाल आभा में मृतकों को ढोते हुए सैनिक उस काली कालरात्रि में काले काले प्रेत-से भासित हो रहे थे। सम्पूर्ण दृश्य ऐसा था, जिसे देख कर बड़े-बड़े वीरों का धैर्य च्युत हो सकता था।

मागध सेनापति सोमप्रभ एक महाशाल्मलि वृक्ष के नीचे तने से ढासना लगाए ध्यान-मुद्रा से यह महाविनाश देख रहे थे। गहन चिन्ता से उनके माथे पर रेखाएँ पड़ गई थीं। उनके बाल रूखे, धूलि भरे

और बिखरे हुए थे। मुंह सूख रहा था और होंठ सम्पुटित थे।

बीच-बीच में उल्लू और सियार बोल उठते थे। उनकी डरावनी शब्द-ध्वनि बहुधा उन्हें चौका देती थी। क्षण भर को विचलित होकर वह फिर गहरी ध्यान-मुद्रा में डूब जाते थे। कभी उनके कल्पना-संसार मे भूतकालीन समूचा जीवन विद्युत-प्रवाह की भाति घूम जाता था, कभी तक्षशिला की उत्साह-वर्धक और आनन्द तथा ओज-पूर्ण छात्रावस्था के चित्र घूम जाते थे, कभी चम्पा की राजबाला का कुन्देन्दु-धवल अश्रु-पूरित मुख, और कभी देवी अम्बपाली का वह अपार्थिव नृत्य, कभी सम्राट् की भूलुण्ठित आर्तमूर्ति और कभी अम्बपाली का आर्त चीत्कार; अन्ततः उनका निस्सार निस्संग जीवन। उस रात्रि से भी अधिक वीभत्स भयानक और अन्धकारमय भविष्य।

इसी समय निकट पद शब्द सुनकर उसने किसी बन-पशु की आशंका से खड्ग पर हाथ रखा। परन्तु देखा—एक मनुष्य-छाया उसी की ओर आ रही है। छाया के और निकट आने पर उसने भरे हुए स्वर में पुकारा—"कौन है?"

एक स्त्रीमूर्ति आकर उसके निकट खड़ी हो गई। जलती हुई निकट की चिता के लाल पीले प्रकाश में सोमप्रभ ने देखा, पहचानने में कुछ देर लगी। पहचान कर वह ससभ्रम खड़े हो गए। उनके मुंह से जैसे आप ही निकल गया—

"आप?"

"मैं ही हूं सोमभद्र!"

सोम स्तम्भित, जड़वत् अवाक् खड़े रह गए। आगन्तुका ने और भी निकट आकर कहा—"तुझे इस अवस्था में इस स्थान पर देखने के लिए ही भद्र अपना कठोर जीवन व्यतीत करती हुई मैं अब तक जीवित रही थी। आज मेरे दुर्भाग्य-पूर्ण जीवन की सोलहों कला फल गईं पुत्र, मेरा नारी होना, माँ होना सब कुछ सार्थक हो गया। सोम ने

चिता के काँपते पीले प्रकाश में आँख उठा कर उस शोक-सन्ताप-दग्धा स्त्री के मुख की ओर देखा, जिस पर वेदनाओं के इतिहास की गहरी अनगिनत रेखाएं खुदी हुई थी। सोम का मस्तक झुकने लगा। और एक क्षण बाद ही वह उस मूर्ति के चरणों मे भूमि पर लोट गए।

आगन्तुका ने धीरे से बैठ कर सोम का सिर उठा कर अपनी गोद में रखा। बहुत देर तक सोमप्रभ उस गोद में फफक फफक कर अबोध शिशु की भांति रोते रहे, और वह महिमामयी महिला भी अपने आँसुओं से सोमप्रभ के धूल-धूसरित सिर को सिंचन करती रही। बहुत देर बाद सोमप्रभ ने सिर उठा कर कहा—"माँ, इस समय यहाँ पर क्यों आई ?"

"मेरे पुत्र, तुझ निस्संग के साथ रुदन किए बहुत दिन व्यतीत हुए। जब जीवन के प्रभात ही में शोक और दुर्भाग्य की कालिमा ने मुझे ग्रसा था तब रोई थी, सब आँसू खर्च कर दिए थे। फिर इन चालीस वर्षो में एक बार भी रो नही पाई, भद्र, बहुत-बहुत यत्न किए, एक आँसू भी नही निकला। सो आज चालीस वर्ष बाद पुत्र, तुझे छाती से लगा कर इस महाश्मसान में रोने की साध लेकर ही आई हूं। लोकपाल दिग्पाल देखें अब, यह एक माँ अपने एकमात्र पुत्र को चालीस वर्षो से महाकृपण की भांति संचित अपने विदग्ध आँसुओ की निधि से सम्पन्न करने-आप्यायित करने, पुत्र पर अपने आँसुओ से भीगे हुए सुख-सौभाग्य की वर्षा करने आई है।"

सोम बहुत देर तक उनकी गोद में सिर झुकाए पड़े रहे। फिर उन्होंने सिर उठा कर कहा—

"चलो माँ, पुष्करिणी के उस पार अपनी कुटिया में मुझे परित्यक्त को ले चलो, मुझे अपनी शरण में ले लो माँ!"

"मेरे पुत्र, अभी एक गुरुतर कार्य और करना है, पहिले वह हो जाय पीछे और कुछ।"

"वह क्या माँ?"

"तेरे पिता की मुक्ति!"

"मेरे पिता की मुक्ति? कहाँ है वे माँ?"

"बन्दी है!"

"किसने उन्हें बन्दी किया है? मैं अभी उसका शिरच्छेद करूंगा।" उन्होंने अत्यन्त हिंस्र भाव से खड्ग उठाया।"

"तैने ही पुत्र, जा उन्हें मुक्त कर।"

सोम आश्चर्य से आँखे फाड़ फाड़ कर आर्या मातंगी को देखने लगे, भय, आशंका और उद्वेग से जैसे उनके प्राण निकलने लगे, बड़ी कठिनाई से उनके मुंह से टूटे-फूटे शब्द निकले—

"क्या, क्या सम्राट्.....,।"

"हाँ, पुत्र, अब अधिक मेरी लाज को मत उघाड़।"

सोम चीत्कार करके मूछित हो गए।

बहुत देर तक आर्या मातंगी मूछित पुत्र को गोद में लिए पड़ी रही। उन्होंने पुत्र को होश में लाने का कुछ भी यत्न नहीं किया। एक अवश जड़ता ने उन्हें घेर लिया। धीरे-धीरे उनका मुंह सफेद होने लगा। नेत्र पथराने लगे, अंग काँपने लगे।

सोम की मूर्छा भंग हुई। उन्होंने आर्या मातंगी की मुद्रा देखकर चिल्ला कर कहा—

"माँ, माँ, माँ, सावधान हो, मैं कभी अपने को क्षमा नहीं करूंगा।"

आर्या ने नेत्र खोले, उनके सूखे रक्तहीन होंठ हिले। सोम ने कान निकट लाकर सुना। आर्या कह रही थीं—"अम्बपाली तेरी भगिनी है, किन्तु उसके पिता ब्राह्मण वर्षकार....."

आर्या के ओष्ठ, हृदय, जीवन सब निस्पन्द हुआ।

१५६

पिता और पुत्र

उस अर्ध-निशा में सेनापति को एकाकी बन्दीगृह के द्वार पर आया देख प्रहरी घबरा गए।

सोम ने पूंछा--"क्या बन्दी सो रहा है?"

"नही, जाग रहा है।"

"ठीक है। अब यहाँ तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। द्वार खोल दो।"

प्रहरी ने द्वार खोल दिया। सोम ने भीतर जाकर देखा—सम्राट् धीर-गति से उस क्षुद्र कक्ष में टहल रहे थे।

सोम को देख कर वे क्षण भर को रुक गए। फिर बोले—

"आ आयुष्मान्, क्या वध करने आया है? वध कर, मैं प्रस्तुत हूं। परन्तु एक वचन दे, खड्ग छूकर। यदि देवी अम्बपाली को पुत्र-लाभ हो, तो वही मगध सम्राट् होगा। मैंने देवी को यह वचन उसके शुल्क में दिया था, वह वचन मगध सम्राट् का वचन था।"

सोम ने भर्राए कण्ठ से कहा--"वचन देता हूं।"

"खड्ग छूकर?"

"खड्ग छूकर।"

"आश्वस्त हुआ, परन्तु आयुष्मान्, तू युवा है, सशक्त है, खड्ग चलाने मे सिद्धहस्त है।"

सोम ने उत्तर नही दिया। चुपचाप खड़े रहे।

सम्राट् कहते गए--"मै समझता हूं, एक ही हाथ से मेरा शिरच्छेद हो जायगा। अधिक कष्ट नहीं होगा, समझता है न आयुष्मन्? अब मैं कायर हो गया हूं, कष्ट नहीं सह सकता, यह अवस्था का दोष है भद्र, पहिले मैं ऐसा नहीं था। अब तू वध कर।"

सम्राट् स्थिर मुद्रा से भूमि पर बैठ गए।

सोम के मुंह से एक शब्द नहीं निकला—वह धीरे-धीरे सम्राट् के चरणों में भूमि पर लोट गए। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—

"पिता, क्षमा कीजिए!"

"यह मैंने क्या सुना, आयुष्मन्?"

किंतु सोम ने और एक शब्द भी नही कहा। वे उसी भांति भूमि पर पड़े रहे। सम्राट् ने उठा कर और स्वयं उठ कर सोम को छाती से लगा कर कहा—

"क्या कहा, फिर तो कह भद्र! अरे, इस नीरस, निर्मम, शापग्रस्त सम्राट के जीवन को एक क्षण भर के लिए तो अप्यायित कर, फिर कह भद्र, वही शब्द।"

सोम ने सम्राट् के अंक में बालक की भांति सिर देकर कहा—

"पिता!"

सम्राट् ने असंयत हो उन्मत्त की भांति कहा—"अहा, हा, कैसा सुधा-वर्षण किया भद्र, किंतु क्या सत्य है? स्वप्न नहीं है, मैं एक पुत्र का पिता हूं?"

"हाँ, देव, आप इस दग्ध-भाग्य सोम के पिता हैं।"

"किसने कहा भद्र, क्या मृत्यु के भय से मेरा मस्तिष्क विकृत तो नहीं हो गया है। तूने कहा न 'पिता'?"

"हाँ देव!"

"तो फिर कह।"

"पिता!"

"और कह।"

"पिता!"

"और कह।"

"पिता!"

"अरे बार बार कह, बार बार कह।" सम्राट् ने सोम को अंक में भर गाढालिंगन किया।

सोम ने कहा—"पूज्य पिता, यह आपका पुत्र सोमप्रभ आपको अभिवादन करता है।"

"सौ वर्ष जी भद्र, सहस्र वर्ष"—सम्राट् जार-जार आँसू बहाने लगे।

सोम ने कहा—"पिता, अभी एक गुरुतर कार्य करना है।"

"कौन-सा पुत्र?"

"माता मातंगी आर्या का सत्कार"।"

"क्या आर्या मातंगी आई हैं?

"आई थीं, किंतु चली गई? पिता!"

"चली गई? मैं एक बार देख भी न सका।"

"देख लीजिए पिता, अभी अवशेष है।"

"अरे, तो....."

"अभी कुछ क्षण पूर्व मुझे अपनी अश्रु-सम्पदा से सम्पन्न कर, और दो संदेश देकर वह गत हुई।"

"अश्रु-सम्पदा से तुझे सम्पन्न करके?"

"हाँ, देव!"

"तो पिता पुत्र के सौभाग्य पर ईर्षा करेगा, किंतु संदेश, तूने कहा था दो संदेश?"

"एक निवेदन कर चुका।"

"उसका मूल्य मगध का साम्राज्य.....अस्तु दूसरा कह....."

"देवी अम्बपाली मेरी भगिनी हैं।"

सम्राट् चीत्कार कर उठे।

सोम ने कहा—"मुझे कुछ निवेदन करना है देव!"

"अब नहीं, अब नहीं, सोमभद्र, तू मुझे वध कर, शीघ्रता कर।"

"देव!"

"आज्ञा देता हूं रे, यह सम्राट् की आज्ञा है, अंतिम आज्ञा"

"एक गुह्य है पिता, देवी अम्बपाली आर्य आमात्य की पुत्री है।"

सम्राट् ने उन्मत्त की भांति उछल कर सोम को हृदय से लगा लिया। संयत होने पर सोम ने कहा--

"पिता, चलिए अब, माता का शरीर अरक्षित है।"

"कहां पुत्र?"

"निकट ही।"

दोनों बाहर आए? महा-श्मशान में अब भी चिताएँ जल रही थीं। दोनों ने आर्या मातंगी को उठा कर गंगा स्नान कराया। फिर सम्राट् ने अपना उत्तरीय अंग से उतार कर देवी के अंग पर लपेट दिया। सोम सूखी लकड़ी बीन लाए, और उस पर आर्या मातंगी की महामहिमामयी देह-यष्टि रख कर एक चिता की अग्नि से मगध के सम्राट् ने आर्या की चिता में दाह दिया। जिसके साक्षी थे सद्यः परिचित मात्र पिता की पुत्र; और वर्षोन्मुख मेघपुञ्ज।

पिता पुत्र दोनों उसी वृक्ष के नीचे बैठे आर्या मातंगी की जलती चिता को देखते रहे। चिता जल चुकने पर सोम ने खड्ग सम्राट् के चरणों में रख कर उनकी प्रदक्षिणा की, फिर अभिवादन करके कहा--"बिदा, पूज्य पिता!"

"यह क्या पुत्र, जाने का अब मेरा काल है, मगध का साम्राज्य तेरा है।"

सोमप्रभ ने कहा--"इसी खड्ग की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, मगध का भावी सम्राट् देवी अम्बपाली का गर्भजात पुत्र होगा।"

सोम ने एक बार भूमि में गिर कर फिर सम्राट् को अभिवादन किया, और जलती हुई चिताओं में होते हुए उसी अभेद्य अंधकार में लोप हो गए।

उपसंहार

१

एक वर्ष बीत गया। युद्ध जय होने पर भी इस युद्ध के फलस्वरूप वैशाली का सारा वैभव छिन्न-भिन्न हो गया था। इस युद्ध में दस दिन के भीतर ९६ लाख नर-संहार हुआ था, और नौ लिच्छवि, नौ मल्ल, १८ कासी कोल के गणराज्य एक प्रकार से ध्वस्त हो गए थे। वैशाली में दूर तक अधजली अट्टालिकाएँ, ढहे हुए प्रासादों के ढूह, टूटे फूटे राज-मार्ग दीख पड रहे थे। बहुत जन वैशाली छोड कर भाग गए थे। युवक-योद्धा सामान्तपुत्र विरले ही दीख पडते थे। बहुतों का युद्ध में निधन हुआ था। बहुत अंधे, लंगडे, लूले, अपाहिज होकर दुःख और क्षोभ से भरे हुए वैशाली के अन्तरायण की अशोभा-वृद्धि करते थे। देश-देशांतरों के व्यापारी अब हट्ट में नही दीख पड रहे थे। बड़े-बड़े सेट्ठिपुत्र थकित, चिंतित और निठल्ले पडे रहते थे। शिल्पी, कर्मकर भूखे, असम्पन्न, दुर्बल और रोगाक्रान्त हो गए थे। युद्ध के बाद ही जो भुखमरी और महा-मारी नगर और उपनगर में फैली थी, उससे आबाल वृद्ध पटापट मर रहे थे। सूर्योदय से सूर्योदय तक निरन्तर उन हर्म्यों में से--जिनमें कभी संगीत की लहरें उठा करती थी---आक्रोश, क्रन्दन, चीत्कार, कलह के कर्ण-कटु शब्द सुनाई देते ही रहते थे। नगर-सुधार की ओर किसी का ध्यान न था। संथागार मे अब नियमित सन्निपात नही होते थे, होते थे तो विद्रोह और गृह-कलह तथा मत-पार्थक्य ही की बातें सुनाई पड़ती थी। प्रमुख राजपुरुषों ने राज-संन्यास ले लिया था। नए, अनुभवहीन, और हीन-चरित्र लोगों के हाथ में सत्ता डोलायमान हो रही थी। प्रत्येक स्त्री-पुरुष असन्तुष्ट, असुखी और रोषावेशित रहता था। लोग फटे हाल

फिरते, तथा बात बात में कुत्ते की भांति लड़ पड़ते थे। मंगल-पुष्करिणी सूख गई थी, और नीलपद्म-प्रासाद भूमिसात् हो चुका था। लोग खुल्लम-खुल्ला राजपुरुषों पर आक्षेप करते, अकारण ही एक दूसरे पर आक्रमण करते और हत्या तक कर बैठते थे। अपराधों की बाढ़ आ गई थी। बहुत कुल-कुमारियां और कुल-वधू वेश्या बन कर हट्ट में आ बैठी थी। उन्हें लज्जा नहीं थी। वे प्रसंग आने पर अम्बपाली का व्यंगमय भाषा में उदाहरण देकर कहतीं--हम इन पुरुष-पशुओं पर उसी की भांति शासन करेंगी। इनके धन-रत्नों का हरण करेंगी। यह लोक-सम्मत संस्कृत जीवन है, इसमें गर्हित क्या है? अकरणीय क्या है? नगर के बाहर एक योजन जाने पर भी नागर का जीवन, धन अरक्षित था। दस्युओं की भरमार हो गई थी, खेत सब सूखे पड़े थे। ग्राम, जनपद सर्वत्र 'हा अन्न, हा अन्न' का क्रन्दन सुनाई पड रहा था। भूख की ज्वाला से जर्जर काले-काले कंकाल ग्राम-ग्राम घूमते दीख पडते थे। किसी में किसी के प्रति सहानुभूति, प्रेम और कर्तव्य की भावना का अश भी नहीं रह गया था। ये सब युद्ध के अवश्यम्भावी युद्धोत्तर परिणाम थे।

अम्बपाली का द्वार सदैव बन्द रहता था। लोग सप्तभूमि-प्रासाद को देख-देख कर क्रोध और आवेश में आकर अपशब्द बकते, तथा अम्बपाली को कोसते थे। सप्तभूमि-प्रासाद के गवाक्षों और अलिन्दों से दूर तक शोभा बखेरने वाला रंग-बिरंगा प्रकाश अब नहीं दीख पड़ रहा था। वहाँ सिंह पौर पर अब ताजे फूलों की मालाएँ नहीं सजाई जाती थीं--न अब वहाँ पहले जैसी हलचल थी, युद्ध में जो भाग भंग हो गया था, अम्बपाली ने उसकी मरम्मत कराने की परवाह नहीं की थी--जगह-जगह भीतों, अलिन्दों, खम्भों और शिखरों में दरारें पड़ गई थीं, उन दरारों में जंगली घास-फूंस, गुल्म उग आए थे। बीच के तोरणों में मकड़ियों ने जाले पूर दिए थे और कबूतरों, चिमगादड़ों ने उसमें घर बना लिए थे।

अम्बपाली के बहुत मित्र युद्ध में निहत हुए थे। जो बच रहे थे—वे अम्बपाली के इस परिवर्तन पर आश्चर्य करते थे। दूर-दूर तक यह बात फैल गई थी कि देवी अम्बपाली का आवास अब मनुष्य-मात्र के लिए बन्द हो गया है। अम्बपाली के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सेवक, कम्मकर, सैनिक और अनुचरों में अब कोई दृष्टिगोचर नही होता था। जो इने-गिने पार्श्वद रह गए थे, उनमे केवल दो व्यक्ति ही थे, जो अम्बपाली को देख सकते और बात कर सकते थे। एक वृद्ध दण्डधर लल्ल और दूसरी दासी मदलेखा। इनमें केवल वृद्ध दण्ड-धर को ही बाहर भीतर सर्वत्र आने जाने की स्वाधीनता थी। ये ही दोनो यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपाली को सम्राट् बिम्बसार का गर्भ है।

यथासमय पुत्र-प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर प्रकट हुआ। वह शिशु अतियत्न से, अतिगोपनीय रीति पर, अति सुरक्षा में उसी दण्डधर के द्वारा यथासमय मागध-सम्राट् के पास राजगृह पहुँचा दिया गया।

२

मागध सम्राट् बिम्बसार अर्द्ध-विक्षिप्त की भांति राज-प्रासाद में रहते थे। राज-काज ब्राह्मण वर्षकार ही के हाथ था। सम्राट् प्रायः महीनों प्रासाद से बाहर नहीं आते, दरबार नहीं करते, किसी राजकाज में ध्यान नही देते। वे बहुधा रात-रात भर नंगे सिर, नंगे बदन नंगा खड्ग हाथ में लिए प्रासाद के सूने खण्डों में अकेले ही बड़बड़ाते घूमा करते। राज-सेवक यह सह गए थे, कोई भी बिना आज्ञा सम्राट् के सम्मुख आने का साहस न कर सकता था।

एक दिन, जब सम्राट् एकाकी शून्य हृदय, शून्य मस्तिष्क, शून्य जीवन, शून्य प्रासाद में, शून्य रात्रि में उन्मत्त की भांति अपने ही से कुछ

कहते हुए से उन्निद्र, नग्न खड्ग हाथ में लिए भटक रहे थे, तभी हठात् वृद्ध दण्डधर लल्ल ने उनके सम्मुख जाकर अभिवादन किया।

सम्राट् ने हाथ का खड्ग ऊँचा कर उच्च स्वर से कहा—"तू चोर है, कह क्यों आया।"

दण्डधर ने एक मुद्रा सम्राट् के हाथ में दी। और गोद में श्वेत कौशेय में लिपटे शिशु का मुह उघाड़ दोनों हाथ आगे फैला दिए। सम्राट् ने देवी अम्बपाली की मुद्रा पहचान मदस्मित हो शिशु की उज्जवल आँखों को देख कर कहा—

"यह क्या है भणे!"

"मगध के भावी सम्राट्। देव, मेरी स्वामिनी देवी अम्बपाली ने बद्धांजलि निवेदन किया है, कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट् आपके चरणों में समर्पित है।

सम्राट् ने शिशु को सिंहासन पर डालकर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल-नयन हो कहा—

"मगध के भावी सम्राट् का झटपट अभिवादन कर।"

दण्डधर ने कोष से खड्ग निकाल मस्तक पर लगा तीन बार मगध के भावी सम्राट् की जय-घोष की और खड्ग सम्राट् के चरणों मे रख दिया।

सम्राट् ने उच्च स्वर से खड्ग हवा में ऊँचा कर तीन बार मगध के भावी सम्राट् का जयघोष किया और घण्ट पर आघात किया। देखते ही देखते प्रासाद के प्रहरी, रक्षक, कंचुकी, दण्डधर, दास-दासी दौड़ पड़े। सम्राट् ने चिल्ला-चिल्ला कर उन्मत्त की भांति कहा—

"अभिवादन करो, आयोजन करो, गण-नक्षण मनाओ। मगध के भावी सम्राट् का जयजयकार करो।"

देखते ही देखते मागध प्रासाद हलचल का केन्द्र हो गया। विविध वाद्य बज उठे। सम्राट् ने अपना रत्नजटित खड्ग वृद्ध दण्डधर की कमर में बाँधते हुए कहा—"भणे, अपनी स्वामिनी को मेरी यह भेंट देना।"

यह कह एक वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

३

१० वर्ष बीत गए। युवक वृद्ध हो गए, वृद्ध मर गए, बालक युवा हो गए। अम्बपाली अब अतीत का विषय हो गई। पुराण-पुरुष युक्ति अत्युक्ति द्वारा युद्ध और अम्बपाली की बहुत-सी कथाएं कहने सुनने लगे। उनमें बहुत-सी अतिरंजित, बहुत-सी प्रकल्पित और बहुत-सी सत्य थी। उन्हें सुन-सुन कर वैशाली के नवोदित तरुणों को कौतूहल होता। वे जब सप्तभूमि प्रासाद के निकट होकर आते जाते, तो उसके बन्द शून्य और अरक्षित अशोभनीय द्वार को उत्सुकता और कौतूहल से देखते। इन्हीं दीवारो के भीतर, इन्ही अवरुद्ध गवाक्षों के उस ओर वह जनविश्रुत अम्बपाली रह रही है, किन्तु उसका दर्शन अब देव, दैत्य, मानव, किन्नर, यक्ष, रक्ष सभी को दुर्लभ है। इस रहस्य की विविध किवदन्तियाँ घर-घर नित्य होने लगीं।

श्रमण बुद्ध बहुत दिन बाद वैशाली मे आए। आकर अम्बपाली की बाडी में ठहरे। अम्बपाली ने सुना। हठात् सप्तभूमि प्रासाद में जीवन के चिह्न देखे जाने लगे। दास-दासी कम्मकर कर्णिक दण्डधर भाग दौड़ करने लगे। दश वर्ष से अवरुद्ध सप्तभूमि प्रासाद का सिंहद्वार एक हलकी चीत्कार करके खुल गया। और देखते-देखते सारी वैशाली में यह समाचार विद्युत् वेग से फैल गया। अम्बपाली भगवद्बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही है। दस वर्ष बाद आज वह सर्वसाधारण के समक्ष एक बार फिर बाहर आई हैं। लोग झुण्ड के झुण्ड प्रासाद के सिंह-पौर को घेरकर तथा राजमार्ग पर डट गए। आज के तरुणों ने कहा—आज उस अद्भुत देवी का दर्शन करेंगे। नवोढा वधुओं ने कहा—देखेंगे देवी का रूप कैसा है। कल के तरुणों ने कहा—देखेंगे अब वह कैसी हो गई है। हाथी, घोड़े, शिविका

और सैनिक सज्जित हो होकर आने लगे। अम्बपाली एक श्वेत हाथी पर आरूढ निराभरण, एक श्वेत कौशेय उत्तरीय से सम्पूर्ण अंग ढापे नतमुखी बैठी थी। उसका मुख पीत, दुर्बल, किन्तु तेजपूर्ण था। जन-कोलाहल, भीड-भाड़, पौर-जानपद की लाजा, पुष्पवर्षा किसी ने भी उसका ध्यान-भंग नही किया। एक बार भी उसने आंख उठाकर किसी की ओर नहीं देखा। श्वेत मर्मर की अचल देव-प्रतिमा की भांति शुभ्र शारदीय शोभा की मूर्त्त प्रतिकृति-सी वह निश्चल-निस्पन्द नीरव हाथी पर नीचे नयन किए बैठी थी। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे था।

उनके पीछे अश्वारोही दल था, और उनके बाद हाथियों पर गन्ध-माल्य-भोज्य उपानय तथा पूज्य-पूजन सामग्री थी। सबके पीछे विविध वाहन, कर्मचारी, नागर, पौर, जानपद। राजपथ, बीथी, हट्ट में अपार दर्शक उत्सुकता और कौतूहल से उसे देख रहे थे।

बाड़ी के निकट जा उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह गाँव-प्यादे वहाँ पहुँची, जहाँ एक द्रुम की शीतल छाह मे, अर्हन्त श्रमण बुद्ध प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे। पीछे सौ दासियों के हाथ में गन्ध-माल्य, उपानय और पूज्य-पूजन साधन थे।

तथागत अब अस्सी को पार कर गए थे। उनके गौर, उन्नत, कृश गात की शोभा गाम्भीर्य की चरम रेखाओं से विभूषित हो कोटि-कोटि जनपद को उनके चरणों में अवनत होने का आवाहान कर रही थी। उनके सब केश श्वेत हो गए थे। किन्तु वे एक बलिष्ठ महापुरुष दीख पड़ते थे वे पद्मासन लगाए शान्त मुद्रा में वृक्ष की शीतल छाया में आसीन थे।

सहस्रावधि, भिक्ष, नागर उनके चारों ओर बैठे थे। मुंडित और काषायधारी भिक्षुओं की पंक्ति दूर तक बैठी उनके श्रीमुख से निकले प्रत्येक शब्द को हृदयपटल पर लिख रहे थे।

आनन्द ने कहा--

'भगवन्! अम्बपाली देवी आई हैं।"

तथागत ने किंचित् हास्य-मुद्रा मे अम्बपाली को देखा। अम्बपाली ने सम्मुख आ, अभिवादन किया। गंध-माल्य निवेदन कर पूज्यपूजन किया। फिर सयत भाव से एक ओर हटकर बैठ गई। बैठकर उसने करबद्ध प्रार्थना की--

'भन्ते भगवन्, भिक्षु-संघ सहित कल को मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया। तब देवी अम्बपाली भगवान् की स्वीकृति को जान आसन से उठ भगवान् की प्रदक्षिणा कर अभिवादन कर चल दी। इसी समय रथों, वाहनों, हाथियों, अश्वों का महानाद, बहुत मनुष्यों का कोलाहल सुन अर्हन्त बुद्ध ने कहा--"आयुष्मान आनन्द, यह कैसा कोलाहल है?"

आनन्द ने कहा--'भगवन्, यह लिच्छवियों के अष्टराजकुल परिजन सहित भागवान् की शरण आ रहे हैं।"

भगवान् ने कहा--"आनन्द, तथागत अब अंतिम बार वैशाली को देख रहा है। अब वैशाली वैसी नहीं रही। जब ये लिच्छवि सजधज कर तथागत के निकट आते थे, तब तथागत कहता था--भिक्षुओं, तुमने देवताओं को अपनी नगरी से बाहर आते कभी नहीं देखा है, परन्तु इन वैशाली के लिच्छवियों को देखो जो समृद्धि और ठाट-बाट में उन देवताओं के ही समान हैं। वे सोने के छत्र, स्वर्णमण्डित पालकी, स्वर्ण-जटित रथ और हाथियों सहित आबाल वृद्ध सब विविध आभूषण पहने और विविध रंग से रंजित वस्त्र धारण किए सुन्दर वाहनों पर तथागत के पास आया करते थे। देख आनन्द, अतिसमृद्ध, सुरक्षित, सुभिक्ष रमणीय, जनपूर्ण-सम्पन्न गृह और हर्म्यों से अलंकृत, पुष्पवाटिकाओं और उद्यानों से प्रफुल्लित देवताओं की नगरी से स्पर्धा करने वाली वैशाली आज कैसी श्रीविहीन हो गई है।"

इसी बीच अष्टकुल के लिच्छवि राज-परिजन ने निकट आ अपने-अपने

नाम कह भगवत् को अभिवादन किया, और एक ओर हटकर बद्धांजलि बैठ गए। उन्हें भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित, समादर्पित, समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया।

तथागत के धार्मिकोपदेश द्वारा संप्रहर्षित हो, लिच्छवि-गणपति ने बद्धांजलि हो कहा--"भन्ते भगवन्, कल का हमारा भोजन भिक्षुसंघ सहित ग्रहण करें।

भगवान् ने मन्दस्मित करके कहा--"वह तो मैं अम्बपाली का स्वीकार कर चुका।"

तब लिच्छवियों ने उगलियाँ फोड़ीं--"अरे, अम्बपाली ने हमें जीत लिया, अम्बपाली ने हमें वंचित कर दिया?"

तब लिच्छवि गण भगवान् के भाषण को अभिनन्दित कर भगवान् को अभिवादन कर परिक्रमा कर, अनुमोदित कर, आसन से उठ लौट चले कुछ श्वेत वस्त्र धारण किए थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण पहने थे।

अम्बपाली रथ में बैठकर लौटी। उसने बड़े-बड़े तरुण राजपुरुष लिच्छवियों के धुरों से धुरा चक्कों से चक्का, जुए से जुआ टकराया, उनके घोड़ों के बराबर अपने घोढ़े दौड़ाए।

लिच्छवि राजपुरुषों ने देखकर क्रुद्ध होकर कहा--"जे अम्बपाली! क्यों दुहर लिच्छवियों के धुरों से धुरा टकराती है?"

"आर्यपुत्रो, मैंने भिक्षुसंघ के महित भगवान् को भोज के लिए निमन्त्रित किया है।"

"जे अम्बपाली, शत सहस्र स्वर्ण से इस भात को दे दे।"

"आर्यपुत्रो, यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भात को नहीं दूंगी।"

तब उन लिच्छवियों ने अंगुलियाँ फोड़ीं और अपने हाथ पटककर कहा--

"अरे, हमें अम्बपाली ने जीत लिया; अरे हमें अम्बपाली ने वंचित कर दिया।"

अम्बपाली ने अपना रथ आगे बढ़ाया और उसके सहस्र घण्टनाद के उद्घोष और उसके पहियों से उड़ी हुई धूल का एक बादल पीछे रह गया।

४

तब अर्हन्त भगवान् पूर्वान्ह समय पहिनकर पात्र चीवर ले बारह सौ भिक्षुसंघ सहित देवी अम्बपाली के आवास की ओर चले। अम्बपाली ने सैकड़ों कारीगर मजदूर लगाकर रातों-रात सप्तभूमि प्रासाद का शृंगार किया। तोरणों पर ध्वजा-पताकाएं अपनी रंगीन छटा दिखाने लगी। गवाक्षों के रंगीन स्फटिक सूर्य की किरणें में प्रतिबिम्बित से होने लगे। सिंह-द्वार का नवीन संस्कार हुआ, और उसे नवीन पुष्पों से सज्जित किया गया। तथागत अपने अनुगत भिक्षुसंघ के सहित पात्रचीवर हाथ में लिए भूमि पर दृष्टि लगाए वैशाली के राजमार्ग पर बढ़े चले जा रहे थे। उस समय वैशाली के प्राण ही राजमार्ग पर आ जूझे थे। अन्तरायण के सेट्ठि निगम जेट्ठक अपनी-अपनी हट्टों से उठ उठकर मार्ग की भूमि को भगवत् के चरण रखने से प्रथम अपने उत्तरीय से झाड़ने लगे। बहुत-से भीड़ में आगे निकल राजपथ पर अपने बहुमूल्य शाल-कौर्जव और कौशेय बिछाने लगे। तथागत सहान् वीतराग सत्त्व, महाप्राण अर्हन्त पौर जानपद जन की प्रचण्ड जयघोष से तनिक भी विचलित न होकर स्थिर पद पर पद रखते सप्तभूमि प्रासाद की ओर बढ़े जा रहे थे। उनकी अधोदृष्टि जैसे पाताल तक घुस गई थी। पौर वधू झरोखों से लाजा पुष्प तथागत पर फेंक रही थीं।

सप्तभूमि प्रासाद की सीढ़ियों को अवदात धुस्सों से ढांप दिया गया था। द्वार-कोष्टक पर स्वयं देवी अम्बपाली शुभ्र शुक्र नक्षत्र की भांति भगवत् के स्वागतार्थ खड़ी थी। उसने दूर से भगवत् को आते देखा, देखते

ही अगवानी कर भगवान् की वन्दना कर, आगे-आगे हो पौड़ियों तक ले गई। वहाँ जाकर भगवान् श्रमण पौर की निचली सीढ़ी पर ही खड़े हो गए। अम्बपाली ने कहा—'भन्ते भगवान्, भगवान् धुस्सों पर चलें; सुगत, धुस्सों पर चलें। यह चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिए होगा।

परन्तु भगवत् बुद्ध इतना कहने पर भी सीढ़ी के नीचे चुपचाप खड़े रहे। सीढ़ी पर पैर नहीं रखा। अम्बपाली ने दूसरी बार, फिर तीसरी बार भी कहा। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द की ओर देखा। आनन्द ने कहा—"देवी अम्बपाली, धुस्सों को समेट लो, भगवान् चैल-पंक्ति पर नहीं चढ़ेंगे। तथागत आने वाली जनता का विचार कर रहे हैं।"

तब अम्बपाली ने धुस्सों को समेट लिया; और प्रासाद के सप्तम खण्ड में भोजन के लिए आसन बिछवाया। भगवान् बुद्धसंघ के साथ बिछे आसन पर बैठे। तब अम्बपाली ने बुद्ध सहित भिक्षु संघ को अपने हाथ से उत्तम खादनीय पदार्थों से तर्पित किया, संतुष्ट किया। भगवान् के भोजन पर पात्र से हाथ खींच लेने पर देवी अम्पबाली एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गई।

एक ओर बैठी अम्बपाली को भगवान् ने धार्मिक कथा से सम्प्रहर्षित समुत्तेजित किया। अम्बपाली तब करबद्ध सामने आकर खड़ी हुई।

भगवत् ने कहा—अम्बपाली, अब और तेरी क्या इच्छा है?"

"भन्ते, भगवन्, एक भिक्षा चाहिए।"

"वह क्या अम्बपाली?"

"आज्ञा हो भन्ते, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय मुझे प्रदान करें।"

भगवत् ने आनन्द की ओर देखा। आनन्द अपना उत्तरीय उतार कर अम्बपाली को भेंट कर दिया। क्षण भर के लिए अम्बपाली भीतर गई। परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी उत्तरीय से अपने अंग ढाँपे आ रही थी। कंचुक और कौशेय जो उसने धारण किया हुआ था, उतार डाला

था। अब उसके अंग पर आनन्द के दिए हुए उत्तरीय को छोड़ और कुछ न था। न वस्त्र, न आभूषण, न शृंगार। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधार बह रही थी। वह आकर भगवत् के सामने पृथ्वी पर लोट गई। भगवत् ने शुभहस्त से उसे स्पर्श करके कहा—"उठ, उठ, कल्याणी, कह, तेरी क्या इच्छा है?"

"भन्ते भगवत्, इस अधम अपवित्र नारी की विडंबना कैसे बखान की जाय। यह महानारी शरीर कलंकित करके मैं जीवित रहने पर बाधिक की गई, शुभ सकल्प से मैं वंचित रही। भगवन्, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का संचय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्यहृदया रह कर अब तक जीवित रही हूँ, यह कैसे कहूँ? मेरे जीवन मे दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फलस्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट् की राजमाता हूँ। परन्तु भगवन्, आज के महान् पुण्य-योग के फलस्वरूप अब मैं इससे उच्चपद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाषा रखती हूँ। भन्ते भगवन् प्रसन्न हों, जब भगवत् की चरण रज से यह आवास एक बार पवित्र हुआ, तब यहाँ अब विलास और पाप कैसा? उसकी सामग्री ही यहाँ क्यों? उसकी स्मृति ही क्यों?

इसलिए भगवच्चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा, प्रासाद धनकोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित है। भगवत् ने जो यह भिक्षु का उत्तरीय मुझे प्रदान किया है, मेरे शरीर की लज्जा-निवारण को यथेष्ट है। आज से अम्बपाली तथागत के शरण है भिक्षुकी है। यह इस भिक्षा में प्राप्त पवित्र वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी।

इतना कह अविरल अश्रुधारा से भगवच्चरणों को धोती हुई अम्बपाली अर्हन्त बुद्ध की चरणरज नेत्रों मे लगा कर उठी, और धीरे धीरे प्रासाद मे बाहर चली गई। दास-दासी, दण्डधर, कर्णिक, कंचुकी, भिक्षु देखते रह गए।

महावीतराग बुद्ध आप्यायित हुए। उनके सम्पूर्ण जीवन में यह त्याग का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था।

अम्बपाली, उस पीत परिधान को धारण किए नीचा सिर किए पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे-धीरे नगर से बाहर जा रही थी, जिसमें कभी वह मणि-माणिक्य से जड़ी चलती थी। सहस्रों नगर पौर जानपद उन्मत विमूढ़ हो उसके पीछे-पीछे चल दिए। सहस्र-सहस्र कण्ठ से—'जय अम्बपाली, जय साध्वी अम्बपाली' का गगन-भेदी नाद उठा। और उसके पीछे समस्त नगर उमड़ा जा रहा था। खिड़कियों से पौर वधुएँ पुष्प और खील वर्षा कर रही थी।

भगवत् ने कहा—"आयष्मान् आनन्द, यह सप्तभूमि प्रासाद भिक्षुओं का सर्वश्रेष्ठ विहार हो। भिक्षु यहाँ रह कर सन्मार्ग का अन्वेषण करें—यही तथागत की इच्छा है।"

इतना कह भगवत् बुद्ध उठकर भिक्षु-संघ सहित वाड़ी की ओर चल दिए।

५

महाश्रमण भगवत् बुद्ध अम्बपाली की वाड़ी में आ स्वस्थ हो आसन पर बैठे। तब अम्बपाली केशों को कटा कर काषाय पहिने मार्ग चलने से फूले-पैरों, धूल-भरे शरीर से दुखी, दुर्मना, अश्रुमुखी पाँव-प्यादे, रोती हुई वाड़ी के द्वार-कोष्ठक के बाहर आकर खड़ी हो गई। उसके साथ बहुत-सी लिच्छवि स्त्रियाँ भी हो ली थीं।

इस प्रकार द्वार-कोष्ठक पर अम्बपाली को श्रान्त, दुखी और अश्रु-पूरित खड़ी देख आयुष्मान् आनन्द ने पूछा—"सुश्री अम्बपाली, अब यहाँ इस प्रकार तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है?"

"भन्ते आनन्द, मैं भन्ते भगवान् से प्रव्रज्या लेना चाहती हूँ।"

"तो भगवती अम्बपाली, तुम यहीं ठहरो, मैं भगवान् से अनुज्ञा ले आता हूँ।"

इतना कह आनन्द अर्हन्त गौतम के पास जा बोले—"भगवन्, भगवती

अम्बपाली फूले-पैरों धूल-भरे शरीर से दुखी दुर्मना अश्रुमुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठक पर खड़ी है। वह प्रव्रज्या की अनुज्ञा माँगती है। भन्ते भगवन्, भगवती अम्बपाली को प्रव्रज्या की अनुज्ञा मिले। उन्हें उपसंपदा प्रदान हो।"

"नहीं आनन्द, यह सुकर नहीं कि तथागत के जतलाए धर्म में अम्बपाली घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले।"

भन्ते, क्या तथागत-प्रवेदित धर्म में घर से बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोत-आपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्त्व-फल को साक्षात् कर सकती हैं?"

"कर सकती हैं आनन्द!"

"यदि भन्ते, तथागत प्रवेदित धर्म-विनय में घर से बेघर प्रव्रजित हो स्त्रियाँ अर्हत्त्व-फल को साक्षात् करने योग्य हैं, तो भन्ते! भगवती अम्बपाली इसके लिए सर्वथा सम्यग् उपयुक्त है।

कुछ देर अर्हन्त बुद्ध ने मौन रह कर कहा—"तो आनन्द, यदि सुश्री अम्बपाली आठ गुरुधर्मों को स्वीकार करे, तो उसे प्रव्रज्या मिले। उसकी उपसम्पदा हो।"

तब आनन्द भगवान् से इन आठ महाधर्मों को समझ, द्वारकोष्ठक पर जहाँ अम्बपाली फूले पैर, धूल-भरे शरीर और अश्रु-पूरित नयनों से खड़ी थी, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर अम्बपाली से कहा—"भगवती अम्बपाली यदि आठ महाधर्मों को स्वीकार करें, तो शास्ता तुम्हें उपसम्पदा देंगे, प्रव्रज्या देंगे।"

"भन्ते आनन्द, जैसे अपने जीवन के प्रभात में—मैं शिर से नहा कर उत्पल कर्षिक माला, या अतिमुक्तक माला को दोनों हाथों से चाव सहित अंग पर धारण करती थी, उसी प्रकार भन्ते आनन्द, मैं इन आठ गुरु धर्मों को स्वीकार करती हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवत् के निकट जा अभिवादन कर

कहा—"भन्ते भगवत्, भगवती अम्बपाली ने यावज्जीवन आठ गुरुधर्मों को स्वीकार किया है।"

"आनन्द, यदि स्त्रियाँ तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय में प्रव्रज्या न पातीं, तो यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता। सद्धर्म सहस्र वर्ष ठहरता। परन्तु अब, जब स्त्रियाँ प्रव्रजित हुई हैं, तो ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न होगा। सद्धर्म पाँच सौ ही वर्ष टिकेगा। जैसे बहुत स्त्री वाले और थोड़े पुरुषों वाले कुल, चोरों द्वारा, सेतट्ठिका द्वारा, अनायास ही सु-प्र-ध्वंस्य होते हैं इसी प्रकार आनन्द, जिस धर्म विनय में स्त्रियाँ प्रव्रज्या पाती हैं, वह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नही होता। जैसे आनन्द, संपन्न लहलहाते धान के खेत में सेतट्ठिका रोग-जाति पड़ती है, जैसे सम्पन्न ऊख के खेत में मंजिष्ट रोग-जाति पड़ती है, उसी प्रकार जिस धर्म विनय में स्त्रियां प्रव्रज्य लेती हैं, वह चिरस्थायी नहीं होता। इसी से आनन्द, जैसे कृषक पानी की रोक-थाम को मेड बाँधता है, उसी प्रकार मैंने भिक्षुणियों के लिए जीवन भर अनुल्लंघनीय आठ गुरुधर्मों को स्थापित किया है। तू सुश्री अम्बपाली को ला।"

तब आनन्द के साथ देवी अम्बपाली ने भगवान् के निकट आ परिक्रमा कर अभिवादन किया औरबद्धाञ्जलि सम्मुख खड़ी हो—

बुद्धं सरणं गच्छामि
संघ सरणं गच्छामि
धर्म्म सरणं गच्छामि

तीन महावाक्य कहे।

भगवत् न उसे प्रव्रज्या दी, उपसम्पदा की; और स्थिर धीर स्वर से कहा—"कल्याणी अम्बपाली, सुन। जिन धर्मों को तू जाने कि, वह स-राग के लिए हैं, वि-राग के लिए नहीं; संयोग के लिए हैं, वि-संयोग के लिए नहीं; जमा के लिए हैं विनाश के लिए नहीं, इच्छाओं के बढ़ने के लिए हैं, इच्छाओं के कम करने के लिए नहीं;, असंतोष के लिए हैं

सन्तोष के लिए नहीं; भीड़ के लिए है, एकान्त के लिए नहीं; अनुद्योगिता के लिए है, उद्योगिता के लिए नहीं; दुर्भरता के लिए है, सुरभता के लिए नहीं। तो तू अम्बपाली शुभे, एकांतेन जान, कि न वह धर्म है न विनय है; न शास्ता का शासन है।"

कुछ देर मौन रह कर भगवत् ने फिर कहा—"जा अम्बपाली, तुझे उपसम्पदा प्राप्त हो गई, अपना और प्राणी मात्र का कल्याण कर।"

'भगवत् अर्हन्त प्रबुद्ध बुद्ध ने इतना कह—उच्च स्वर से कहा—'भिक्षुओ, महासाध्वी अम्बपाली भिक्षुणी का स्वागत करो।"

फिर जयनाद से दिशाएँ गूँज उठी। अम्बपाली ने आँसू पोंछे, भगवत् सुगत की प्रदक्षिणा की, और भिक्षुसंघ के बीच में होकर पृथ्वी पर दृष्टि दिए वहाँ से चल दी। उसके पीछे ही एक तरुण भिक्षु ने भी चुपचाप अनुगमन किया। आहट पाकर अम्बपाली ने पूछा—"कौन है?"

"भिक्षु सोमप्रभ, आर्य!"

अम्बपाली बोली नहीं, रुकी भी नहीं, पीछे फिर कर एक बार देखा भी नहीं। एक मन्दस्मित की रेखा उसके सूखे होठों और सूझी हुई आँखों में भास गई। वह चलती चली गई। चलती चली गई॥

उस समय प्रतीची दिशा लाल-लाल मेघाडम्बरों से रंजित हो रही थी। उसकी रक्तिम आभा आम के नवीन लाल-लाल पत्रों को दुहरी लाली से रंगीन कर रही थी, ऐसा प्रतीत होता था, सान्ध्य सुन्दरी ने उसी क्षण माँग में सिंदूर दिया था।

समाप्त

भूमि

हिंदी कथा सोपान की पांचवीं पीढ़ी का शिलान्यास

यह उपन्यास लेकर मैं हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की पाँचवी पैडी का शिलान्यास कर रहा हूँ और इस मंगल अवसर पर सम्पूर्ण साहित्य-परिजन को बद्धांजलि अभिवादन निवेदन करता हूँ। मुझसे प्रथम हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की चार पैड़ियों का शिलान्यास मुझसे पूर्ववर्ती साहित्य-पुरुष सर्व-श्री गोपालराम गहमरी (१८९० ई०), देवकीनन्दन खत्री (१८९२ ई०), किशोरीलाल गोस्वामी (१९०६ ई०) और प्रेमचन्द (१९१७ ई०) ने किया। इनमें प्रथम तीन भारतेन्दु-युग के त्रिविध प्रभावकालीन हैं और चौथे प्रेमचन्द द्विवेदी-युग के साहित्य-पुरुष हैं। इन चारों साहित्य-पुरुषों ने अपने हाथों से हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की एक-एक पैड़ी का निर्माण किया, जिन पर तब से अब तक सैकड़ों साहित्य-चरण पड़े।

उपन्यास-धारा के तीन प्रवर्तक

सर्वश्री गोपालराम गहमरी, देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी उपन्यास की तीन पृथक्-पृथक् धाराओं के प्रवर्तक हैं। इन तीनों साहित्य-पुरुषों ने उपन्यास-क्षेत्र में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि की। भारतेंदु-काल के पूर्वार्द्ध में कुल चार ही उपन्यास प्रकाशित हुए थे। उसके बाद कुछ बंगला उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित हुए थे, जिनके कारण जनता की रुचि उपन्यास पढ़ने की ओर झुकी। इसी समय इन तीन उपन्यासकारों ने जासूसी, ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों की बाढ़ लगा दी। गहमरीजी ने २०५, खत्रीजी ने ४६ और गोस्वामीजी ने २५ उपन्यास लिखे। इन तीनों कथाकारों

की लेखनी के चमत्कार से हिन्दी बहुत अंश में सर्वसाधारण में पठनीय साहित्य की प्रतिनिधि भाषा हो गई।

गहमरीजी ने बासठ वर्ष एक ही कलम से लिखा। उन्होंने हिन्दी की तीन पीढ़ियाँ देखीं। इस हिसाब से ये हिन्दी के भीष्मपिता कहाने योग्य हैं। उन्होंने उपन्यास की जासूसी धारा का प्रवर्तन किया और इस धारा पर वे तीन पीढ़ियों तक अकेले ही बासठ वर्ष तक लिखते रहे। उनकी परम्परा में एक भी अनुगत साहित्य-पुरुष नहीं जन्मा। परन्तु उन्होंने अकेले ही २०५ उपन्यास लिखे। जब पहिले-पहिल उन्होंने जासूसी उपन्यास लिखने प्रारम्भ किए तो उनके प्रति लोगों में काफी अभिरुचि उत्पन्न हुई। इनके उपन्यासों की भाषा बिल्कुल बोलचाल की थी, और उसमें देहाती ढंग की कुछ ऐसी प्रचलित भाव-भंगियाँ थीं जिन्हें तत्कालीन पाठकों ने बहुत-बहुत पसंद किया। इन उपन्यासों में थोड़ा-सा बुद्धि-वैचित्र्य का मसाला भी रहता था और पात्रों के चरित्र, उनकी चालाकियाँ तथा कमजोरियाँ और घटनाएं कथावस्तु के प्रति उनकी क्रियायें, कुछ परिचित, कुछ कौतूहलपूर्ण और कुछ उत्तेजनात्मक ढंग पर होती थीं। इन सब कारणों से इन उपन्यासों की जन-साधारण में अच्छी खासी धूम मच गई थी। गहमरीजी में इस प्रकार के उपन्यास लिखते रहने की अद्भुत् सामार्थ्य थी। यद्यपि साहित्य की दृष्टि से ये उपन्यास कुछ मूल्य नहीं रखते थे, परन्तु निस्संदेह यह एक अद्भुत और आश्चर्य की बात है कि अकेला पुरुष एक ही कलम से बासठ वर्ष तक लिखता ही चला गया। इस दीर्घ काल में हिन्दी-साहित्य की अनेक शाखा-प्रशाखायें विकसित हुईं, परन्तु गहमरीजी का एक भी साथी नहीं उत्पन्न हुआ। वे अकेले ही अपनी चलाई हुई जासूसी उपन्यासों की परम्परा में कलम चलाते चले गये, और अन्त में उन्हीं के जीवन-काल में उनकी यह परम्परा समाप्त भी हो गई। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में निस्संदेह यह अपने ढंग की बिल्कुल निराली एक ही घटना है।

खत्रीजी ने ऐयारी-उपन्यास लिख कर अद्‌भुत लेखन-शक्ति का परिचय दिया। इनके उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि जो लोग हिन्दी-पुस्तकें नहीं पढ़ते थे वे भी हिन्दी सीखने की ओर कृत-संकल्प हुए। इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य ही था। रस-संचार, भाव-विभूति या चरित्र-चित्रण उनमें न आ पाया। वे एक प्रकार के घटना-प्रधान किस्से थे, जिनमें जीवन के विविध अंगों की अभिव्यञ्जना का सर्वथा अभाव था। इसी से इनकी रचनायें साहित्य-कोटि में नहीं गिनी जा सकीं। परन्तु उन्हें हिन्दी के अनगिनत पाठक उत्पन्न करने का श्रेय अवश्य प्राप्त है; और इस दृष्टि से वे उस युग के सभी ग्रन्थकारों के अग्रगण्य हैं।

गोस्वामीजी की रचना कुछ साहित्य-कोटि में आती है। उनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चरित्र, वासनाओं के अतिरंजित किन्तु आकर्षक वर्णन मिलते हैं। चरित्र-चित्रण की भी झलक कहीं-कहीं है। 'उपन्यास-वस्तु' की प्राप्ति पहिले-पहिल हिंदी-कथा-साहित्य में इन्हीं की लेखनी में प्राप्त हुई। इस दृष्टि से इन्हें हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार कहा जाना चाहिए।

इन तीनों उपन्यास-प्रणेताओं ने हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की जो एक-एक पैड़ी का निर्माण किया उन पर सर्वश्री गंगाप्रसाद गुप्त, अमृतलाल चक्रवर्ती, हरिकृष्ण जौहर, लज्जाराम महता, बृजनन्दन सहाय, बृजरत्न तथा जयरामदास गुप्त आदि साहित्य-जनों ने आरोहण किया।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द द्विवेदी-युग के परिपूर्ण उपन्यासकार तथा हिन्दी-कथा-साहित्य की पूर्णता के प्रतीक रहे। उनकी सब से बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी देश-प्रेम की भावना ने वासना का रूप धारण कर लिया था। एवं वासना ने ही उनमें तन्मयता और

भावावेश उत्पन्न कर दिया। इसी से उन्होंने छोटी बड़ी जो 'कथा-वस्तु' निर्मित की उनमें चरित्र विचार उत्क्रांति, विश्वदर्शन, प्रसाद और यथातथ्य के जो रेखा-चित्रबने उन सब पर देश-प्रेम की वासना का गहरा रंग रहा। प्रेमचन्द जिस युग में उत्पन्न हुए उसमें मनुष्य मनुष्य के निकट आ चुका था और विश्व सिमट कर मनुष्य के नेत्रों का विषय बन चुका था। विश्व में धर्म अर्थ राजनीति और समाज में उथल-पुथल मची हुई थी, परन्तु प्रेमचन्द विश्व का वह रूप देखने की सामर्थ्य रखते हुए भी उसे न देख पाये। उन्ही के सामने कुछ तरुण अपनी भाव-तूलिक लिए उन सब विराट् भावनाओं के चित्र हिन्दी कथा-भूमि में बनाने लगे थे, परन्तु प्रेमचन्द की भांति उनमें से किसी में भावना में वासना और आसक्ति नहीं उत्पन्न हुई थी। इसी से उनके चित्र कुछ बने नहीं कहीं रंक फीका हो गया, कहीं रेखायें अस्पष्ट और कहीं स्थूल हो गई। प्रेमचन्द की वासना यदि देश-भक्ति की अपेक्षा मानव-जनपद पर आवेशित होती तो प्रेमचन्द कदाचित् अपने युग के ही श्रेष्ठ उपन्यासकार न रह जाते, उनकी साहित्य-आयु बहुत बढ़ जाती। उन्होंने मानव-द्वन्द्व को बारम्बार छुआ भी, मानव-मूर्ति को चाव से घड़ा भी, पर उन सब में केवल मानव-कल्याण की भावना का ही दिग्दर्शन हो पाया। प्रेमचन्द जहाँ देशभक्ति के नशे में चूर रहे, वहाँ मानव-कल्याण के केवल हिमायती वकील ही रहे।

ऐतिहासिक उपन्यास

इधर हिन्दी-कथा-साहित्य के विकास के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये। इन ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों मेंश्री वृन्दावनलाल वर्मा अग्रगण्य रहे। उनकी रचनाएँ केवल उनके अध्ययन या चयन ही का प्रतिफल नहीं है उनमें उनकी प्रतिभा और तल्लीनता की गहरी छाप है, बिना ऐसी तल्लीनता के अतीतालोक के तमसावृत समुद्र-गर्भ से जीती जागती मूर्तियों को जैसी की तैसी ले आना हँसी-खेल नहीं है।

परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा इतिहास की सत्य-रेखाओं पर ही चले, इससे उनके उपन्यासों में इतिहास-रस की अपेक्षा इतिहाससत्य अधिक व्यक्त हुआ। इससे उनकी रचना मे भावना और तल्लीनता की अपेक्षा सतर्कता अधिक व्यक्त हुई। इसी से उनके उपन्यासों में इतिवृत्त की झलक दीख पड़ने लगी। इस कारण उनके उपन्यास हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं और पाठक पात्रों के सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख में आरोपित नही कर पाता तथा एक सहानुभूति-पूर्ण दर्शक मात्र ही रह जाता है।

इतिहास रस

यह प्रगट है कि ऐतिहासिक उपन्यास काव्य और कहानियो में जो ऐतिहासिक तथ्य होते हैं वे विशुद्ध ऐतिहासिक नही। उनमें बहुत कल्पना और विकृति मिली होती है। पाठकों को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि 'उपन्यास काव्य या कहानी को पढ़ कर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेंगे। ऐसी पुस्तकों में तो उन्हे इतिहास के स्थान पर केवल 'इतिहास-रस' ही की प्राप्ति होगी। भारतीय साहित्य में कभी रामायण और महाभारत इतिहास माने जाते थे, परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणाएँ उनकी इतिहास कहानी को स्वीकार नहीं करती। उनकी दृष्टि मे वे केवल काव्य ही है। वास्तव में ऐतिहासिक काव्यों, उपन्यासों और कहानियों का इतिहास की सीमा का उल्लंघन करने के कारण इतिहास-कुल से विच्छेद कर दिया गया है। यह केवल भारतीय साहित्य ही की बात नहीं है, पाश्चात्य साहित्य में भी ऐसा ही हुआ है। इतिहास के "विशेष सत्य" और साहित्य के भी "चिर सत्य" के सिद्धांतों पर यहाँ हम थोड़ा विचार करेंगे। 'चिर सत्य' ऐसे साहित्य का प्राण है। चिरन्तन मानव-समाज में चरित्र और परिस्थिति की जो विकृति होती है वही चिर-सत्य है। ऐसे कथानकों में साहित्यकार उसी चिर-सत्य को चित्रित करता है। इतिहास की विशिष्ट सत्य घटनाओं का उसे पूरा ज्ञान नहीं होता। होने पर भी वह जन-बूझ कर उनकी उपेक्षा

कर सकता है, क्योंकि उसका काम तात्कालिक घटनाओं की सूची देना नहीं, तात्कालिक समाज-प्रवाह का वेग दिखाना होता है।

यह कहा जा सकता है कि उसे ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहिले ऐतिहासिक विशेष सत्यों को जानना चाहिए। परन्तु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन में नहीं कर सकता, क्योंकि ऐतिहासिक विशेष सत्यों का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता, उनमें गवेषणा करने वाले विद्वानों के द्वारा नई-नई जानकारी होते रहने से निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास को चिर-सत्य के आधार पर—जिसमें गवेषणा की कोई गुञ्जायश नहीं—रचना करे; और ऐसी रचनाएँ जो साहित्य-संश्लिष्ट हैं और जिनका आरम्भ एक अनिर्दिष्ट रस है—अपने स्थान पर पूजित हों। साहित्य के आचार्यों ने नौ मूल रसों को साहित्य-सृजन में महत्त्व दिया है, परन्तु उनके सिवा कुछ अन्य 'अनिर्दिष्ट रस' हैं, जिनमें एक "इतिहास-रस" भी है।

जगत् में जीवन पाकर मनुष्य अनेक सुख-दुःखों की घाटियों को पार करता है। उसे अनेक बार रोना और अनेक बार हँसना पड़ता है। उसका अपना जो छोटा-सा सुख और दुःख है वह उसे बहुत बड़े रूप में दीख पड़ता है; क्योंकि वह उसी में अभिभूत हो जाता है। उस सुख-दुःख की समता में वह संसार की बड़ी घटनाओं को छायामात्र मानता है। एक नगण्य व्यक्ति भी जब राम, सीता, दमयन्ती, नल उपाख्यान में उनकी महती सम्पत्-विपत् की कहानी पढ़ता है तो वह उनकी समता अपने छोटे-से-छोटे सुख-दुःख से कर डालता है। उसे अपना ही सुख-दुःख भारी और बड़ा प्रतीत होता है। इसलिए उपन्यास या कहानी अथवा काव्य में जब वह विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन और उत्थान-पतन का ठीक ठीक वर्णन पढ़ता है तो उसके हृदय में रसावेश का प्रवाह हो जाता है जो उसके अतिनिकट आकर उसे आक्रान्त करता है।

उपन्यासों और कहानियों में जिन पात्रों के सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति और जीवन के साहसपूर्ण परिणामों की झांकी दिखाई जाती है वह प्रायः ऐसी होती है जिसमें जीवन का क्षोभ बन्धु-परिजन और कुछ घनिष्ट व्यक्तियों में ही समाप्त हो जाता है। इसी से पाठक उसे अपनी ही पारिवारिक सम्पत्ति विपत्ति समझ कर हर्ष-विषाद में डूब जाता है। परन्तु संसार में कुछ ऐसे पुरुष भी जन्मते हैं जिनके सुख-दुःख विश्व की महत् घटनाओं के साथ सम्बन्धित होते है, रक्त की नदियाँ बहती है। प्रलय की मेघ-गर्जना के समान महाकाल की नियति-परम्परा में उनका राग-विराग अंकित होता है। और कवि की भाव-कल्पना के सहारे जब उनकी कहानी मनुष्य के लिए ज्ञेय बन जाती है तो उसे देख सुनकर मानव लोक-भाव-विमोहित हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसे जातियों के इतिहास के निर्माता साहित्यकार यदि हमारे नेत्रों के सामने जीवित होते है तो अपने अल्प जीवन में उनका विराट् रूप हम नही देख सकते है। इसी से उन्हें उनकी यथार्थ प्रतिष्ठा-भूमि पर स्थापित भी नहीं कर सकते। उन्हें महाकाल की नियति के एक अंग मे देखने के लिए हमे उनसे दूर खड़ा रहना पड़ता है, इसी से अतीत में उनकी स्थापना होती है। और उन्हें अकेले नहीं, वे जिस बृहत् नाटक-अभिनय के एक पात्र थे उसके साथ देखते है। तब मालूम होता है कि विश्व-पथ पर मानव-कुल के ये महारथी किस अलौकिक कौशल और सामर्थ्य से काल के पहिये को घुमाते चले जा रहे हैं। उस समय कोटि-कोटि जनपद आवेशित होकर जीवन की क्षुद्र परिधि से क्षण भर के लिए मुक्त हो जाता है और उनसे वह अपने परिमित सुख-दुःख का मुकाबला नहीं कर सकता। तब वह तथाकथित अनिर्दिष्ट रस "इतिहास-रस" के स्वाद की एक बूंद का आनन्द प्राप्त करता है।

इस अनिर्दिष्ट 'इतिहास-रस' के उदय का एक और कारण भी है। इसमें रस का एक स्रोत मिश्रित है। वह साधारण भी है और

असाधारण भी। वह है नारी-प्रणय। जहाँ इतिहास-रस का प्रादुर्भाव होता है वहाँ प्रायः यही देखने को मिलता है कि हृदय-विप्लव के बाद राष्ट्र-विप्लव हुआ। इतिहास के अनेक असाधारण नरवरो ने नारी की माया के वशीभूत होकर जीवन-भंग किया है। मानव-कुल के जीवन के ऐसे करुण भग्नावशेषों से संसार-पथ भरा पड़ा है। लेखक जब जीवन-भंग की इन घटनाओं पर विप्रलम्भ-शृंगार और 'इतिहास-रस' का मिश्रण करके भैरव-संहार की भेरी बजाता है तो कोटि-कोटि जनपद उन्मत्त, उद्भ्रांत होकर लोट-पोट हो जाता है। अब कोई इसे प्रमाणों के प्रबल धक्के देकर हजार ऐतिहासिक भूलें निकालता फिरे, उसे भ्रान्त और विकृत कहता फिरे; पर कवि ने जिस 'इतिहास-रस' की सृष्टि की है वह इतिहास के लाख सत्य प्रकट होने पर भी फीका न होगा।

कथा-वस्तु

इस उपन्यास की कथा-वस्तु का आधार बौद्ध ग्रन्थों मे उल्लिखित वैशाली की गणिका अम्बपाली है। बहुत दिन हुए सम्भवतः अब से बीस बरस पहले मेरी दृष्टि इस गणिका मे सम्बन्धित एक बौद्ध उपाख्यान पर पड़ी[1] जिसमें इस बात का उल्लेख था कि गणिका अम्बपाली ने वैशाली में आने पर बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था और उस पर वैशाली के राजपुरुषों ने ईर्षा की थी। यह भी मैंने सुना कि वैशाली गणतन्त्र में एक ऐसा कानून था जिसके आधार पर राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को अविवाहित रखकर उसे वेश्या बना दिया जाता था[2]। इसी पर से मैने अपनी कल्पना के सहारे एक छोटी-सी कहानी उन्हीं दिनों में लिखी थी जो एक पत्रिका में छपी थी। इसके बाद अम्बपाली पर कई कहानी उपन्यास और लेख मेरे देखने में आए और मेरे मस्तिष्क में अम्बपाली को लेकर एक उपन्यास

---

१. महावग्ग—६।४।७

२. पवेणी पोथ्यकम्

लिखने की भावना जड़ कर बैठी। परन्तु यह काम सहज न था। फिर भी मैं इसकी वास्तविक कठिनाइयों से ठीक-ठीक अभिज्ञ न था। मैं उत्सुक और दत्तचित्त होकर बहुत दिन तक सोचता ही रहा समझ ही में न आ रहा था—कहाँ से प्रारम्भ करूँ, कैसे करूँ। सन्'३८ के शरद में मुझे एक श्रीमन्त की चिकित्सार्थ बिहार जाना पड़ा। मुझे हठ करके राजगृह ले गए। वहाँ यों तो हरी-भरी पहाड़ियों को छोड़कर कुछ भी न था। मैं कई दिन उन पहाड़ियों में भटकता और घण्टों गर्म जल के सोतों में सुखद स्नान करता रहा। परन्तु पता नहीं कौन-सी दैवी-प्रेरणा थी कि वहाँ रहते हुए मैं जागृत स्वप्न देखने लगा। मैं सब से आँख बचा किसी शिलाखण्ड की आड़ में बैठ जाता और सोचता रहता। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कोई ग्रन्थ मैं पढ़ रहा हूँ। अध्याय के अध्याय मेरी आँखों के सामने से गुजरने लगे। पत्तों की बातचीत प्रत्यक्ष कानों में सुनाई देने लगी। मुझे भय हुआ कि कहीं कोई जहरीली वस्तु खा लेने से मस्तिष्क में विकार तो नहीं हो गया है? दैव-योग से मैं जिस रोगी की चिकित्सार्थ गया था वह रोगी भी उन्माद-रोग-ग्रसित था। वह एकान्त में बैठा-बैठा बहुधा होंठ और आँखें हिलाता, हँसता, मुस्कराता और कभी-कभी चिल्ला-चिल्ला कर असम्बद्ध प्रलाप किया करता था।

मैं यह देखकर परेशान होने लगा कि मेरी भी ठीक उसी के जैसी दशा होने लगी थी। केवल चीखता चिल्लाता न था। अन्ततः यह सोच कर कि मै कदाचित् स्वस्थ नहीं हूँ मैंने जल्द से जल्द घर लौटने का निश्चय किया। घर आकर भी मेरी वही दशा रही। उन घाटियो में बसे हुए समृद्ध नगर, उनकी सेना, सम्पत्ति, वैभव, संस्कृति, संघर्ष दिन दिन सजीव होते गए। इसके साथ ही अम्बपाली की एक स्थिर मूर्ति का चित्र भी मेरे मस्तिष्क में अंकित होता गया। 'वैसोढ़' को मैं पहले ही देख आया था। उससे बहुत दिन पूर्व एलौरा और अजन्ता की

गुहाएँ देखी थीं। अब उनके स्त्री-चित्रों को मैं घण्टों देखकर अम्बपाली की उनमें व्यक्ति करने लगा। धीरे-धीरे अम्बपाली की एक लोकोत्तर मूर्ति मेरे मानस पर अंकित हो गई। तथाकथित उस प्राचीन कानून ने मुझे अम्बपाली का हिमायती बना दिया। मैंने साहित्य और शृंगार के रस में उस मूर्ति को डुबकियाँ दे-देकर उसे अपने साथ इस प्रकार अंगीभूत कर लिया कि एक दिन जब मैं शीतल-स्निग्ध चाँदनी में सोया हुआ था तो मैंने आकाश में वह उज्जवल सजीव मूर्ति स्पष्ट देखी। उसके होंठ हिलते हुए, आँचल हवा में फरफराता हुआ, नेत्र आवाहन करते हुए स्पष्ट मैंने देखे। मेरे शरीर के सम्पूर्ण जीवकोष कल्पना के वशीभूत हो गए और मैंने कहा—'नाचो अम्बपाली!' और अम्बपाली ने नाचा। मैंने इन्ही आँखों से उसे स्वच्छ नील गगन में चन्द्रमा के उज्ज्वल आलोक में नाचते देखा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं भी आकाश में ही उसके निकट पहुँच गया हूँ। मैं उसके श्वास से निकलते हुए सौरभ और नृत्य से झंकृत पैंजनियों की ध्वनि प्रत्यक्ष अनुभव करता रहा। एकाएक मुझे प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति गायब हो गई और मैं वेग से नीचे आ गिरा। सम्भवतः मेरे मुंह से चीख या शब्द निकला था और पत्नी ने उठकर मुझे सावधान किया था। मेरा सम्पूर्ण शरीर पसीने से तर था; और मैं समझ ही नही पा रहा था कि मेरी क्या हालत है; परन्तु यह मैं दृढ़तापूर्वक सैकड़ों बार कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि मैंने स्वप्न नहीं देखा था। मैंने जो कुछ देखा जागते हुए। सत्य! सब सत्य! उस समय दो बजे थे। यही समय मेरे साहित्य लेखन का है। मैंने तुरन्त उठकर उस नृत्य का वर्णन लिखा, जिसका संशोधन रूप इस उपन्यास में कलमबन्द है।

बस, यहीं से इस उपन्यास का लिखना प्रारम्भ हुआ। पर बड़ी ही धीमी गति से। थोड़े ही दिन में मेरा वह उन्माद समाप्त हो गया और फिर एक दो वर्ष तो मैंने इन कागजों को देखा ही नहीं। इसी बीच.

एक बार अहमदाबाद जाना हुआ। वहाँ गुर्जर भाषा के मार्मिक कथा-लेखक श्री धूमकेतु से मिलने गया। उन्होंने अपनी कहानियों का एक छोटा-सा संग्रह दिया। उसमें एक कहानी अम्बपाली से सम्बन्धित भी थी। उसे पढ़ते ही पुराना उन्माद रोग फिर उभर आया और इस बार घर लौटकर मैं इस उपन्यास में जुट गया। बहुत अध्ययन किया, बहुत मनन किया। उस दिन आकाश में नृत्य करती हुई अम्बपाली के जो नेत्र देखे थे वे जैसे मुझे आँखों से ओझल ही नही होने देते थे। मैं दिन मे तो लिखने पढ़ने का क्षण भर भी अवकाश नही पाता हूँ, रात को दो बजे से लिखता हूँ सो मैं स्पष्ट देखता था कि जब मै एकान्त निशा मे लिखना प्रारम्भ करता तो वे दोनों उज्ज्वल अविनश्वर नेत्र मेरे कन्धों के पीछे से झांक-झाक कर प्रत्येक अक्षर को पढ़ लेते थे। इससे मे इस उपन्यास को लिखते हुए कभी थका नहीं, कभी ऊबा नहीं ।

'४२' के जून में उपन्यास तैयार हो गया। अगस्त में जन अशान्ति हुई। उसी समय दो धूर्त मित्रों ने मेरा सान्निध्य प्राप्त करके मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। उस अशान्ति में वे मुझे अपने संरक्षण मे ले गये और दैवविशक्त से मुझे उनका उपकृत होना पड़ा। इसी समय मेरे इन हितैषी मित्रो ने इस उपन्यास की पूर्णहुति के उपलक्ष में एक भव्य समारोह का आयोजन कर डाला। अनेक साहित्य-जन पधारे, उपन्यास का संक्षिप्त सार और कुछ अध्याय पाण्डु-लिपि में से पढ़े गए। उनकी आलोचना प्रत्यालोचना हुई । मिठाइयाँ बाँटी गई। मुझे भी मिली ।

तभी से प्रकाशकों, सिनेमावालों और अनुवादकों के पत्रों, मुलाकातों और सौदों का ऐसा ताँता लगा कि दूसरा काम करना ही कठिन हो गया। परन्तु अभी में पाण्डु-लिपि में कुछ परिवर्तन किया चाह रहा था। इसी समय पाण्डु-लिपि के सम्बन्ध में कुछ भय के कारण उत्पन्न हो गए; और मैंने उसे लोगों को दिखाना तथा उसके सम्बन्ध

में बातें करना बिल्कुल बन्द कर दिया। परन्तु एक दिन अवसर पा ताला तोड़ कर यारों ने पाण्डु-लिपि चुरा ली।

बहुत पर फड़फड़ाए। पर सब व्यर्थ। विवश जैसे श्मशान से प्रिय-जन का विसर्जन करके लौट जाता है, उसी भांति इन भद्र मित्रों को नमस्कार कर उनके संरक्षण का आभार मान कर लौट आया। और दो वर्ष मैंने हस्ताक्षर करने के लिए भी लेखनी नही छुई। सब काम बन्द कर दिए। लोगों से मुलाकात भी बन्द कर दी। इन दो वर्षों में मैंने यह अनुभव किया कि मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद आँसू बन गई है; परन्तु वह रक्त में मिल कर शरीर के भीतर ही चक्कर काट रही है बाहर नहीं निकल पाती। लोगों ने समझा मेरी साहित्यिक मृत्यु हो गई। परन्तु काल की बलिहारी, काल पाकर विदग्ध-हृदय की जलन कम हुई, घाव पुरे, भावना अंकुरित हुई।

मैंने दुःसाहस करके दुबारा नए सिरे से यह उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में मुझे यह असाध्य प्रतीत हुआ। परन्तु वही शुक्र-नक्षत्र के समान उज्ज्वल आँखें मेरे साथ थी। उस दिन जैसे मैंने कहा था—'नाचो' उसी भांति वह आँखें कह रही थीं 'लिखो'। मैंने एक बार कहा था पर वे आँखें हर बार कहती थी। फिर लिखता कैसे नहीं? अन्ततः मेरी जड़ता दूर हुई। मैंने नए उल्लास से पुरानी त्रुटियों को यथाशक्ति दूर करते हुए उपन्यास का पुनर्लेखन प्रारम्भ किया। इस बार दो नई बातें सामने आई—एक तो राहुल सांकृत्या-यन का 'सिंह सेनापति' उपन्यास, दूसरा उनकी कहानी पुस्तक 'बोल्गा से गंगा'; इन दोनों पुस्तकों को पढ़कर मैं दंग रह गया। लेखक की भावसामर्थ्य का क्या बखान करूँ? दोनों ही पुस्तकों में कहानी कला तथा उपन्यास के साधारण गुण भी नहीं थे फिर भी ये दोनों पुस्तकें विशेषकर 'बोल्गा से गंगा' विश्व-साहित्य में शीर्षस्थानीय होने योग्य थी। विचारक जनों की विचारधारा को प्रबल धक्का मार कर उनके

विचारों के प्रवाह को पलट देने की सामर्थ तो मैंने इसी लेखनी के धनी में देखी। इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद मैंने जैन और बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन प्रारम्भ किया। उपन्यास-लेखन धीमा हो गया। परन्तु मैंने उसकी जल्दी नहीं की। मैंने यह ठान ली कि इस उपन्यास में मैं एक तरफ जहाँ मसीह से पूर्व पाँचवीं छठी शताब्दी की सम्पूर्ण धर्मनीति, राजनीति और समाजनीति का रेखा-चित्र खीचूं, वहाँ अपने अध्ययन और विचारों को भी प्रकट करता जाऊँ। अपनी बात को अधिक बल से कहने के लिए मुझे जैन बौद्ध-हिन्दू साहित्य तथा संस्कृत-साहित्य के साथ वैदिक-साहित्य, दर्शन, विज्ञान और मनोविज्ञान का भी अध्ययन करना पड़ा। अनेक अँग्रेजी और दूसरी भाषाओं के लेख और पुस्तकें भी पढनी पड़ीं।

वैशाली

लिच्छवियों की राजधानी वैशाली अथवा विशाला अत्यन्त प्राचीन काल में इक्ष्वाकु के पुत्र अथवा भाई नभाग के पुत्र विशाल राजा ने बसाई थी, ऐसा उल्लेख प्राचीन हिन्दू-ग्रन्थों में मिलता है[1]। पुराणो के आधार पर विशाला के राजवंश को दशरथ के समकालीन प्रमति तक खीचा जा सकता है। परन्तु विशाला के राजवंश का अन्त किस प्रकार हुआ और वह लिच्छवियों के गणतन्त्र की राजधानी किस प्रकार बनी इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वैशाली और लिच्छवियों के सम्बन्ध में बुद्ध ने बहुत से प्रशंसात्मक उद्गार प्रकट किए हैं जो कि बौद्ध-पाली ग्रंथों में संगृहीत हैं। यह नगरी महावीर की जन्मभूमि भी है। बौद्ध-ग्रन्थों में महावीर को "अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए"[2] कहा है। अन्य ग्रंथों में भी महावीर को वैशालिक कहा गया है[3]।

---

१. रामायण वाल्मीकि अ० ४५-९; वायुपुराण—८६-१६, २२ विष्णुपुरा०—४.१-१८।

२. सूत्र कृतांग १-२-३-२२। ३. उत्तराध्ययन—६-१७।

भगवतीसूत्र की टीका में अभयदेव ने वैशालिक का अर्थ ही महावीर किया है।[१] इस प्रकार इस नगरी के नाम पर ही महावीर का नाम वैशालिक प्रसिद्ध हो गया। ऐसा मालूम होता है कि वैशाली नगरी में उस समय कुण्ड-ग्राम और वाणिज्य-ग्राम इन दो नगरों का समावेश भी था। आज भी ये दोनों गाँव वानिया वसुकुण्ड नाम से आबाद हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैशाली का विस्तार धीरे-धीरे बढ़ता गया। बौद्ध ग्रन्थों से पता लगता है कि जन-संख्या बढ़ने से तीन बार कई गाँवों को सम्मिलित करके इस नगरी को विशाल किया गया जिससे उसका नाम वैशाली पड़ा[२]।

इस प्रकार तीन नगरों से मिल कर बने होने के कारण वैशाली को प्रसंगानुसार उन तीनों में से चाहे जिस किसी नाम से पुकारा जाता था। बौद्ध-परम्परा में भी वैशाली के तीन जिलों का उल्लेख है। वैशाली दक्षिण-पूर्व में, कुण्डपुर उत्तर-पूर्व और वाणिज्य-ग्राम पश्चिम में। कुण्डपुर के आगे उत्तर-पूर्व में एक 'कोल्लाग' नामक सन्निवेश था, उसमें अधिकतर ज्ञातृ-क्षत्रियों की बस्ती थी। इसी लिए उसे 'नाय-कुल' अर्थात् ज्ञातृ वंशीय क्षत्रियों का घर (कोल्लाए संनिवेसे नायकुलंसि) कहा जाता था[३]। इसी कोल्लाग संनिवेश के पास ज्ञातृवंशी क्षत्रियों का द्युतिपलाश नामक एक उद्यान और चैत्य था[४]। इसे ज्ञातृवंशियों का उद्यान कहते थे ("नाय-सण्ड-वणे उज्जाणे" अथवा "नाय-सण्डे-उज्जाड़े")। आचारांग[५] में "उत्तर-क्षत्रिय-कुण्ड-पुर-सन्निवेश" अथवा

---

१. भगवतीसूत्र—२-१-१२-२।
२. मज्झिम निकाय अठ्ठकथा महासिंहनाद सुत्त वण्णना।
३. उपासक दशासूत्र—१-६ (हार्नल का अँग्रेजी अनु० पृ० ५)।
४. विपाक सूत्र—१।
५. आचारांग—२-४-२२।

"दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्ड-सन्निवेश" का उल्लेख है इससे प्रतीत होता है कि कुण्डपुर-सन्निवेश के दो भाग थे, जिसमें उत्तरीय भाग में क्षत्रिय (सम्भवतः ज्ञातृ) और दक्षिणी भाग में ब्राह्मणों की बस्ती थी। कल्पसूत्र में क्षत्रिय-कुण्ड-ग्राम-नगर और ब्राह्मण-कुण्ड-ग्राम-नगर ऐसा उल्लेख है। इसका अभिप्राय भी हमें पूर्व-वर्णित कुण्ड-ग्राम-नगर का उत्तर का क्षत्रिय-विभाग और दक्षिण का ब्राह्मण-विभाग ध्वनित होता है। तिब्बत से प्राप्त ग्रन्थों में बुद्धकालीन वैशाली में सोने के कलश वाले सात हजार महल और चाँदी के कलश वाले चौदह हजार महल तथा ताँबे के कलश वाले इक्कीस हजार घरों का उल्लेख है। इन तीन पृथक्-पृथक् महलों में अनुक्रम से उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ कुल के लोग रहते थे। इसका आभास उपासक-दशा-सूत्र में हमको मिलता है।

हमने पीछे बताया है कि बुद्ध को वैशाली बहुत प्रिय थी। महा-परिनिव्वाण सुत्तन्त में लिखा है कि बुद्ध जब अपने जीवन में अन्तिम बार वैशाली से चले तो बारम्बार पीछे फिर-फिर कर नगर की ओर देखने लगे। (नागापलोकितं वैसालीयं अपलोकेत्वा) उस समय उन्होंने आनन्द से कहा था कि "आनन्द, इस बार तथागत वैशाली को अन्तिम बार देख रहा है।" जब बुद्ध के दर्शन के लिए लिच्छवि सजधज कर वैशाली से निकलते थे तब उन्हें देख कर एक बार बुद्ध ने कहा था— "हे भिक्षुओ! तुमने देवताओं को तो अपनी नगरी से निकलकर उद्यान म आते हुए कभी नहीं देखा। परन्तु इन वैशाली के लिच्छवियों को देखो जो समृद्धि और ठाठ-बाट में उन देवताओं के ही समान हैं—सोने के छत्र, स्वर्ण-मण्डित पालकी, स्वर्ण-जटित रथ और हाथियों सहित य लिच्छवि। देखो, आबाल-वृद्ध सब विविध आभूषण पहने और विविध रंग रंजित वस्त्र धारण किए हुए सुन्दर वाहनों पर चले आ रहे हैं।" एक बौद्ध ग्रंथ में लिखा है कि यह वैशाली महानगरी अतिसमृद्धि, सुरक्षित, सुभिक्ष, रमणीय, जनपूर्ण, सम्पन्न गृह और हर्म्यों से अलंकृत पुष्प-

वाटिकाओं और उद्यानों से प्रफुल्लित मानो देवताओं की नगरी से स्पर्धा करती है।

जैन-धर्म के प्रवर्तक महावीर का जन्म वैशाली में हुआ था यह हम कह चुके हैं। तीर्थंकर होने के बाद उन्होंने अपने बयालीस चातुर्मासों में से बारह वैशाली में व्यतीत किए थे।

यह वैशाली वर्तमान तिरहुत में मुजफरपुर से कुछ दूर, राजगृह से कोई ४० क्रोश के अन्तर पर थी।

ईस्वी सन् से पूर्व सातवी शताब्दी के लगभग गंगा के उत्तर कूल पर लिच्छवियों का एक समर्थ गण सत्तात्मक राज्य था। जिसके पूर्व में वन्य प्रदेश, पश्चिम में कोशल देश और कुसीनारा तथा पावा—जो मल्लों के गण-राज्य थे। दक्षिण में गंगा और गंगा के उस पार मगध-साम्राज्य था। उत्तर में हिमालय की तलहटी में आया हुआ वन्य प्रदेश था। इस राज्य की राजधानी वैशाली थी।

लिच्छवि

लिच्छवियों की परम्परा के सम्बन्ध में अनेक मत हैं, कुछ लोग उन्हें इक्ष्वाकु सूर्यवंशियों का वंशज कहते हैं। बौद्ध-ग्रंथों में लिच्छवियों को बुद्ध आदि ने 'वासिष्ठ' कह कर सम्बोधित किया है। वसिष्ठ सूर्य-वंशी इक्ष्वाकुओं के कुल-गुरु थे। नैपाल की वंशावलि में भी उन्हें सूर्यवंशी कहा है, किन्तु स्मृतियाँ उन्हें व्रात्य-संकर बताती हैं।[1]

जैन-ग्रन्थों में लिच्छवियों के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट बात नहीं कही गई। यद्यपि जैन-धर्म के महान् प्रवर्तक महावीर श्रमण लिच्छवीकुल में उत्पन्न हुए थे। जैन-ग्रन्थों के आधार पर महावीर श्रमण की माता वैशाली के गण-प्रमुख राजा की बहिन कही गई है, परन्तु महावीर श्रमण को

---

१. मनु आदि जिनका सप्रमाण उल्लेख अन्यत्र है।

जैन-ग्रन्थों में लिच्छवि न कह कर 'ज्ञातिपुत्र' 'विदेहदत्ता का पुत्र' 'विदेह का राजकुमार' 'वैशालिक' 'ज्ञातृ-क्षत्रिय' आदि नामों से पुकारा गया है[1]।

यह बात विचारणीय है कि जैन बौद्ध धर्मोदय के पूर्व अर्थात् मसीह से पूर्व ५ वीं ६ ठी शताब्दी से उधर के किसी प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ में लिच्छवियों का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु उनके पड़ोसी मल्लों का उल्लेख महाभारत[2] में पाण्डवों के समकालीन के रूप में आया है।

यह कहा जाता है कि वैशाली का गण-राज्य विदेह-राज्य के भंग होने पर संगठित हुआ। जैन और बौद्ध धर्मोदय से पूर्व के उपनिषद्-काल में विदेह-राज जनक की कीर्ति और ठाठ-बाट का खूब बढ़ा चढ़ा वर्णन और भारी यशोगाथा है।

ऐसा मालूम होता है कि उपनिषद्-काल में—जो हमारी दृष्टि से जैन बौद्ध धर्मोदय काल से एकाध शताब्दी पूर्व ही था—जनक की कीर्ति अच्छी तरह देश-देशान्तरों में फैल चुकी थी। कोशल और कुरु पांचाल देश के अनेक विद्वान् ब्रह्मवेत्ता राजा जनक की सभा में आकर ब्रह्मवाद पर तर्क किया करते थे[3]। ये राजा जनक परिपूर्ण ब्रह्मवादी होने पर भी यज्ञ-विधियों का बड़ा भारी ज्ञाता था। जिसका उल्लेख शतपथ-ब्राह्मण में हमको अत्यन्त मनोरंजक ढंग से मिलता है[4]।

ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरु राजाओं को तो 'राजा'[5] लिखा गया है परन्तु उपनिषदों में जनक को सम्राट् कहा गया है। शतपथ[6] ब्राह्मण के आधार पर सम्राट् का पद राजाओं के ऊपर था। इस बात का कोई

---

१. आचारांग सुत्त और कल्पसूत्र—
२. महा० सभापर्व ३०-३, भीष्मपर्व ९-४६।
३. बृहदाण्यकोपनिषद् तीसरा खण्ड।
४. शतपथ ब्राह्मण ११-४-५-११-६-२१।
५. ऐतरेय ब्रा० ८-१४।
६. शतपथ ५-१-१-१३।

स्पष्ट उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता कि इतना समृद्ध और उन्नत एवं संस्कृति का प्रतिनिधि विदेह-राज्य कैसे नष्ट हो गया और किस प्रकार लिच्छवियों के गणसंघ में मिल गया। ललितविस्तर[१] के अनुसार विदेह का अन्तिम राजा सुमित्र था। इसके बाद विदेहराज लिच्छवियों के राज्य के साथ मिल गया।

मज्झिमनिकाय के मखादेवसुत्त के आधार पर निमि के पुत्र कलार के समय में विदेह-राजवंश का अन्त हुआ। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र के आधार पर विदेह के राजा कराल ने एक ब्राह्मण-कुमारी के ऊपर अत्याचार किया था, इसी से राजा और राज्य का नाश हो गया। विदेहराज की समृद्धि के विषय में कहा गया है कि इस राज्य का विस्तार तीन सौ लीग था और उसमें सोलह हजार गाँव लगते थे[२]।

बुद्ध ने लिच्छवियों की प्रशंसा करते हुए कहा था—

"हे भिक्षुओ, आज लिच्छवि प्रमाद-रहित और वीर्यवान् होकर व्यायाम करते हैं, इससे मगध का राजा उनके मर्म को समझ कर उन पर चढ़ाई करते हुए डरता है। हे भिक्षुओ, भविष्य में लिच्छवि सुकुमार हो जायेंगे और उनके हाथ पैर कोमल और सुकुमार बन जायेंगे। वे आज लकड़ी के तख्त पर सोते हैं फिर वे रुई के गद्दों पर सूर्योदय होने तक सोते रहेंगे तब मगधराज उन पर चढ़ाई कर सकेगा[३]।

"हे आनन्द, लिच्छवि बारम्बार सम्मेलन करते हैं और इन सम्मेलनों में सभी इकट्ठे होते है, एक साथ बैठते हैं, एक साथ उठते हैं और एक साथ काम करते हैं। जो नियम-विरुद्ध है वह काम नही करते, जो नियम-सम्मत है उसका विच्छेद नहीं करते। अपने पूर्वजों के प्राचीन

---

१. ललितविस्तर अ० ३।
२. सुरुचिजातक ४७९-४०६।
३. ओपम्भ संयुत्त व० १, सू० ५।

धर्म में चले आते हैं, वृद्धों का सत्कार करते हैं, उनकी प्रतिष्ठा करते हैं, उनको पूजते हैं और उनकी आज्ञा मानते हैं। कुल-कुमारियों और कुल-स्त्रियों का हरण नहीं करते, न उन पर बलात्कार करते हैं। अपने भीतरी और बाहरी चैत्यों को मान-सत्कार से पूजते हैं और पूर्व-परम्परा के अनुसार धार्मिक बलि देने में असावधानी नहीं करते। अर्हन्तों के रक्षण और आश्रयण के लिए वे व्यवस्था रखते हैं। हे आनन्द, वे जब तक ऐसा करते रहेंगे उनकी उन्नति होगी, अवनति नहीं[1]।"

इन उद्धरणों से लिच्छवियों के व्यक्तित्व और चरित्र एवं आचार-विचार पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। बुद्ध को और बौद्ध-संघ को उन्होंने कितने ही चैत्य आराम-शाल्मएँ और वन अर्पण किए हुए थे, जिनमें कूटागारशाला, चापाल-चैत्य, सप्ताम्र-चैत्य, बहुपुत्र-चैत्य, गौतम-चैत्य, कपिनैह-चैत्य, मरकट-हृद-तीर-चैत्य, आम्रपाली का आम्रवन और बालिका आराम आदि प्रमुख हैं। बुद्ध वहाँ निरन्तर जाते आते और लोगों को उपदेश देते रहते थे। यद्यपि इस बात का कोई स्पष्ट उल्लेख हमें नही मिलता कि बुद्ध और महावीर से प्रथम अपने चैत्यों में लिच्छवि किसकी पूजा करते थे। परन्तु लिच्छवियों का यह गण विदेहराज जनक से सम्बन्धित था इसलिए इस राज्य में यज्ञ-याग और वैदिक-उपासना एवं उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्मोपासना भी प्रचलित थी। महावीर और बुद्ध के प्रभाव से बहुत से जैनोपासक और बौद्धोपासक गृहस्थ और भिक्षु हो गए थे। वज्जी-राजाओं के कुल में अञ्जनवनीय, वज्जीपुत्त, सम्भूत, महालि, अभय, समन्दक, उग्र, साल्ह, नन्दक, भद्रिय आदि भद्र लिच्छवि नागरिक और जेन्ता, वासिट्ठि आदि महिलाओं का उल्लेख है।

---

१. महापरिनिब्बाण सुत्त।

आगे चलकर यद्यपि लिच्छवियों का गण-राज्य नष्ट हो चुका था परन्तु उनके कुल की प्रतिष्ठा एक हजार वर्ष तक कायम रही। ईस्वी सन् ४ में समुद्रगुप्त मौर्य ने अपने को बड़े गर्व से 'लिच्छवि दौहित्र' कहा था। परन्तु यह बात विचारणीय है कि महावीर का जन्म वैशाली में और लिच्छवि-कुल में होने पर भी वैशाली का कोई खास वर्णन जैन-ग्रन्थों में नहीं दीख पड़ता। उत्तरकालीन मसीह के पाँचवीं शताब्दी में संकलित सूत्र उपासकदशा ग्रन्थों में वाणिज्य-ग्राम और वैशाली का राजा अजितशत्रु कहा है, परन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थ में उसे विदेह की राजधानी मिथिला का राजा बताया गया है[1]।

गण-राज्य-पद्धति

लिच्छवियों के राज्य में गणसत्ता पद्धति से राजव्यवस्था चलती थी और इस राज्य में वंशपरम्परा से चला आता कोई राजा न था। सब राजसत्ता नागरिकों के 'गण' अथवा 'संघ' के हाथ में थी, परन्तु इस गण का प्रत्येक सभ्य अपने को 'राजा' कहता था[2]। ये सब संथागार नामक सार्वजनिक राजभवन में एकत्रित होकर राज्य-व्यवस्था

---

१ विन्सेन्ट स्मिथ लिच्छवियों को मूलतः तिब्बत निवासी बताता है। हडसन उन्हें शक कहता है। उनके आचार-विचार आस-पास के क्षत्रियों के कुलों से सर्वथा भिन्न थे। न वे वेदों में श्रद्धा रखते थे न ब्राह्मणों में। न वे वर्णव्यवस्था मानते थे। वे यक्ष-प्रतिमा पूजते थे तथा मुर्दों को जंगल में फेंक आते थे। वे उत्कृष्ट योद्धा धनुर्धारी तथा शिकारी थे। शिकार में कुत्तों को साथ रखते थे। शत्रु उन्हें क्रर कहकर पुकारते थे। सार्वजनिक स्त्रियों का वे खुल्लमखुल्ला उपयोग करते। उनके साथ उद्यानों में विहार करते तथा स्त्री के लिए घातक युद्ध कर डालते थे। उनका प्राचीनतम मान्य पवित्र ग्रन्थ पर्वणीपोथ्यकम्

२. ललितविस्तर–लफ मैन पुस्तक १, पृ० २१।

तथा सामाजिक और धार्मिक निर्णय करते थे। वयस्क होने पर प्रत्येक लिच्छवि-कुमार अपने पिता का पद गणराज-सत्ता में ग्रहण करता था और तब उसे केवल एक बार अभिषेक पुष्करिणी के जल से उसका अभिषेक किया जाता था[१]। कोटिलीय अर्थशास्त्र में लिच्छवियों के संघ को 'राजशब्दोपजीवी' कहा है। महावस्तु-संग्रह ग्रन्थ में लिखा है कि वैशाली में १ लाख ६८ हजार राजा रहते थे[२]। विनयपिटक के अनुसार वैशाली अत्यन्त समृद्धिशाली और धन-जन से परिपूर्ण थी। उसमें ७७७७ प्रासाद ७७७७ कूटागार और ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं[३]। भिन्न-भिन्न राजकाज के छोटे-बड़े कामों के लिए भिन्न-भिन्न पदाधिकारी नियुक्त थे। जैसे अपराधी का न्याय करने के लिए अनुक्रम से राजागण विनिश्चय महामत्र, व्यावहारिक सूत्रधार, अष्टकुलक, सेनापति, उपराजा और राजा इतने अधिकारियों के मण्डलों के पास अपराधी को ले जाया जाता था[४]। महत्त्वपूर्ण विषयों के निर्णय के लिए आठ या नौ व्यक्तियों की व्यवस्था-समिति भी चुनी जाती थी। लिच्छवियों के संयुक्त राज्य में जिन आठ कुलों के गण थे उनमें प्रत्येक कुल से एक-एक प्रतिनिधि लेकर आठ जनों की यह व्यवस्था-परिषद् नियुक्त की जाती थी जो सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था करती थी। जैन-ग्रन्थों में लिखा है कि युद्ध जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में नौ लिच्छवियों की व्यवस्थापिका सभा बुलाई जाती थी[५]। लिच्छवियों के नौ या आठ गणों में किन-किन संघों व वंशों का समावेश होता था यह कहना कठिन है, परन्तु सूत्रकृतांग के आधार पर राज्य की परिषद् में भोगवंशीय, ऐक्ष्वाकु-

---

१. भट्टसाल जातक।
२. महावस्तुग्रन्थ १-२७१।
३. विनयपिटक महावग्ग ८-१-१।
४. महापरिनिव्वाण सुत्त।
५. निरयावलि सूत्र, कल्पसूत्र, भगवतीसूत्र।।

वंशीय, ज्ञातृ-वंशीय, कौरव-वंशीय, लिच्छवि-वंशीय और उग्र-वंशीय जनों का उल्लेख है[१]।

इस प्रकार की गणसत्तात्मक पद्धति, ऐसा मालूम होता है, प्राचीन काल से प्रचलित थी। ऋग्वेद[२] में ऐसा आभास मिलता है—"जिस प्रकार राजा लोग समिति में एकत्रित होते हैं।" इससे अनुमान होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में ऐसी राज्य-पद्धति संगठित हो गई थी कि राष्ट्र राजवंश के अनेक सभ्यों के एकत्र अनुशासन में होते थे। कौटिल्य के काल में तो लगभग सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में ऐसे गण-राज्य फैले हुए थे। पूर्व की ओर वज्जी, लिच्छवि और मल्लकों के गण-राज्यों को वह गिनाता है, मध्य में कुरुओं और पांचालों के, उत्तर-पश्चिम में मद्रकों के और दक्षिण-पश्चिम में कुकरों के। सम्भवतः इन गण-राज्यों को गिरा कर ही उसने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। यहाँ पर एक विचारणीय बात यह है कि बौद्ध ग्रन्थों में लिच्छवि और वज्जी इन दोनों को एक ही माना है[३]; परन्तु कौटिल्य इन दोनों को पृथक्-पृथक् बताता है।

हयूनसांग[४] ने भी वज्जी देश को वैशाली से पृथक् माना है। सम्भव है कि सम्पूर्ण संघ वज्जी कहलाता हो और लिच्छवि उनमें से एक का नाम हो।

जिस काल का वर्णन हमारे उपन्यास में है, अर्थात् बुद्ध के जीवन-काल में भारत तीन बड़े भागों में बँटा हुआ था। इनमें बीच का भाग

---

१. सूत्रकृतांग (श्रुत २-१) आचारांग १-२।

२. ऋग्वेद १०.९.१६।

३. अगुत्तरनिकाय, पंचकनिपात।

४. वाटरस २.८१।

देश के तीन मुख्य भाग

'मज्जिम देश' कहाता था। जातकों में इसका उल्लेख है। मनुस्मृति इसे मध्यम देश कहती है[1]। वह इसकी सीमा हिमालय और विन्ध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है उसे मध्य देश कहते हैं। इस मध्य देश का उत्तर भाग उत्तरापथ और दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहलाता था।

सोलह राज्य महाषोडश जनपद

उत्तर भारत में सोलह राज्य थे। १. कासी २. कोसल ३. अंग ४. मगध ५. वज्जी ६. मल्ल ७. चेतिय ८ वत्स ९. कुरु १०. पांचाल ११ मत्स्य १२. शूरसेन १३. अस्सक १४. अवन्ति १५. गन्धार १६. काम्बोज। ये सब सोलह महाजनपद कहाते थे। ये देशों के नाम नही जातियों के थे। जैन-ग्रंथों[2] में भी लगभग यही सूची है। काशी का विस्तार दो सहस्र वर्ग मील था, यह 'कासीरट्ठ' (काशीराष्ट्र) कहाता था। कोसल की श्रावस्ती वर्तमान गोंडा और बहराइच जिला की सीमा पर 'सहेथ-महेथ' ग्राम के स्थान पर थी। कासी और साकेत पर भी कोसलों का अधिकार था और शाक्य संघ इन्हें अपना अधीश्वर मानता था। हिरण्यनाभ कोसल, सेतव्य नरेश और ययाति इन्हें अधिपति मानते थे। यह महाराज्य दक्षिण में गंगा और पूर्व में गंडक नदी को स्पर्श करता था। बुद्ध से कुछ पहिले कोसल राजधानी साकेत हो गई थी।

अंग राज्य मगध के पूर्व में उससे सम्बद्ध था। चन्दन नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। इसकी राजधानी चम्पा थी। जिसका स्थान

---

१. मनु० अ० २, श्लो० २१

२. अंगुत्तरनिकाय

३. भगवती सूत्र

भागलपुर के निकट कहा जाता है। यहाँ से जहाज स्वर्णभूमि तक जाते थे[१]। अंगवैरोचन वहाँ के प्रतापी राजा थे, उनके पुत्र दधिवाहन की कन्या महावीर की सर्वप्रथम स्त्री-शिष्या थी[२]।

मगध में वर्तमान पटना और गया दोनों जिले थे। गिरिव्रज या राजगृह राजधानी थी। यहाँ का प्रथम राजा प्रमगंड कीकट था[३]। निरुक्तकार यास्क उसे अनार्य कहता है[४]। अभिधानचिन्तामणि में कीकट मागधों को कहा है। प्रथम मागध बुरे थे। शोरवाषण आरण्यक में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी। महाभारत में मगधपति बृहद्रथ आए थे। उस काल इसमें ८० हजार गाँव लगते थे, यह महाराज्य बुद्धकाल में गंगा, चम्पा, सोन नदियों के बीच में था। इसकी परिधि २३०० मील थी[५]।

वज्जीगण-तन्त्र और वैशाली का वर्णन आ चुका है, इस गणराज्य का विस्तार २३०० वर्ग मील बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर था। मल्ल-संघ के दो भाग थे, जिनकी राजधानियाँ कुशीनारा या कुशावती और पावा थीं। चीनी यात्री हचूनसांग के कथनानुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्य के पूर्व वज्जी के उत्तर में था परन्तु कुछ लोग उसे वज्जी के पूर्व और शाक्य के दक्षिण में बताते हैं। कुशीनारा कसिया के निकट था, पावा वर्तमान पड़रौना है। भागनगर, उलूपिया और उरुवेल-कण्य भी मल्लों के नगर थे। पीछे मगध ने मल्लों को भी जीत लिया था।

---

१. जातक (५४५)।

२. ऐतरेय ब्रा० (VIII २२) महागोविन्द सुत्तंता।

३. ऋग्वेद ३।५३।४।

४. निरुक्त ६।३२।

५. रिज डेविड्।

चेतिय-राज्य के दो उपनिवेश थे[१]—एक नैपाल में, दूसरा कौशाम्बी के पूर्व। पुराना चेदि बुन्देलखण्ड तथा निकट के देश में था जो नर्वदा तट तक फैला था। राजधानी सुक्तिमती थी।[२] कासी और चेतिय के मार्ग में डाकू बहुत थे।[३]

वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी । जो आज कोसम कहाती है और प्रयाग के निकट ३० मील दूर दक्षिण की ओर यमुना नदी के किनारे पर वर्तमान कोसम ग्राम के पास थी रामायण[४] और महाभारत[५] के आधार पर चेदि राज्य ने कौशाम्बी बसाई । भर्ग राज्य वत्स का करद था।[६]

जातकों में (इंदपट्ठ) इन्चेप्रस्थ पर युधिष्ठिर के वंशजो का राज्य इस काल में बताया जाता है तथा धनञ्जय, क्षुतसोम और कौरव्य राजाओं के नाम बताए हैं । राष्ट्रपाल कौरव राजा था। कुरु देश के इथुकार नगर में इशुकार राजा रहता था।[७] कौटिल्य अपने काल में कुरु देश में संघ-राज्य बताता है। उसका फैलाव २००० मील था।

पांचाल का राजा चूलनि ब्रह्मदत्त का कथन बौद्ध तथा हिन्दू ग्रंथों में मिलता है।[८] कौटिल्य यहाँ भी गण-राज्य बताता है । ऋच्यान बौद्ध शूरसेनों के राजा अवन्तिपुत्त का वर्णन करता है । काव्यमीमांसा में शूरसेनों के राजा का नाम कुविन्द लिखा है, मेगस्थनीज भी शूरसेनों का उल्लेख करता है। इनका राज्य मथुरा में था । इसके दो विभाग थे—उत्तर पांचाल तथा दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल की राजधानी कांपिल्य (कपिल) थी, दक्षिण पांचाल की कन्नौज । प्राचीन कांपिल्य

---

१. जातकों में चेतियरट्ठ (चेतिय राष्ट्र) लिखा है।
२. चेतिय जातक ३. जातक ४८।
४. रामायण ३२-३-६। ५. महाभारत ६२-३१।
६. जातक ३५३। ७. उत्तराध्याय सूत्र।
८. जातक (५४६) उत्तराध्याय सूत्र, स्वप्नवासवदत्ता, रामायण ।

नगर गंगा किनारे वर्तमान बदायूं और फर्रुखाबाद के बीच मे था।

अस्सक या अश्मक को बौद्ध ग्रंथ गोदावरी के निकट बताते हैं।[१] पाणिनि उन्हे दक्षिण प्रांत मे कहता है।[२] यह जाति उत्तर-पश्चिम में भी थी, जिसे ग्रीक इतिहासकारों ने 'असिकनोई' कहा है। महाभारत में भी अश्मकपुत्र का उल्लेख है।[३] उनकी राजधानी पोतन या पातलि थी। महाभारत में 'पौदन्य' नाम दिया है। मूलक इससे दक्षिण में था। अश्मको ने मूलक और कलिग को विजय किया था।[४] ब्रह्मदत्त—अस्सकराज, सत्तभु—कलिगराज, वैस्सभु—अवन्तिराज, भरत—सौवीर-राज, रेणु—विदेहराज, धत्तरथ—काशिराज समकालीन है।[५] कलिग को अस्सकराज अरुण ने जय किया था।[६]

अवन्ति के मन्त्री ने वीति होत्र राजा को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया था जो अपने क्रोधी स्वभाव के कारण 'चण्ड प्रद्योत' कहाया। अवन्ति-राज्य के दो विभाग थे, इसका उत्तरी भाग 'अवन्ति' कहलाया और उसकी राजधानी उज्जैन थी तथा उसका दक्षिणी भाग अवन्ति दक्षिणापथ कहाता था और उसकी राजधानी माहिस्सती (माहिष्मती) थी, पीछे यह राज्य मगध म मिल गया था। मसीह पूर्व छठी शताब्दी मे गान्धार-पति 'पुक्कणाति' थे जिन्होंने बिम्बसार मागध को पठौनी भेजी थी और युद्ध में प्रद्योत को हराया था। गान्धार में पूर्वी अफगानिस्तान और उत्तरी पश्चिमी पंजाब था। राजधानी (तक्कसिला) तक्षशिला थी[७]। यह नगरी आजकल के पश्चिमी पंजाब

---

१. सुत्तनिपात ९७७। २. (१, ३७३)।
३. महाभारत—द्रोणपर्व।
४. वायुपुराण ८८, १७७—८।
५. महागोविन्द सुतत्त।
६. चुल्ल-कलिंग जातक।
७. कुम्भकार जातक।

रावलपिण्डी जिले के सराय-काला नामक स्टेशन के पास थी ।

काम्बोज प्रांत उत्तरापथ में गान्धार के निकट था । राजपूर राजधानी थी । हयूनसांग राजपूर को पूंच के दक्षिण या दक्षिणपूर्व में बताता है। इसकी पश्चिमी सीमा काफिरस्तान से मिली थी । यास्क काम्बोजों को भारतीय आर्यों से पृथक् कहता है, जातक उनमें जंगली रीति-रिवाज बताते है। हयूनसांग भी यही कहता है । नन्दिनगर उनका समृद्ध नगर था । चन्द्रवर्मन और सुदक्षिण काम्बोज राजा महाभारत में आये थे । तब वहाँ राजशक्ति थी—पर कौटिल्य वहाँ संघ-शक्ति बताता है राजधानी द्वारिका।[1]

बुद्ध काल में ये सोलहों राज्य वर्तमान न थे । कुछ लुप्त हो चुके थे; पर अंगुत्तर और विनय में नामावलि सोलह राज्यों की है । दक्षिणी राज्यों का उल्लेख इनमें नही है । बौद्ध ग्रंथों म पैठण या पतित्थान का नाम है जो आन्ध्रों की राजधानी थी, दक्षिणापथ का नाम बौद्ध साहित्य में तथा महाभारत में है।

निकाय देश मे कलिंग के वन का उल्लेख है । दूर देश की समुद्र यात्राओं और जहाज चलने का भी वर्णन है । कलिंग की राजधानी दन्तिपुर थी । वाल्मीकि ठेठ दक्षिण में चोल और पाण्डव राज्यों का संकेत करते हैं । इस समय उत्तर भारत में ९ मुख्य प्राजातंत्र थे; १–शाक्यों का, २–भग्गों का, ३–बुलियो का, ४–कालामों का, ५–कोलियों का, ६–मल्लों का, ७–मौर्यों का, ८–विदेहों का और ९–लिच्छवियों का । इनमें सबसे अधिक प्रभुत्व शाक्यों, विदेहों और लिच्छवियों का था । ये सब गणराज्य आजकल के गोरखपुर, बस्ती और मुजफ्फरपुर जिलों के उत्तर म लगभग सम्पूर्ण बिहार में फैले हुए थे।

---

१. भरिदत्त जातक ५४३

गण राज्य

प्राचीन भारत के ये ९ गणराज्य एक प्रकार से प्रजातन्त्र राज्य संघ थे । ई० पू० ७ वीं शताब्दी में पाणिनि ने संघ या गण ये दोनों शब्द प्रयोग किए है । पाणिनि का एक सूत्र है—'संघौद्धौ गणप्रशंसयोः" इसका यह अर्थ है कि सं पूर्वक हन् धातु से 'संघ' तभी बनता है जब उसका अर्थ गण या विशेष प्रकार का समूह हो । साधारण अर्थो में तो 'सं' पूर्वक 'हन्' धातु से 'संघात' शब्द बनता है ।

ये गण संघ समुदाय के अधीन होते थे[1] । पाणिनि का एक सूत्र है—"जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्" इसका अर्थ यह है कि अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय उसी शब्द के साथ लगता है जो 'देश' तथा 'क्षत्रिय' दोनों का वाचक हो। इस सूत्र पर कात्यायन ने जो वार्तिक लिखा है, उसमें वह कहता है—"क्षत्रियादेकराजात् संघप्रतिषेधार्थम्" इसका यह अभिप्राय है 'अञ्' प्रत्यय अपत्य अर्थ मे उसी शब्द में लगना चाहिए जो देश और क्षत्रिय दोनों अर्थो का बोधक हो, तथा उस देश में एक ही राजा का राज्य हो । परन्तु जिस देश में संघ शासन हो उस देश के वाची शब्द में अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय नहीं लग सकता।

इस उद्धरण से गणराज्यों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक मनुष्य का नही, समुदाय-विशेष का राज्य था । संघ-राज्य प्रणाली के सम्बन्ध में किसी ग्रन्थ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी कुछ स्पष्ट उल्लेख नहीं है; परन्तु यह तो प्रकट है कि संघ के सब कार्य गणसंघ की बैठक में प्रस्ताव बहुमत, गणपूरक, ज्ञप्ति, कर्मवाचा, छन्द आदि के द्वारा होते थे ।

मल्लों की तीन शाखायें थीं—पहली कुलीनारा में, दूसरी पावा में और तीसरी काशी में। सबसे अधिक महत्त्व शाक्यों, विदेहों और लिच्छवियों

---

१. अवदान शतक ८८।

का था। विदेह और लिच्छवि मिल कर 'वज्जी कहलाते थे। प्रजातंत्र परस्पर साधारण बातों पर लड़ते रहते थे। एक बार शाक्यों और कोलियों में एक खेत की सिंचाई के झगड़े को लेकर घनघोर युद्ध हो गया था।[1] लिच्छवियों की मंगल-पुष्करिणी में स्नान करने के कारण कोसल के प्रधान सेनापति से लिच्छवियों का भारी युद्ध हो गया था।[2] राजा लोग इन प्रजातन्त्रीय नेताओं की लड़कियों से विवाह करने के सदा इच्छुक रहते थे। सम्भवतः ये विवाह राजनैतिक होते थे। कोसल के राजा 'पसेन्दि (प्रसेनजित्)' ने शाक्यों से एक लड़की माँगी थी, शिशुनाग-वंशी बिम्बसार ने भी एक लिच्छवि कन्या से विवाह किया था।'[3]

बुद्ध को जन्म देने के कारण शाक्यों के प्रजातन्त्र का सारे संसार की सभ्यता पर प्रभाव पड़ा। शाक्यों की संख्या १० लाख थी। शुद्धोदन उनके नेता थे। उसकी राजधानी कपिलवस्तु थी, यह गण-राज्य नैपाल की तराई में पूरब से पश्चिम लगभग पचास मील तक और उत्तर से दक्षिण तीस चालीस मील तक फैला हुआ था। गौतम श्रमण ने यहाँ स्वतन्त्र विचारों की शिक्षा पाई थी। यहाँ का मनोनीत सभापति राजा कहाता था।

लिच्छवियों के गणराज्य की चर्चा अन्यत्र की गई है। इसका विस्तृत वर्णन 'एक-पण्ण-जातक' तथा 'चुल्ल-कलिग-जातक' में है। यहाँ के सभासद 'गणराजानः' कहाते थे।

मगध-सम्राट् बिम्बसार शिशुनागवंश का पाँचवाँ राजा था। इस वंश का यही प्रथम राजा है जिसका ऐतिहासिक वृत्त प्राप्त है। गया के

---

१. कुणाल जातक।

२–३. भद्दसाल जातक।

बिम्बसार

पास प्राचीन 'गिरिव्रज' उसकी राजधानी थी। पीछे उसने नवीन राजधानी 'राजगृह' की नीव रखी। इसने अंग को जीता जो भागलपुर और मुंगेर का इलाका था। मगध राज्य की उन्नति और विस्तार का सूत्रपात्र इसी विजय से हुआ। इस प्रकार मगध-साम्राज्य का सस्थापक ही बिम्बसार को कहा जाना चाहिए। इसने कोशल और वैशाली के दोनों समर्थ पडोसी राज्यों की एक एक राजकुमारी से विवाह करके अपनी राजशक्ति दृढ़ की। बिम्बसार का राज्यकाल ई० पू० ५२८ से ई० पू० ५०० तक माना जाता है।

प्रमुख नगर

इस काल के मुख्य नगरों में अयोध्या साकेत सरयूतट पर थी जो सूर्यवंशियों की राजधानी रही थी पर इस समय इसकी प्रधानता नष्ट हो चुकी थी। काशी-वाराणसी वर्तमान स्थान पर ही थी, चम्पा भागलपुर से चौबीस मील पूर्व थी, पीछे भारतीय उपनिवेशियों ने कोचीन-चाइना में इसी नाम की एक पुरी बसाई थी। काश्मीर में भी चम्पा नगरी थी। कम्पिला उत्तरी पांचाल की राजधानी थी। कौशाम्बी को कौरवों ने हस्तिनापुर के गंगा में डूब जाने पर बसाया था। यह यमुना-तट पर काशी से २३० मील के अन्तर पर थी। पीछे यह वत्सों की राजधानी हुई। यमुना-तट पर मथुरा अब भी अपने स्थान पर है। उस काल यहाँ के राजा 'अवन्तिवर्मन्' या 'अवन्तिपुत्र' थे, मथुरा का पुराना नाम 'मधुपुरी' था, पीछे मधुवंशियों से इसे शत्रुघ्न ने छीना, फिर इनके वंशजों से छीन कर यादव भीमरथ ने इसे अपनी राजधानी बनाया। बुद्धकाल में यह अवनत हो गई थी, बुद्ध यहाँ आये थे, इसी नाम का दक्षिण में एक नगर बसाया गया था। मिथिला विदेह नरेश की राजधानी तिरहुत में थी। मगध राजधानी राजगृह को बिम्बसार ने बसाया था। इस नाम के दो नगर थे—एक गिरिव्रज, दूसरा राजगृह। गिरिव्रज पुरानी बस्ती थी। रोरुक सौवीर सूरत की राजधानी थी, जहाँ

व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था, पीछे इसका नाम रोरुआ हो गया था। सागल भारत के उत्तर-पश्चिम में था, जो मद्र देश की राजधानी थी। श्रावस्ती कोशल की राजधानी साकेत से ४५ मील दूर थी जो भारत के ६ बड़े नगरों में एक थी। श्रावस्ती—सावत्थी सूर्यवंशी राजा श्रावस्त ने बसाई थी। यह साकेत से ४५ मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर-पश्चिम, सांकाश्य से २२५ मील, अचिरवती नदी के किनारे पर बसी थी।

उज्जयिनी अपने प्राचीन स्थान पर अब भी बसी है। वैशाली का वर्णन आ चुका है। इनके अतिरिक्त २० प्रमुख नगरों में ये भी थे—आलवी, इन्दपत्त, संसुभारगिरि, कपिलवत्थु, पाटलिग्राम, जेत्तुतर, संकस्स, कुसीनारा और उक्कत्थ[1]।

तक्षशिला, कन्नौज, काशी, उज्जयिनी, मिथिला, मगध, धन्यकटक, राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कौशाम्बी, जेतवन और नालन्द में विश्वविद्यालय थे।

प्रामाणिक ग्रन्थ

प्रामाणिक ग्रन्थ—जिनसे इस काल के राजअवस्था तथा राज-वंशों का पता चलता है—जातक, त्रिपिटक, जैन सूत्रग्रन्थ, कौटिलीय अर्थशास्त्र, पतञ्जलि महाभाष्य और पुराण है। पुराणों में वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत में बौद्धकालीन राजाओं की क्रमबद्ध सूची है। यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के समय तक भारतवर्ष यूरुप की दृष्टि से छिपा था। सिकन्दर के आक्रमण से ही योरोप के साथ भारतवर्ष का सम्बन्ध हुआ। सिकन्दर के साथ कई इतिहास-लेखक भी थे, जिन्होंने तत्कालीन भारत का वर्णन किया है। चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण

---

१. राय चौधरी।

भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण है। सिकन्दर की मृत्यु के लगभग बीस बरस बाद सीरिया और मिस्र के राजाओं ने मौर्य सम्राट् के पास अपने राजदूत भेजे थे, इन्होंने जो कुछ भारत का वर्णन किया है उसका कुछ भाग अनेक यूनानी और रोमन लेखकों ने अपने विवरणों में उद्धृत किया है। इन राजदूतों में सीरिया के राजा सेल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह कई वर्ष तक चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहा था। दूसरा व्यक्ति 'ऐरियन' है जो ईस्वी दूसरी शताब्दी में यूनानी रोमन अफसर था। ई० पू० ४ थी शताब्दी का इतिहास जानने के लिए एरियन के ग्रन्थ बड़े महत्त्व के हैं।

तात्कालिक समाज व्यवस्था

इस काल में नगर कम और गाँव अधिक थे। गाँव सम्पन्न थे और उन पर वहाँ के मुखियाओं का शासन था। ब्राह्मण व्यापार, धनुर्विद्या, मृगया, कपड़ा, बुनने और रथकार का काम करने लग गये थे। खेती और पशुपालन भी करते थे। क्षत्रिय भी व्यापार करते तथा सैनिक नौकरी करते थे। वे कुम्हार, माली, पाचक और टोकरी बनाने का काम भी करते थे। मुर्दे जला कर उनकी राख पर स्तूप बनाये जाते थे। भिन्न-भिन्न नौकरपेशे और कारीगर थे। मुद्रा-व्यवहार था। हुण्डी का चलन भी था। सूद का लेन-देन था, पर जमींदार न थे, किसान पर्याप्त भूमि जोत बो सकते थे। सिक्के ताँबे और सोने के थे।

बड़े-बड़े व्यापार मार्ग थे। जिन पर सार्थवाह चला करते थे। रिज डेविड ने इन पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्रावस्ती से पतित्थान तक मार्ग माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का रास्ता सीधा न था वरन् पहाड़ की तराई में होकर था। राह में सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा,

हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्द पड़ते थे। पूर्व से पच्छिम का रास्ता नदियों द्वारा था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। व्यापारी सार्थवाह विदेह से गान्धार को, मगध से सौवीर को, मरुकच्छ से वर्मा को, दक्षिण से वेविलोन को जाते आते थे। लंका का नाम इस काल के वर्णन में नहीं है, ताम्रपर्णी द्वीप का कथन है।

इसी काल में वैदिक साहित्य-काल और वैदिक आर्य-सभ्यता का अन्त हुआ। धर्म और राजनीति दोनों पर संकर जातियो का प्रभुत्व हुआ।

इस काल में क्षत्रियों का दर्जा ब्राह्मणों से ऊपर था। क्षत्रियों की मर्यादा बहुत बढ़ गई थी[१]। क्षत्रियों और ब्राह्मणों में ६ठीं ७वी ई० पूर्व शताब्दी में काफी द्वेष और स्पर्द्धा फैल गई थी। ब्राह्मणों के तिरस्कार का कोई भी अवसर क्षत्रिय चूकते न थे। तथा बौद्ध, जैन, श्रमण निरन्तर ब्राह्मण-विरोधी हलचलें करते रहते थे। बौद्ध जैन ग्रन्थों में ब्राह्मणों का उल्लेख अत्यन्त अपमानजनक शब्दों में किया गया है। जैन ग्रन्थों में कहा है कि अर्हन्त ब्राह्मणों तथा नीच जाति में जन्म नहीं लेते[२]। अछूतों का बड़ा अपमान होता था; चित-संभूतजातक, मातंगजातक और सतधम्म जातकों से यह प्रकट होता है। इस काल में खानपान का परहेज न था[३]। गोत्र बचाकर स्ववर्ण में विवाह विहित हो गया था। सब वर्णों के लोग इन जातियों के काम करने लगे थे। समाज बाह्याडम्बर में फँसा था, यज्ञ सबसे बड़ा आडम्बर था। लोग कठिन तप और व्रत करते थे; और बड़ी-बड़ी यातनाएँ धैर्य से सहन करते थे। बहुत से भिक्षु-साधु वैखानस, परिव्राजक विचरते रहते थे। सर्वत्र

---

१. रिज डेविड—बुद्धिष्ट इण्डिया।

२. जैनकल्प सूत्र।

३. भद्दसालजातक, कुम्मासपिण्डजातक और उद्दालजातक।

उनका समादर होता था। अतिथिसेवा का बड़ा महात्म्य था। स्त्री-पुरुष दोनों ही परिव्राजक होते थे। लगभग ७८ प्रकार के दार्शनिक मत थे जिनमें ६ प्रधान थे, जो वर्तमान षड् दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। साख्य और वेदान्त परस्पर प्रतिस्पर्द्धी थे, इन्ही की अधिक चर्चा थी। बहुत चाव से लोग इन शुष्क विवादों में फँसे रहते थे। इस काल मे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करते थे। ब्रह्मचारी सुखोपभोगों से बच कर विनयी, नम्र एवं इन्द्रियदमन करके रहते थे; परन्तु सेट्ठिपुत्र बहुधा कठिन नियम नहीं पालते थे। विद्यार्थियों के दो नित्य कार्य थे—पढ़ना और गुरुसेवा। शिक्षा प्रायः मौखिक होती थी। स्नातक होकर जब वह गृहस्थी होता था तब उस पर गृहपति के अनेक दायित्व लद जाते थे। इनमें अतिथि-सत्कार और यज्ञ प्रमुख थे[१]। पीछे उसे भिक्षुक और वैखानस बनना होता था[२]। आगे यही चार आश्रम विख्यात हुए। वशिष्ठ ने चारों आश्रम भोगना आवश्यक नहीं समझा। वह बिना गृहस्थाश्रमी हुए भी संन्यासी होने को बात कहता है[३]। बौधायन का भी यही मत है[४]। जाति केवल गृहस्थी की मानी जाती थी, भिक्षुक या वैखानस की नही[५]। गृहस्थो के ४० धर्म थे[६]। जिनसे तत्कालीन गृहस्थ जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। इनमे गृहस्थी की रीतियां, गृहस्थ कर्म और श्रौत कर्म सम्मिलित है। इन श्रौत कर्मो का विस्तृत विवरण यजुर्वेद में है। उन्हीं का सक्षिप्त रूप श्रौत सूत्रों में दिया गया है। गृहस्थ कर्मों मे

१. आपस्तम्ब २, ३, ७, १
२ आपस्तम्ब २।९, २१, २
३. वशिष्ठ धर्म (७।३)
४. बौधायन २, १०, १७, २
५ वशिष्ठ ८, १५
६. गौतम ८, १४, २०

विवाह, गर्भाधान, पुत्रजन्म और १६ संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं। गृहाग्नि-स्थापन मुख्य श्रौत कर्म है। गृह्य विधानों में श्राद्ध में पितरों के प्रतिनिधि विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता था[1]।

श्रावणी पर्व जो आज भी श्रावण की पूर्णिमा को एक त्यौहार की भांति माना जाता है तथा राखी बाँधी जाती है, उन दिनों सर्पों को संतुष्ट करने के लिए मनाया जाता था। राखी जो बाँधी जाती थी वह सर्पों से रक्षा के लिए अभिमन्त्रित। तथा उस दिन सेंवइयों का सेवन भी साँपों ही के प्रतिनिधि रूप होता था। श्रावणी ही की भाँति आश्वयुगी—आश्विन की पूर्णिमा को (जो अब शरतपूर्णिमा के रूप में है) तथा आग्रहायणी—अगहन की पूर्णिमा को त्यौहार मनाये जाते थे[2]। चैत्री चैत्र की पूर्णिमा को की जाती थी, जिसमे इन्द्र, अग्नि, रुद्र और नक्षत्र पूज जाते थे।

विवाह उत्तराधिकार और जाति

विवाह शब्द का अर्थ है—'खास सम्बन्ध आर्य' साहित्य में यह शब्द बहुत पुराना होने पर भी अतिप्राचीन नही है। क्योंकि ऋग्वेद[3] में वर्तमान अर्थो मे विवाह शब्द नही मिलता। रूढ़ि अर्थो मे हिन्दू समाज की दृष्टि मे विवाह का अर्थ है स्त्री-पुरुष का जीवन भर अथवा जन्मान्तर के लिए एक दूसरे से अनुबन्धित होना। हिन्दू स्त्री एक बार विवाहित होकर जीवन भर वह विच्छेदित नही हो सकती। यही नहीं, पति के मर जाने पर भी वह उसी की विधवा रहेगी। पति मृत हो या जीवित, स्त्री वाग्दत्ता हो या विवाहिता, हर हालत मे उसे मन, वचन, कर्म से पति के प्रति सर्वथा अनुबन्धित, अनुप्राणित एवं आत्मार्पित होना होगा। विवाह के बाद पति का स्त्री

---

१. आश्वलायन २. पारस्कर ३, २, २

३. ऋग्वेद मं० २ सू० १७ मंत्र ७, मं० २ सू० २९ मंत्र १, मं० १० सू० १७, मं० ९ सू० ४६ मंत्र २—१०

पर पूर्ण अधिकार है परन्तु पुरुष पत्नी की भांति स्त्री के प्रति अनुबन्धित नही । हिन्दू-धर्मानुबन्धन में पति एक या अनेक इसी प्रकार अनुबन्धित पत्नियाँ रखते हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र रूप से वैध या अवैध अनगिनत पत्नियाँ बिना पत्नी की स्वीकृति के रख सकता है । यहाँ तक कि वह दासियों, वेश्याओं, रखेलियों और व्यभिचारिणी स्त्रियों से भी स्वच्छन्द सहवास कर सकता है और दूषित नहीं होता ।

यजुर्वेद में और ब्राह्मण ग्रन्थों में विवाह के विकास का आभास हमें मिलता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह और वर्ण का विकास साथ ही साथ एक ही आधार पर हुआ है । परन्तु उपनिषदों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि स्त्रियाँ पर्दे में नही रहती थीं, पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा पाती थीं, सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थीं और धर्म-कार्य में सम्मिलित होती थीं[1] ।

अथर्ववेद—जो कि पहले वेद नहीं गिना जाता था और जो बहुत उत्तरकालीन है—विवाह की परिपाटी को स्थापित करता है । अथर्ववेद का यह मन्त्र ही विवाह की परिपाटी स्थापित करता है—"सौभाग्य के लिए तेरा हाथ पकड़ता हूँ, मुझ पति के साथ रह, प्रतिष्ठित और नम्र पुरुषों ने मझे तुझे दिया हैं...।"[2]

इस मन्त्र में कन्यादान का पूर्वरूप प्रकट है, अगले मन्त्रों में इन का विकास है[3] ।

अब हम उस युग में आते हैं जब आर्यों ने विन्ध्याचल पार कर दक्षिणापथ को आक्रांत कर लिया था । पर मध्य भारत में घुस कर गोदावरी, कृष्णा के किनारों पर बड़े-बड़े राज्य कायम कर लिए थे । जो समुद्र तट तक फैले हुए थे। पूर्व में मागध का महान साम्राज्य स्थापित

---

१. बृहदारण्यक ३०, ऐतरेय ब्रा० ३-३३

२. अथर्ववेद १४-१-५

३. अथर्ववेद १-१४-३, १४-१-४३, १४-१-४४

हो चुका था जो पूर्व में उड़ीसा तक फैला हुआ था। यह आर्य बन्धुओं, अथवा संकर जनों की नई नस्ल का विकास था जो आर्यों से अधिक सम्पन्न और मेधावी हो गए थे। इस युग तक आर्यों और आर्य बन्धुओं ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक और एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक निरन्तर विजय करके सम्पूर्ण भारत को समृद्ध कर दिया था और वे इन्द्रप्रस्थ से आगे बढ़ कर गुजरात को चीरते हुए आगे बढ़ गये थे। उन्होंने नदियों को व्यवस्थित किया, जंगल साफ किए, ऊसरों को उपजाऊ बनाया और आचार्यों ने आश्रम कायम किए और फिर जनपद-बस्तियाँ बसीं। व्यापारी नौका और वाहनों पर जीवन को वस्तुओं का विनिमय करने लगे, विजेता और विजित हिल मिल कर एक हो गए और नई सभ्यता का विस्तार हुआ जिसमें दक्षिण के सब प्रान्त सौराष्ट्र कोल, चेरा, पाण्डय, मगध, वत्स, अंग, बंग और कलिंग सभ्य नागर बन गए[1]।

इन दिनों लंका पर भी भारतीय अधिकार था और उसकी राजधानी ताम्रपर्णी थी। इसी युग में आर्यों को दो महत्कार्य करने पड़े—एक विवाह-मर्यादा स्थापित करनी पड़ी; दूसरे, जाति विभाजन करना पड़ा। यद्यपि चार वर्णों का विभाजन पहले ही हो चुका था परन्तु अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न वर्णसंकरों और अनेक अनार्य जातियों की स्त्रियों से आर्यों का संसर्ग होने पर उनसे उत्पन्न संतानों की अनेक शाखाएँ फैल गई थीं और इस बात की अब आवश्यकता थी कि विवाहों और इन विवाहों से उत्पन्न संतानों की जातियों का नए सिरे से संगठन किया जाय। विवाहों के संगठन के सम्बन्ध में वशिष्ठ, आपस्तम्ब, गौतम आदि आचार्य कहीं सहमत और कहीं असहमत हैं। वशिष्ठ केवल छः विवाहों

१. बौधायन १-१-२।

को स्वीकार करता है। आपस्तम्ब भी इन्हीं छः को मानता है। परन्तु पिछले दो विवाहों को दूसरे नामों से स्वीकार करता है। गौतम और बौधायन विवाह की आठ रीतियों को मानते हैं। ये दोनों सूत्रकार वशिष्ठ से प्राचीन हैं। इन्होंने प्राजापत्य और पिशाच विवाहों को अधिक माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विवाह की भिन्न-भिन्न रीतियाँ प्रचलित हो गई थीं। तथा विवाहिता स्त्रियाँ अन्तःपुर में रहतीं और पति की आज्ञानुवर्तिनी होती थी। महाभारत एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आज चाहे जितना भी दूषित हो गया हो उस काल की सभ्यता का अप्रतिम प्रमाण है. जब आर्यों का विस्तार गंगा की घाटियों तक हो चुका था और आधुनिक दिल्ली के निकट गंगा के तीर पर उन्होंने राजधानी स्थापित कर ली थी। सम्भवतः कुरु वे ही हैं जो ऐतरेय ब्राह्मण में गंगा के उस पार रहने वाले कहे गये हैं[1]। इसी काल में आर्यों का एक दूसरा दल पांचाल नाम से आधुनिक कन्नौज के आस-पास पांचाल नाम से एक राज बना चुका था। सम्भव है ये पांचाल ऋग्वेद में वर्णित पंचजन के वंशज हों। जो हो, इन दोनों वंशों की समृद्धि मसीह से १५ सौ वर्ष पूर्व हुई और दोनों में राजनैतिक संघर्ष हुए।

महाभारत[2] में केवल पाँच ही विवाह वर्णित है। ब्राह्म, क्षात्र, गान्धर्व, आसुर और राक्षस। दैव, आर्ष और प्राजापत्य को 'क्षात्र' के अन्तर्गत माना गया है। पैशाच को निर्दिष्ट नहीं माना है। इसमें प्रथम के चार को प्रशस्त और अन्तिम को निकृष्ट माना है[3]। यद्यपि बलात् कन्याहरण भीष्म ने किया था और माद्री को मोल लिया था। क्षात्र

---

१. ऐतरेय ब्रा० ७—१४

२. महा० आदिपर्व अ० ७४; अनुशासन पर्व अ० ४४

३. अनुशासन पर्व ४४।

विवाह की व्याख्या स्पष्ट नहीं है पर सम्भवतः वह गान्धर्व विवाह ही है परन्तु गान्धर्व विवाह और स्वयम्वर में जो भेद है वह स्पष्ट है। स्वयम्वर में तो एक न एक शर्त रखी जाती थी जिसे वर को पूरा करना होता था। परन्तु ऐसे भी स्वयंवर होते थे कि जिसमें कोई प्रण पूरा नहीं करना होता था जैसा कि दमयन्ती का स्वयंवर हुआ। सिकन्दर के साथियों ने लिखा है कि 'पंजाब की स्त्रियाँ अपने लिए आप ही वर पसन्द करती हैं' इससे यह सहज ही अनुमान होता है कि स्वयवर प्रथा बहुत देर तक प्रचलित रही। परन्तु गान्धर्व विवाह मे किसी साक्षी का भी प्रश्न न था। पाठक जानते है कि गन्धर्व एक देवों की उपजाति है[1]। सम्भव है कि गन्धर्व विवाह की उन्मुक्त रीति आर्यों ने उनसे सीखी हो और अपनी परम्परा में सम्मिलित कर ली हो।

अब असुर विवाह पर विचार करिए। आप जानते है कि शर्मिष्ठा असुरकन्या थी जो कि आर्य राजा को विवाही थी[2]। मद्र और केकय देश की स्त्रियों को मध्य देश के क्षत्रिय राजा मूल्य देकर लिया करते थे[3]। ऐसा प्रतीत होता है कि साधारणतया समस्त दक्षिणावर्त में और विशेष प्रकार से उनमें—जिनके सम्बन्ध असुरों से थे—यह प्रथा कुल-परम्परा से चली आई थी। तथा उच्च कुल की ऐसी अनार्य कन्याएँ मोल खरीद कर ब्याह ली जाती थीं और असुर विवाह उनके सन्तानों के अधिकारों की रक्षा कर लेता था परन्तु नीच जाति की कन्याएँ दासी की भांति खरीदी जाती थीं और उनकी सन्तानों को कोई अधिकार प्राप्त न थे[4]।

अब राक्षस विवाह पर विचार करना चाहिए। भारत के दक्षिण प्रान्तों में आदिम निवासी जातियाँ थी जो लंका तक फैली हुई थीं। सम्भवतः ये मनुष्यभक्षी थीं। रावण उनका एक सम्पन्न राजा था

१—२. महाभारत

जिसकी राजधानी लंका थी। मय दैत्य की कन्या मन्दोदरी रावण का ब्याही थी[१]। दैत्य और दानव-वंश सम्भवतः राक्षस-वंश से अधिक उन्नत थे। इन सबसे आर्यों के विवाह-सम्बन्ध भी होते थे और देवताओं में भी उनकी रिश्तेदारियाँ थीं। राक्षस लोग यद्यपि ब्राह्मण और यज्ञों के विरोधी थे परन्तु बहुत राक्षस यज्ञ करते थे, उनकी प्रतिभा, योग्यता, संस्कृति तथा वैभव भी साधारण न था। उनमें से अनेक आर्यधर्मी हो गये थे[२]।

रामायण से पता लगता है कि राम से कुछ प्रथम ही अगस्त मुनि ने आर्यों का एक उपनिवेश दक्षिण में स्थापित कर लिया था। शरभंग ऋषि और परशुराम भी उधर ही चले गए थे। अनेक ऋषियों की इन राक्षसों से रिश्तेदारियाँ थी। मत्स्यपुराण के मत से दैत्य दानव श्वेत पर्वत पर; देवगण सुमेरु (पामीर) पर; राक्षस, यक्ष और पिशाच हिमालय पर; गन्धर्व, अप्सरस् हेमकूट (काराकूरम) पर; नाग और तसक निषध पर्वत पर रहते थे। रावण राक्षसों का एक प्रतिनिधि राजा था, उसकी स्वर्णपुरी लंका अपूर्व वैभव, प्रबल चतुरंगिणी वीरवाहिनी, विदुषी पत्नी, महापराक्रमी भाई कुम्भकर्ण और पुत्र मेघनाद एवं पवित्राचारिणी पुत्रबधु सुलोचना किसी भी सम्राट् के लिए ईर्षा का विषय हो सकती हैं। रावण का कुल गोत्र आचारहीन भी न था और राक्षस कहलाने पर वह लज्जित भी न था।

राक्षस विवाह अतिसाहसी सुभट ही कर सकते थे। सुभद्राहरण और भीष्म द्वारा काशीराज की कन्या का हरण इसका उदाहरण है। विवाहिता स्त्रियों का भी हरण किया जाता था जैसे कि जयद्रथ ने द्रौपदी का किया।

अब सब से महत्त्वपूर्ण बात की तरफ ध्यान देना चाहिए कि ब्राह्म विवाह सब विवाहों का मुख्य अंग था। क्षात्र, आसुर, राक्षस आदि

१—२. रामायण

विवाह से लाई हुई कन्या को ब्रह्म-विवाह की रीति से विवाह किया जाता था। आगे चलकर यह ब्रह्म-विवाह ही एकमात्र प्रमुख विवाह बन गया।

पाठक देख सकते हैं कि यह विवाह न तो व्यक्तिगत प्रेम के सम्बन्ध थे न कोई धार्मिक या आध्यात्मिक गठजोड़े थे जैसा कि आज समझा जाता है, प्रत्युत ये विशुद्ध आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखते थे जिनका अभिप्राय सम्पत्ति के उत्तराधिकारी पुत्रों को उत्पन्न करना था। यह उत्तराधिकार आज भी तब की भांति दीवानी कानून का सबसे पेचीदा और सबसे अधिक महत्त्व का प्रश्न है। इसी कारण वे प्राचीन काल में पुत्र का बहुत महत्त्व था। हमारे उपन्यास में जिस वृद्धा ने अपने मृत-पुत्र की वधूटियों के लिए जो एक पुरुष को नियुक्त किया था, उसने पुत्रों के न होने के खतरे को भली भांति समझ लिया था।

अब आप गौतम के मत से उत्तराधिकारों की सूची देखिए--वह पुत्रों को दो भागों में विभक्त करता है—एक वह, जो उत्तराधिकारी हैं। दूसरे वह, जो केवल वंशज हैं

१—अपना पुत्र (औरस)
२—अपनी स्त्री से उत्पन्न पुत्र (क्षेत्रज)
३—गोद लिया (दत्तक)
४—माना हुआ (कृत्रिम)
५—गुप्त रीति से उत्पन्न (गूधज)
६—त्यागा हुआ (अपविद्ध)

ये सब उत्तराधिकारी हैं

१—कुमारी अवस्था में स्त्री का उत्पन्न पुत्र (कानीन)
२—गर्भवती दुलहिन का पुत्र (सहोध)
३—दो वार विवाहिता स्त्री का पुत्र (पौनर्भव)
४—नियुक्त कन्या का पुत्र (पुत्रिकापुत्र)

५—स्वयं दिया हुआ पुत्र (स्वयंदत्त)
६—मोल लिया हुआ पुत्र (क्रीत)
ये सब केवल वंशज हैं।[1]

बौधायन और वशिष्ठ जो गौतम के उत्तरकालीन हैं गौतम से भी भिन्न मत रखते है तथा परस्पर भी।

१—अपनी जाति की विवाहिता स्त्री में पति के वीर्य से उत्पन्न	(औरस)
२—नियुक्त पुत्री का पुत्र	(पुत्रिकापुत्र)
३—नियोग द्वारा	(क्षेत्रज)
४—गोद लिया	(दत्तक)
५—बनाया हुआ	(कृत्रिम)
६—गुप्त रीति से उत्पन्न	(गूधज)
७—त्यागा हुआ	(अपविद्ध)
८—अविवाहिता कन्या का पुत्र	(कानीन)
९—गर्भवती दुलहिन का पुत्र	(सहोध)
१०—मोल लिया हुआ	(क्रीत)
११—स्त्री के दूसरे पति से उत्पन्न	(पौनर्भव)
१२—स्वयं दिया हुआ	(स्वयंदत्त)
१३—द्विज पुरुष और शूद्रा स्त्री से	(निषाद)
१४—एक ही माता पिता से उत्पन्न	(पार्सव)

इन १४ प्रकार के पुत्रों में से बौधायन प्रथम के ७ को उत्तराधिकारी [2]। बाद के ६ को वंशज तथा अन्त के पार्सव को वंशज भी नहीं समझता। वशिष्ठ गौतम की भांति केवल १२ ही पुत्र मानता है। वह पुत्रिका-पुत्र की नवीन व्याख्या करता है।

---

१. गौतम धर्मसूत्र २८
२. बौधायन २-२-३

"वह कन्या, जिसका कोई भाई नहीं अपने वंश के पुरुष पूर्वजों में आ जाती है और वह लड़का हो जाती है[1]।"

वशिष्ठ ने जो नियुक्त कन्या को पुत्र कहा है उस कन्या का रीति के अनुसार पुत्र नाम रखा जाता था। ऐसी एक घटना का उल्लेख राजतरंगिणी मे है, उसमें लिखा है कि गौड़ की राजकुमारी और जयापीड़ राजा की रानी कल्याण देवी को उसके पिता 'कल्याण मल्ल' कहते थे[2]।

अब वशिष्ठ, गौतम और बौधायन के उत्तराधिकारी क्रम इस प्रकार हुए :—

	गौतम	वशिष्ठ	बौधायन
वंशज और उत्तराधिकारी	१ औरस	१ औरस	१ औरस
	२ क्षेत्रज	२ क्षेत्रज	२ पुत्रिकापुत्र
	३ दत्त	३ पुत्रिकापुत्र	३ क्षेत्रज
	४ कृत्रिम	४ पौनर्भव	४ दत्त
	५ गूधज	५ कानीन	५ कृत्रिम
	६ अपविद्ध	६ गूधज	६ गूधज
			७ अपविद्ध
वंशज परन्तु उत्तराधिकारी नहीं	७ कानीन	७ सहोध	८ कानीन
	८ सहोध	८ दत्त	९ सहोध
	९ पौनर्भव	९ क्रीत	१० क्रीत
	१० पुत्रिकापुत्र	१० स्वयंदत्त	११ पौनर्भव
	११ स्वयंदत्त	११ अपविद्ध	१२ स्वयंदत्त
	१२ क्रीत	१२ निषाद	१३ निषाद

१. वाशिष्ठ १७।

२. डा० बुहलर।

	गौतम	वशिष्ठ	बौधायन
न वंशज, न उत्तराधिकारी किन्तु पुत्र	×	×	१४ पार्सव

परन्तु आपस्तम्ब जो बौधायन की केवल एक शताब्दी पीछे हुआ इन पुत्रों और उत्तराधिकारियों को मंसूख कर देता है, वह सख्ती के साथ कहता है—

"जो मनुष्य ठीक समय में अपनी जाति की उस स्त्री के पास जाता है जो कि किसी दूसरे मनुष्य की न रही हो और जिससे उसने नियमानुसार विवाह किया हो तो उससे जो पुत्र उत्पन्न हो वही अपनी जाति के व्यवसाय तथा पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकारी है"[1]। इस प्रकार वह पुत्र को गोद लेने, मोल लेने, तथा नियोग द्वारा उत्पन्न करने का सख्त विरोध करता है।

हमने अपने उपन्यास में विवाह-उत्तराधिकार आदि के प्रश्न पर एक विहंगम दृष्टि डालने के विचार से एक परिच्छेद में परिषद कल्पित कर शास्त्रों का प्रतिनिध्य आचार्यों से कराया है। इससे उसमें असंगति दोष नहीं समझना चाहिए। केवल इस जटिल प्रश्न पर थोड़ा प्रकाश डालने ही का हमने प्रयत्न किया है।

जिस काल का वर्णन हमारे उपन्यास में है, उस काल में विवाहों और उनसे उत्पन्न सन्तानों के उत्तराधिकारों को लेकर एक बहुत भारी संघर्ष का वातावरण देश में था। उस समय आर्यों के तीन वर्ग थे—एक ब्राह्मण पुरोहित, दूसरा क्षत्रिय राजा, तीसरा सर्वसाधारण अर्थात् विश। इनके अतिरिक्त अनार्य, दस्यु और दासों का एक दल था। इस

---

१. आपस्तम्ब २-६-१३।

काल से कुछ पूर्व तक अनुलोम विवाहों से उत्पन्न संतान पिता के कुल, गोत्र, सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी, इसी बात को लेकर उच्च वर्ण के लोगों में ये भाव उत्पन्न हुआ कि आर्यों की सम्पत्ति अनार्य स्त्रियों की सन्तानों को नहीं मिलनी चाहिए। विशेषकर विश जनों की संतान जिन्हें केवल इतर जातियों में शूद्रा ही स्त्री प्राप्त हो सकती थी और जो सम्पत्तिशाली हो गए थे, इन स्त्रियों की सन्तानों को सम्पत्ति का पूरा भाग नहीं देना चाहते थे। पहले यह निर्णय किया गया कि एक अंश दिया जाय, आगे चल कर निर्णय किया गया कि कुछभी न दिया जाय, जब ऐसी सन्तानें पिता की सम्पत्ति से वंचित हो गईं तो यह स्वाभाविक था कि वे पिता के कुल गोत्र से भी वंचित हो जायँ और उनकी पृथक् जाति बन जाय और ऐसा ही हुआ। धीरे-धीरे वैश्या और क्षत्रिया स्त्रियों में उत्पन्न उच्चवर्णस्थ पति की सन्तानों को भी पिता की सम्पत्ति से वंचित किया गया और उनकी पृथक् जाति बना दी गई। प्रतिलोम विवाह की सन्तान तो पहले से ही वर्णसंकर कही जाती थीं। अब वर्णसंकरों का एक प्रबल संगठन खड़ा हो गया था और उन्होंने आर्यों की राजसत्ताएं छीन लीं। जिस काल का वर्णन इस उपन्यास में है उस काल मे भारतवर्ष में शुद्ध आर्यों के केवल दो चार वंश राजसत्ता-प्राप्त थे; शेष सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनार्यों, आर्य बन्धुओं और संकरों की सत्ता व्याप्त हो गई थी। इन्हीं कारणों से आर्यों ने वणसंकरों के प्रति अत्यन्त घृणा के भावों का प्रचार किया जिसका आभास हम भगवद्गीता[1] में पाते हैं। यहाँ स्पष्ट रूप में कहा गया है कि राजा को इस विषय में सावधान रहना चाहिए कि उसके राज्य में वर्णसंकर न उत्पन्न हों।

इन सब कारणों से असवर्ण विवाह रुक गए। प्रतिलोम तो पहिले ही कम होते थे, अनुलोम भी रुक गए। तब अनुलोम प्रतिलोम विवाह

---

१. संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्त्र च। श्रीमद्भगवद्गीता।

से उत्पन्न संकर जातियों ने आपस में संगठन करके विवाह करने प्रारम्भ कर दिए। शुद्ध चारों आर्य-वर्ण संकरत्व के भय से अपने ही वर्ण में विवाह करने लगे। इन सब कारणों से इन संगठित संकरवर्णी जनों के मन में कुलीन आर्यों, खासकर ब्राह्मणों के प्रति विद्वेष के गहरे भाव प्रकट हो गए। इस विद्वेष भावना का सुन्दर उदाहरण हमें महाभारत में मिलता है[१], जहाँ सर्पवेशधारी नहुष ने धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर किए हैं। इस प्रश्नोत्तर से हमें एक नई और अद्भुत बात यह दीख पड़ती है कि पहिले जहाँ वर्ण से वृत्त परखा जाता था, वहाँ अब वृत्त से वर्ण परखा जाना चाहिए। अर्थात् प्राचीन धारणा यह थी कि ब्राह्मणवर्णी को शीलवान् अवश्य होना चाहिए, परन्तु वर्णसंकरत्व के कारण यह गड़बड़ी हो गई कि ब्राह्मणों में भी बुरे लोग उत्पन्न होने लगे, तब शील को प्रधानता दी गई और यह कहा गया कि जिनका शील उत्तम है वही ब्राह्मण है, युधिष्ठिर का यह नवीन तर्क नहुष ने मान लिया और इस प्रकार वर्ण का अस्तित्व एक दूसरे रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस नवीन सिद्धान्त का अभिप्राय यह था कि वर्ण या वंश ही मनुष्य के स्वभाव का मुख्य स्तम्भ है और वर्ण के साथ स्वभाव का नित्य का साहचर्य है। इसके समर्थन में महाभारत ही में भीष्म और युधिष्ठिर सम्वाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है[२]।

परन्तु आगे कुल-धर्म और कुलकृत्य को न छोड़ने की भी कठिन व्यवस्था हो गई थी। महाभारत में ही व्याध का एक उदाहरण है—'व्याध से ज्ञान प्राप्त करने को एक ब्राह्मण गया और उससे कहा—कि तुम महाज्ञानी होकर यह माँस बेचने का काम क्यों करते हो? तो उसने कहा—यह मेरे बाप-दादों से चला आता हुआ मेरा कुलधर्म है.....कुलधर्म को जो लोग छोड़ देते हैं उसे राजा नष्ट कर देता है।

---

१. महा० वन० अ० १८०।

२. महा० अनु० अ० ३-४।

महाराज जनक के राज्य में ऐसा कोई नहीं है जो अपने कुलोचित कर्म को छोड़ अन्य कर्म करे [१]।'

इस उदाहरण से एक महत्त्वपूर्ण निर्णय पर हम पहुँचते है कि राष्ट्र के विस्तार के साथ ही विवाह की भाति ही ऐसे कड़े नियम बना दिए गए थे कि कोई व्यक्ति अपने पैतृक धन्धे को छोड़कर दूसरा धधा नहीं कर सकता था।

ब्राह्मण के ६ कर्म थे– १–यजन २–याजन, ३–पठन, ४–पाठन, ५–दान, ६–प्रतिग्रह। परन्तु महाभारत काल में ब्राह्मण वेतन लेकर पूजापाठ, नौका द्वारा व्यवसाय, पुरोहित मन्त्री और दूत-कार्य करते थे [२]। वे बेगार और कर नही देते थे, यद्यपि दक्षिणा मे उन्हे भारी-भारी रकम प्राप्त होती थी। नहुष वर्णों के मामले मे क्रातिकारी विचार रखता था और उसने ब्राह्मणों से कर लेना चाहा था। जिस पर बड़ा प्रबल विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, तथा नहुष को राज्यच्युत होना पड़ा था [३]। वह व्यापार भी कर सकता था पर मांस, नमक, मधु और पकाया भोजन नहीं बेच सकता था। क्षत्रिय के तीन कर्म–– १–अध्ययन, २–यज्ञ तथा ३– दान कर सकता था पर करा नहीं सकता था। केकय जैसे वेदपारंगत यजनशील क्षत्रियों के अनेक उदाहरण हैं। उस काल में क्षत्रियों का ध्यान एक ही गुण की ओर था 'युद्धे अपलायनम'।

वैश्यों के कर्म थे––कृषि, पशुपालन और वाणिज्य। समृद्ध होने पर वैश्यों ने प्रथम के दोनों कार्य शूद्रों के ऊपर छोड़ केवल वाणिज्य ही को अपनाया। शूद्रों के लिए कठोरतम नियम बनते ही गए। वे पढ़ लिख नही सकते थे। मालिकों की जूठन खाते और उनके पुराने वस्त्र

---

१. महा० अ० अ० २०७।
२. महा० शांति अ० ७।
३. महा० शांति० अ० ७।

पहनते थे। वे धन-संग्रह भी नहीं कर सकते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों आर्यों का विस्तार दक्षिण की ओर होता गया, शूद्रों की संख्या बढती गई और वैश्यों के पशुपालन तथा कृषि-कार्य इन्हीं पर छोड़ देने से उन्हें धनप्राप्ति का भी अधिकार हो गया[1]।

आर्यों की भांति संकर जातियों ने भी अपने पैतृक पेशे अपनाए। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न 'सूत' को वेदपाठी होने तथा रथ हांकने का पेशा मिला। वे ब्राह्मण और क्षात्रेय के मेल से उत्पन्न संतति थी इससे इसमें दोनों वर्णों के गुण आये। वैश्य और ब्राह्मण से 'वैदेह' उत्पन्न हुए, इनका कार्य अन्तःपु की रक्षा करता था। आगे चल कर इन्होंने गंगा की घाटियों में एक महाराज्य की स्थापना की और ब्राह्मण विरोधी ब्रह्मवाद के सिद्धान्त को जन्म दिया। क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न मगध जाति हुई[2]। इन्होंने भी पूर्वी भारत में एक महाराज्य स्थापित किया। ये तीनों संकर जातियाँ संकरों में अग्रगण्य हुई इन्हें 'सूत-वैदेह-मागधाः" कह कर पुकारा गया।

वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष की सतान 'आयोगव' मानी गई। इन का कार्य सम्भवतः बढ़ई का था। परन्तु क्षत्रिय स्त्री और शूद्र की संतान अधिक निकृष्ट 'निषाद' मानी गई जो धीवर हुए। मछली मारना तथा नाव खेना भी उनका काम हुआ। ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरुष की संतान अतिनिषिद्ध चाण्डाल मानी गई। उसे जल्लाद का कार्य दिया गया तथा बस्ती के बाहर रहना और ठीकरों में खाने का आदेश दिय गया। सम्भवतः कंजर और डोम इस वंश के हैं। 'अम्बष्ट, पारशव और उग्र' के व्यवसायों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता तथापि द्विजों की

---

१. महा० शांति० अ० ६०।

२. मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर स्मृति

सेवा करना ही उनका कार्य था। इस प्रकार प्रतिलोम संतति-परम्परा में पन्द्रह प्रकार की बाह्याभ्यन्तर जातियाँ बनीं[१]। जिनके भिन्न-भिन्न सेवाकर्म रहे। अब आप सहज ही समझ सकते हैं कि वर्ण-संकरत्व के इस कुत्सित रूप से भय खाकर चातुर्वर्णों में कडाई से सवर्ण-विवाह और वर्ण-वर्णित व्यवसाय करने की परम्परा चल गई तथा चारों वर्णों का नए सिरे से संगठन हुआ! महाभारत से पता चलता है कि चम्पा, मत्स्य, कुरु, पांचाल और चम्पा आदि देशों में वर्णधर्म बहुत शिथिल था। वाल्हीक देश में मनुष्य पहले ब्राह्मण होता है फिर क्षत्रिय, फिर वैश्य फिर शूद्र, बाद में नापित हो जाता है। इस प्रकार वह ब्राह्मण होकर उसी का दास हो जाता है[२]। इससे यह स्पष्ट होता है कि कुरुओं में जात-पात का जितना प्रतिबन्ध था उतना पंजाब में नहीं था।

यह स्वाभाविक था कि जातियों के इन बखेड़ों के कारण स्त्रियों के सम्पूर्ण अधिकारों को भी छीन लिया गया तथा उनकी स्वाधीनता का सख्त विरोध किया गया। मनु स्त्रियों की प्रतिष्ठा तो करता है—पर कड़ाई से जन्म-जन्मान्तर तक पुरुषों के अधीन बताता है। वह असवर्ण विवाह का सख्त विरोधी है[३]। वह प्राचीन विवाह-परिपाटी में भी कुछ संशोधन करता है[४]।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कारणों से हिन्दू स्त्रियों का जीवन अधिकार-शून्य और आँसुओं तथा निराशा से परिपूर्ण दासी-जीवन बन गया। यही नहीं। मनु ने पुरुष को स्त्री-त्याग के भी काफी अधिकार दिए[५]।

उसने यह व्यवस्था दी कि आर्यों के चारों वर्ण अनार्यों तथा इतर

---

१. महाभा० अनु० अ० ४८
२. महाभा० कर्ण पर्व अ० ४५
३. मनु०, ३–१२, १३, १५, १६, १७, १९।
४. मनु० ३–२५। ३–५४। ९–९८, १००। ८–२०४।
५. मनु० ९–८०। ८–१०। ९–८१। ८–३७१।

वर्गों एवं मिश्रित स्त्रियों से विवाह करके या बिना ही विवाह के सम्बन्ध रखे और उनकी संतान हो तो वह न पिता की जाति या गोत्र की, न दाय-भाग की अधिकारिणी हो। वह उनकी एक नवीन और सम्पूर्ण सूची देता है।

पिता	माता	जाति
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ट
ब्राह्मण	शूद्र	निषाद
क्षत्रिय	शूद्र	उग्र
क्षत्रिय	ब्राह्मण	सूत
वैश्य	ब्राह्मण	वैदेह
वैश्य	क्षत्रिय	मागध
शूद्र	वैश्य	अयोगव
शूद्र	क्षत्रिय	क्षत्री
शूद्र	ब्राह्मण	चाण्डाल
ब्राह्मण	उग्र	अवृत्त
ब्राह्मण	अयोगव	पिजवन
ब्राह्मण	अम्बष्ठ	अभीर
निषाद	शूद्र	पुक्कस
चाण्डाल	निषाद	कुक्कुटक
क्षत्री	उग्र	स्वपाक
वैदेहक	अम्बष्ट	वैण

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पतित सवर्णा स्त्रियों में व्रात्य

ब्राह्मण व्रात्य

क्षत्रिय व्रात्य	झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नट, करन, खस, द्रविड़
वैश्य व्रात्य	सुधन्वन, आचार्य, कारुष विजन्मन, मैत्र, सान्त्वन
अयोगव	मैरिन्ध्र
अयोगव	मैत्रेयक
अयोगव	मार्गव, दास, कैवर्त
वैदेह	कारावर
कारावर	अन्ध्र
निषाद	मेद

यह सूची प्राचीन सूत्रकारों से मिलती जुलती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इनमे से वैदेह, मागध, क्षत्री, निषाद, मल्ल, लिच्छवि, द्रविण, खस, अन्ध्र आदि जातियों ने अपने समर्थ गण-राज्य स्थापित किए। आर्यों की अपेक्षा इन संकर जातियों में, जहाँ सम्पूर्ण जाति का एक बँधा गुट्ट था, गणराज्य ही अधिक स्वाभाविक थे। जबकि आर्यों में राजा अपने साम्राज्य का निर्माण करते, ब्राह्मण उनके देवत्व का ढोल पीटते और लूट के माल में हिस्सा बँटाते थे। मनु इन्हीं संकर जातियों में चाण्डाल, उग्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पहलव, किरात और दरद लोगो को भी सम्मिलित करता है; परन्तु मार्के की बात यह है कि वह पेशेबन्द जैसे सुनार, लुहार, छीपा, ठठेरा, कुम्हार आदि को संकरों में सम्मिलित नहीं करता।

यह स्वभाविक ही था कि आर्य ज्यों-ज्यों दक्षिण की ओर बढ़ते गए और अपने राज्य स्थापित करते गए तथा वहाँ की अनार्य जातियों को विजित करते गए—उनमें मिलते भी गए, कुछ उनके रीति-रिवाज अपनाते कुछ उन्हें सिखाते तथा उनकी स्त्रियों से विवाह भी करते गए। परन्तु इस

अनार्य श्रमश्रण को उन्होंने अपनी रक्त-परम्परा और दायभाग की परम्परा से भी दूर ही रक्खा। शुद्ध आर्य पृथक् रहे और वर्ण-संकर अलग। आर्य उन्हीं चार वर्णों में विभाजित रहे, परन्तु इन संकर जातियों ने भारत में और भारत के बाहर भी बड़े-बड़े राज्य स्थापित किए। विदेहों ने मिथिला में, लिच्छवियों ने वैशाली में, मागधों ने पाटलीपुत्र और राजगृह में, मल्लों ने पावा में, द्रविड़ों और आन्ध्रों ने दक्षिण में और गुजरात में महाराज्य स्थापित किए। पौण्ड्रों ने उत्तरीय बंगाल में एक समृद्ध राज्य की नींव डाली। आभीर गर्धभिल, शक, यवन, तुषार, मुण्ड आदि संकर जातियों ने भी राज्य स्थापित किए।

भारत से बाहर की जातियों ने उत्पल में, कम्बोजों ने काबुल में, वनों ने बैक्टिया में, पारदों और पहलवों ने फारिस में, चीनों ने चीन में, किरातों ने पर्वतों में; इन सब संकर जातियों का अकस्मात् ही अभ्युदय और शुद्ध आर्यों का देश विदेश पराभव एक महत् आश्चर्य की घटना है। कदाचित् आज भी समस्त सभ्य संसार पर इन्हीं संकर जातियों की संतति शासन कर रही है। संभवतः शुद्ध आर्यों के वंशजों का पराभव और संकर जातियों का उत्कर्ष का सूत्रपात कौरवों की पराजय के साथ ही हुआ, जिसमें कौरवों के साथी कुलीन आर्य थे और पाण्डवों के मिश्रित जाति वाले। वास्तव में यह युद्ध कुलीन आर्यों के गर्व को चूर मूर करने वाला था। यदि आप महाभारत में वर्णित उस सूची को ध्यान से देखें,[1] जिसमें दोनों ओर से युद्ध में सम्मिलित होने वाले राजाओं का उल्लेख है तो आप देखेंगे कि यह युद्ध पहले आए हुए और पीछे आए हुए आर्यों के बीच हुआ था। कौरवों के दल में सभी राजा सिन्ध द्रविड़ अवन्ति तक के तथा पूर्व में अयोध्या प्राग्ज्योतिष पर्यन्त के सब कुलीन राजा थे। मद्रों का राजा शल्य, पंजाब का भगदत्त, चीन किरात

---

१. महा० उद्योग० अ० १९

का भूरिश्रवा तथा माहिष्मती का राजा नील, पंजाब का केकय और गान्धार कोमल के राजा थे। उधर पाण्डवों के दल में दिल्ली मथुरा, चेदि, मगध और काशी के राजा तथा मध्य देश के लोग थे। जो निस्संदेह सब नए आए हुए चन्द्रवंशी थे। आप ध्यान से देखने पर जानेंगे कि इस युद्ध में श्रीकृष्ण और व्याम विशेष रीति पर उत्सुक हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि ये दोनों महापुरुष उच्च गुणों से विभूषित होने पर भी कुलीन आर्यों में तिरस्कार से देखे जाते थे।

युद्ध में कुलीन कौरवों का क्षय हुआ और हीनकुल पाण्डव विजयी हुए। इसके बाद तो गर्वोन्नत आर्यों का पतन होता ही गया और नन्दों के बाद सम्पूर्ण भरतखण्ड भर में संकर और शूद्र राजाओं का राज्य हो गया; और गर्वीले आर्य केवल प्रजावर्गी रह गए। परन्तु संकर जातियां ने राज्यसत्ता ही आर्यों से छीन कर संतोष नहीं किया। उन्होंने ब्राह्मणों की धर्मसत्ता भी छिन्न-भिन्न कर दी। यह कार्य बुद्ध और महावीर ने श्रमण संस्कृति का स्थापन करके सम्पन्न किया; तथा आर्य-संस्कृति के प्रतीक वेदों, यज्ञो तथा ब्राह्मणों एवं उनकी भाषा संस्कृत के विरुद्ध एक विजयी धर्मयुद्ध किया। उसका तुरन्त यह परिणाम हुआ कि जिन विजित जातियों ने विजयी आर्यों के धर्म को स्वीकार कर लिया था उन्ही की सन्तानो ने आर्यत्व की जड़ पर पूरे वेग से कुल्हाडा मारा। वेद, यज्ञ और ब्राह्मण तीनों की जड़ें हिल गई, उनका प्रबल प्रताप आधी दुनिया पर छा गया, तथा इन संकरों के वेशधर समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, अशोक आदि सम्राटों ने बिना ही अश्व-मेध-यज्ञ किए आर्यों की परम्परा को टुकरा कर अखण्ड भारत ही में नही उससे बाहर भी अपनी विजय-वैजयन्ती फहराई।

आर्यों के भारत में आने से पूर्व सिन्धु-उपत्यका में असीरिया का समसामयिक एक सभ्य जाति रहती थी। यह सामन्तशाही पद्धति पर

आर्यों का वैदिक-काल

शासित नागरिक जाति थी। उसकी सभ्यता असुर और काल्दी सभ्यता की समता की थी। तथा उनकी समसामयिक भी थी। वह 'शिश्नदेव' की पूजा करती थी तथा कृषि शिल्प और वाणिज्य में उन्होंने यथेष्ट विकास कर लिया था, उनका एक परिपूर्ण धर्म था तथा एक चित्र लिपि वे काम में लाते थे। इस सिन्धु-उपत्यका की सभ्यता का परिचय इसी शताब्दी के द्वितीय पाद के आरम्भ में 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' से प्राप्त अवशेषों से मिला है।

ममीह से लगभग १८०० वर्ष पूर्व आर्यों ने अफगानिस्तान के मार्ग से प्रविष्ट होकर इन सिन्धु-उपत्यका के नागरिकों को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उस समय आर्य जन-प्रभावित पितृसत्ताक समाज में संगठित थे और निस्संदेह इन सिन्धु-तीरवासी नागरिकों की अपेक्षा सभ्यता और संस्कृति में पिछड़े हुए थे।

यह जैमिनी[1] के मतानुसार आर्यों का वेद-साहित्य मन्त्र और ब्राह्मण दो भागों में विभक्त है। मन्त्रभाग को संहिता कहते हैं। ऋग्, यजु, साम, अथर्व की मन्त्रसंहिताएँ हैं। जिनकी अनेक शाखाएँ थीं, जिनमें अनेक अब नष्ट हो चुकी हैं। इस प्रकार आर्यों के विचारों सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आरम्भिक स्थिति और तत्कालीन अवस्था का परिचय हम वेदसंहिता, ब्राह्मण और आरण्यक में लिखित सामग्री के रूप में पाते हैं।

ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन मन्त्रसंहिता है। उसके मन्त्रकर्ता ऋषियों में सबसे प्राचीन विश्वमित्र, वशिष्ठ, भरद्वाज (गौतम), दीर्घतमा और अत्रि आदि हैं। इनमें कुछ समसामयिक हैं और कुछ में एक-दो पीढ़ियों

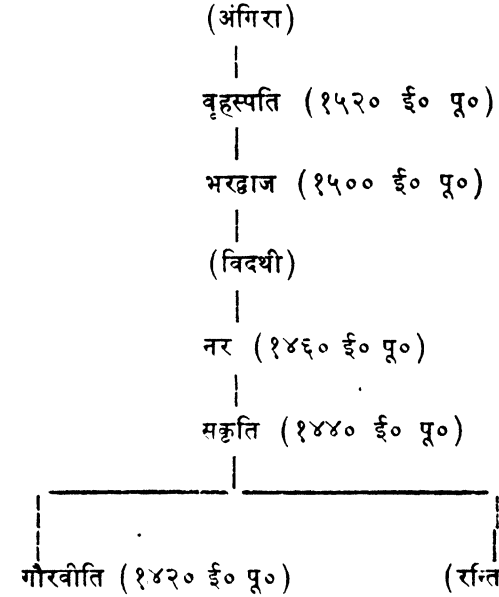
---

१. ३०० ई०।

का अन्तर है। सारा ऋग्वेद छः-सात पीढ़ियों के ऋषियों की कृति है। अंगिरा के पौत्र और बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज उत्तर-पांचाल[1] के राजा दिवोदास के ममीह से १५०० वर्ष पूर्व एक पुरोहित थे।

विश्वामित्र दक्षिण पाचाल[2] के निवासी थे। वशिष्ठ कुरुराज[3] के पुरोहित थे।

बृहस्पति जो सबसे अधिक प्रतिष्ठित और विद्वान् ऋषि है उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है।



ऋषियों की इस परम्परा पर विचार करने से इसमें सन्देह नहीं रहता

---

१. रुहेलखण्ड

२. आगरा कमिश्नरी का अधिकांश भाग

३. मेरठ और अम्बाला कमिश्नरी का अधिकांश भाग

कि ऋग्वेद-संहिता के अधिकांश भाग की रचना लगभग १०० वर्षों के बीच हुई है। ब्राह्मण और आरण्यक मसीह पूर्व की छठी-सातवीं शताब्दी तक बनते रहे है।

भारत में आने के बाद आर्यो ने पहला निवास स्वात नदी की उपत्यकाओं में[१] किया। दूसरा सप्त-सिन्धु में[२] और तीसरा उत्तर-दक्षिण-पांचाल देशों में[३]। यही पर ऋग्वेद का अधिकांश निर्मित हूआ। इसी से यह प्रदेश अधिक पवित्र, अनेक तीर्थो का केन्द्र तथा आर्यावर्त माना गया।

प्राचीन वैदिक आर्य-समाज

आर्यों के इस तृतीय सन्निवेश में बस जाने तक आर्यों में कुरु-पांचालों के समर्थ सामन्तशाही राज्य स्थापित हो चुके थे। कृषि, पशुपालन, ऊनी वस्त्र आदि का व्यापार चल निकला था। वर्ण अभी अस्थिर अवस्था में थे। विश्वामित्र राजपुत्र होने पर भी ऋषि हो गए। और भरद्वाज के पौत्र सुहोत्र और शुनहोत्र की संतति कुरु पाचालों में परिणत होकर क्षत्रिय शासक हो गई। भरद्वाज का प्रपौत्र संकृति-पुत्र रन्तिदेव राजा और क्षत्रिय था। इससे प्रतीत होता है कि इस समय तक वर्ण-व्यवस्था अस्थिर थी। कर्म अनसार ब्राह्मण (पुरोहित) क्षत्रिय (राजा) हो सकता था और राजा (क्षत्रिय) ब्राह्मण (पुरोहित)। आगे चलकर ये वर्ण आनुवंशिक बन गए; परन्तु सप्तसिन्धु और काबुल (स्वात) में जो आर्य बस गए थे उनमें वर्णव्यवस्था स्थापित ही नही हुई। उन्हें 'आर्यावर्त' के

---

१. अफगानिस्तान में।

२. पंजाब में।

३. पश्चिमी युक्तप्रान्त, यमुना-गंगा और रामगंगा की मैदानी उपत्यका।

ब्राह्मण पुरोहितों ने व्रात्य (पतित) कह कर बहिष्कार कर दिया और उसका कारण 'ब्राह्मण का अदर्शन बताया।

युक्तप्रान्त अभी भी (१५०० ई० पूर्व) घने जगलों से परिपूर्ण था। इस समय आर्यों का खाद्य रोटी, चावल, दूध, घी, दही, मांस[1] था। सोम (भंग) पेय था। ऊन के तथा चमड़े के वस्त्र पहने जाते थे। वे इन्द्र, वरुण, सोम, पर्जन्य आदि प्राकृत शक्तियों को देवता मानते थे। उनकी प्रतिमा या संकेत वे नहीं मानते थे।

उस काल में आर्य किसी एक देव को सर्वेसर्वा नहीं मानते थे। परन्तु आगे चलकर एक देववाद की प्रवृत्ति बढी जिसका आभास हमें ऋग्वेद के १० वें मंडल में मिलता हैं। आगे चलकर ई० पू० छठी पाँचवी शताब्दी में जब प्रजा के अधिकार बहुत कम रह गए और राजा निरंकुश हो गया तो राजा को 'देव' कहा जाने लगा और प्रजापति-जो आर्यों के पितृसत्ताक समाज का नेता था—ऋग्वेद के अन्तिम दशम मंडल में महान् सर्वेश्वर बन गया है ?

उपनिषद् का विकास व्यापार-प्रधान काल में होता है। और वह एक अद्वितीय निराकार शक्ति है। पुनर्जन्म, से वैदिककालीन ऋषि परिचित नहीं है। 'पुनर्जन्म' का सबसे प्रथम उल्लेख प्राचीन आर्य-साहित्य में छान्दोग्य उपनिषद् ने किया है[2], तथा इसी स्थान पर एक और महत्त्वपूर्ण बात छान्दोग्य ने उपस्थित की है—वह ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य को मनुष्य योनि नहीं मानता, उन्हें उसने स्वतन्त्र योनि का दर्जा

---

१. संकृति के पुत्र रन्तिदेव के २०० रसोइए प्रतिदिन २००० गायों के मांस को पकाते थे।

'सूपं भूयिष्टमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा।' महा० द्रोण० ६७।१७।१८ शांति-२९।२८।

२. छान्दो० ५।१०।७।

दिया है। इससे स्पष्ट है कि इस काल में वर्णों का वर्गीकरण ही नहीं, उत्तम वर्णों की महत्ता भी स्थापित हो चुकी थी। यदि सब वर्णों को मनुष्ययोनिमान् कहा जाता है तो समानता का प्रश्न उठ सकता था।

मसीह से पूर्व छठी शताब्दी में भारतीय दर्शन का स्रोत फूटा। इस समय भारत में तीन समाज प्रणालियाँ थी; १—वैदिक आर्य, २—अवैदिक आर्य (व्रात्य) और ३—अनार्य। इनमें वैदिक और अवैदिक आर्यों के जनपद भिन्न-भिन्न राजनैतिक क्षेत्रों में थे। परन्तु दोनों ही क्षेत्रों में अनार्य नागरिक थे। गणराज्यों की प्रणाली रक्त की प्रधानता पर निर्भर थी। इसलिए गणराज्यों की राज्यव्यवस्था में ये दखल नहीं दे सकते थे; परन्तु राज्यतन्त्रों में उन्हें ऐसी सुविधाएँ थीं। राजतंत्र में किसी एक कबीले की प्रधानता तो थी नहीं। राजा और पुरोहित की अधीनता स्वीकार कर लेना ही यथेष्ट था। वे उत्तम राजपद पर भी पहुँच सकते थे। परन्तु इस काल तक उन्हें आर्यसंस्कृति से दूर रखने की चेष्टा की जाती थी। सबसे प्रथम अथर्ववेद में दोनों संस्कृतियों को मिलाने का प्रयास दीख पड़ता है। अथर्ववेद आर्य अनार्य धर्मों, मन्त्र तन्त्र दोनों टोटकों के मिश्रण का प्रथम प्रयास है। परन्तु यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि इस काल में ही वैदिक अवैदिक दोनों ही दर्शनों का उदय हुआ।

वैदिक दर्शनों की अपेक्षा अवैदिक दर्शन अधिक विकसित हैं स्वतन्त्र विचारकों में चार्वाक् और कपिल प्रथम आते हैं और बुद्ध तथा उनके ममसामयिक तीर्थंकर उसके बाद।

चार्वाक

चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है। वह भोगों को महत्व देता है। चार्वाक् का अर्थ है—'चबाने के लिए मुस्तैद'। जैविलि, आरुणि, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति (चार्वाक) आदि विचारकों ने भारतीय विचारधारा में क्रान्ति

बुद्धकालीन दार्शनिक (५००-१५० ई० पू०)

की वह इस युग में चरम सीमा पर पहुँच गई। इस युग में निम्नलिखित विचारक दार्शनिक उत्पन्न हुए।

१ अजितकेश कम्बल (५२३ ई० पू०) भौतिकवादी। यह एक लोकविख्यात सम्मानित धर्मप्रवर्तक था। कोशलेश प्रसेनजित् ने एक बार गौतम बुद्ध से कहा था—

"हे गौतम, वह जो श्रमण ब्राह्मण संघ के अधिपति, गणाधिपति, गण के आचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी, तीर्थंकर बहुजनों द्वारा सुसम्मत है जैसे पूर्ण काश्यप, मक्खलिगोशाल, निगंट, नातिपुत्त, संजय वेलट्ठिपुत्त, प्रबद्ध कात्यायन, अजितकेशकम्बल—वह भी यह पूछने पर कि आपने अनुपम सच्ची सम्बोधि (परम ज्ञान) को जान लिया—यह दावा नही कर सकते फिर जन्म मे अल्पवयस्क और प्रव्रज्या में नए आप यह दावा कैसे करते हैं[1]।

त्रिपिटक में अजित और बुद्ध के संवाद का कोई उल्लेख नही है। परन्तु उसके दार्शनिक विचारों का उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों में है[2]।

२ मक्खलिगोशाल (५२३ ई० पू०) अकर्मण्यतावादी। मक्खलिगोशाल का नाम जैन और बौद्ध दोनों ही साहित्य में आया है। वह पहिले जैन साधु था पीछे उसका विरोधी हो गया। ऐसा जैनग्रन्थों से प्रकट है। जैन ग्रन्थों में उसे अत्यन्त नीचप्रकृति और ईर्षालु कहा गया है परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में बुद्धकालीन छः प्रसिद्ध लोकसम्मानित आचार्यों में गिना गया है। बौद्धग्रन्थों से यह भी प्रकट है कि वह आजीवक सम्प्रदाय का था और नंगा रहता था। आजीवक संयम-

---

१. संयुत्त-निकाय ३।१।१ (बुद्धचर्या, पृ० ९१)

२. दीघनिकाय १।२; मज्झिम निकाय २।१।१०, २।६।६

(अपने उपन्यास में हमने यह नाम कुछ विकृत करके अजितकेश-कम्बल नाम से प्रयुक्त किया है क्योंकि उनका प्रयोग औपन्यासिक है।)

नियम की भी परवाह नही करते[१]। इसी काल आजीवको के 'नन्दवात्स्य-कृशसांकृत्य दो और निर्माताओं (आचार्यों) का भी उल्लेख है। मक्खलि-गोशाल भाग्यवादी, पुनर्जन्म और देवताओं को मानने वाला था।

३ पूर्णकाश्यप (५२३ ई० पू०) अक्रियावादी। यह भी बुद्ध का समकालीन प्रसिद्ध तीर्थंकर था।

४ प्रकुद्ध कात्यायन (५२३ ई० पू०) नित्यपदार्थवादी। यह भी बुद्धकालीन विद्वान् था। भाग्यवादी होने से वह शुभकर्मो को निष्फल बताता था। वह प्रत्येक वस्तु को अचल नित्य मानता था।

५ संजय वेलट्ठिपुत्त (५२३ ई० पू०) अनेकान्तवादी। यह महा-वीर की भांति अनेकान्तवादी है; अन्तर यह है कि 'महावीर' 'हाँ' कहते हैं तपस्या संजय 'नहीं'।

६ महावीर। यह अपने को सर्वज्ञ तीर्थंकर कहते हैं। शारीरिक पर उनका बड़ा जोर है।

बुद्ध के जन्म से कुछ प्रथम ही उत्तर भारत के सामन्त राज्य विस्तार के अभिप्राय से लड़ने लगे थे। बुद्ध से दो ही तीन पीढी प्रथम कोसल ने कासी जनपद को हड़प लिया था, अंग को बुद्ध के जन्मकाल ही में मगध में मिलाया। उधर मगध की सीमा विन्ध्याचल को पार करके अवन्ती तक पहुँच चुकी थी। कोसल, वत्स, मगध अवन्ती के अतिरिक्त लिच्छवियों का प्रजातन्त्र ये पाँच महाशक्तियाँ थीं। उपनिषद् काल में राजतन्त्र की झलक अधिक है। बुद्ध के समय तो जनसत्ता भंग ही हो रही थी और कई-कई जनपद मिलकर राज्य बन रहे थे। व्यापारी-वर्ग ने भी जनों की यह सीमा-बन्दियाँ तोड़ने में सहायता की थी; क्योंकि उनके सम्बन्ध अनेक राज्यों से थे। उनका लाभ छोटे-छोटे राज्यों की अपेक्षा बड़े-बड़े राज्यों से था॥

इस उपन्यास में एक कल्पित नियुक्त पुरुष की घटना उल्लेख है। इस उल्लेख का अभिप्राय यह है कि उस काल में भी यह प्रथा

---

१. मज्झिम निकाय २।३।६, १।४।६, १।३।६।

नियोग

प्रचलित थी और यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती थी कि पति की आज्ञा से अथवा पति के मरने पर स्त्री अन्य पुरुष को नियुक्त करके सन्तान उत्पन्न कर सकती थी और वह सन्तान उस पति की कुल गोत्र और सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। ११ प्रकार के पुत्रों में इस प्रकार से उत्पन्न पुत्र—जो क्षेत्रज कहलाता था, कुर्सीनामे के क्रम से दूसरे दर्जे पर—दाय भाग का अधिकारी होता था। इसी प्रकार के नियुक्त पुरुषों के द्वारा धृतराष्ट्र पाण्डु और पाँचों पाण्डव जैसे महाज्जनों की उत्पत्ति हुई थी। महाभारत में इस प्रकार के नियुक्त पुरुषों से सन्तान उत्पन्न करने का प्रचलन प्राचीन काल से था, यह हम स्पष्ट देख पाते हैं। यद्यपि महाभारत काल में यह प्रथा निन्दनीय मानी जाने लगी थी परन्तु अनिवार्य होने पर उसका उपयोग किया जाता था। महाभारत में जो दीर्घतमा ऋषि का वर्णन है। वह तो ऐसा मालूम होता है कि इस महात्मा ने तो यह काम अपना पेशा ही बना लिया था। ऐसा मालूम होता है कि उत्तर-कालीन युग में स्त्रियों को जब पुरुषों ने वैवाहिक जीवन में अनुबन्धित किया तो बड़े यत्न, प्रयत्न और भांति-भांति की कथाएँ घड़ कर स्त्रियों पर बिना शर्त पातिव्रत का बोझ लाद दिया जिसका एक सब से बढ़िया उदाहरण सावित्री का उपाख्यान है।

नियोग की प्रथा के साथ ही साथ स्त्रियों के पुनर्विवाह की भी प्रथा बन्द कर दी। दुनिया में केवल दो ही जातियाँ हैं जिनमें स्त्रियों के पुनर्विवाह का मार्ग रोक दिया गया था। एक भारतीय आर्य और दूसरे योरोप के जर्मन। यूनानी पर्यटकों ने और सिकन्दर के साथी इतिहासकारों ने भी इस बात की साक्षी दी है कि आर्य स्त्रियों का पुनर्विवाह नहीं करते। महाभारत के अनुसार दीर्घतमा ऋषि ने यह मर्यादा स्थिर की थी कि जन्म भर स्त्री का एक ही पति रहे, वह जीवित

हो या न हो, स्त्री दूसरा पति न कर सके, करे तो पतित हो[1]।

नल के उपाख्यान में नल के मुख से कहलाया गया है—"भर्ता के लिए अनुवृत रही हुई कौन-सी स्त्री दूसरे पुरुष से विवाह करेगी और तेरे दूत तो पृथ्वी पर कहते फिरते हैं कि स्वतन्त्र व्यवहार करने वाली दमयन्ती अपने अनुरूप दूसरा भर्ता करेगी[2]।"

नियोग का अर्थ है नियुक्त करना अर्थात् ऐसी स्त्री और ऐसे पुरुष का केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए अस्थायी रूप में सहवास करना, जो नियम से पति-पत्नी नहीं हैं। प्राचीनकाल में यह कार्य कोई भी सधवा अथवा विधवा स्त्री अथवा वैसा ही पुरुष अपुत्र होने की दशा में कर सकता था और पुत्र की प्राप्ति होने पर फिर उनका कोई सम्बन्ध न रह जाता था।

वैदिक साहित्य में नियोग का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं है, फिर भी 'देवर' की कामना करने की बात वर्णित है[3]। यद्यपि यास्क ने देवर का अर्थ "द्वितीय वर" किया है[4]।

इससे नियोग की अपेक्षा पतिभाव की ही ध्वनि अधिक निकलती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नियोग की आवश्यकता उस समय हुई जब कुरु पांचाल जातियाँ गंगा की घाटी तक फैल गई थीं और उनकी राजसम्पदा बहुत बढ़ गई थी। क्योंकि इस क्रिया में केवल पुत्र का ही महत्त्व है। यद्यपि उत्तरकालीन ग्रन्थों में पुत्र को परलोक में पिण्डदान करने का अधिकार कहा गया है परन्तु वास्तव में उसका उपयोग उस

---

१. महाभारत आदिपर्व अ० १०४।

२. महाभारत वनपर्व अ० ७६।

३. यजुर्वेद—"वीरसूदेवकामा भव"; ऋग्वेद "विधवेव देवरम्"

४. यास्क—"देवरः कस्मात्? द्वितीय वर इत्युच्यते"।

समय सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए था और इसका स्पष्ट उल्लेख हमें पहले-पहल सूत्रग्रन्थों में मिलता वह है भी उत्तराधिकार के सिलसिले में जहाँ सर्वत्र के नियोग के पुत्र को क्षेत्रज कहकर औरस पुत्र से दूसरे दर्जे पर माना गया है।

वशिष्ठ[1] और गौतम[2] ने उसे दूसरे दर्जे पर और बौधायन[3] ने तीसरे दर्जे पर माना है परन्तु आपस्तम्ब[4] जो बौधायन से एक शताब्दी बाद हुआ कडाई से इन भिन्न-भिन्न प्रकार के पुत्रों का विरोध करता है।

वह नियोग के सम्बन्ध में भी कहता है कि "किसी सभ्य पुरुष को अपनी स्त्री अपने कुटुम्ब को छोड़ दूसरे को नही देना चाहिए[5]।"

मनु भी इसका समर्थन करता है[6]। नियोग-विधि किस प्रकार दूषित हुई इसका वर्णन भी मनु ने किया है[7]। याज्ञवल्क्य आचाराध्याय के विवाह-प्रकरण में नियोग-विधि का वर्णन करता है जिस पर मिताक्षरा ने मार्मिक टिप्पणी की है। मेधातिथि लिखता है कि ऋग्वेद १४०२ मे नियोग का उल्लेख है[8]।

गौतम धर्मसूत्र-नियोग की कुछ मर्यादाये स्थापित करता है, उनके नियमों का वर्णन करता है, और देवर के अभाव में सपिण्ड सगोत्र, समानप्रवर या सवर्ण के सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा देता है[9]।

---

१. वशिष्ठसूत्र १४
२. गौतमसूत्र ३२
३. बौधायन १७
४. आपस्तम्ब २।१०।२७
५. आपस्तम्ब २।१७।२७
६. मनु अ० ९, श्लोक ६४
७. मनु० अ० ९, श्लोक ६६-६८
८. मानव ९–६६ (मेधातिथि भाष्य)
९. गौतम धर्मसूत्र १८–४–१४

वह क्षेत्रज पुत्र को भी पिता के रिक्थ का भागी बताता है[१]।

लगभग इन्हीं नियमों का समर्थन बौधायन और हारीत सूत्रों, मानव धर्मसूत्रों, भृगु तथा नारदसंहिता और याज्ञवल्क्य, वैष्ण आदि में है।

पुराणों में और महाभारत में नियुक्त पुरुषों से सन्तान उत्पन्न करने के अनगिनत उदाहरण हैं। महाभारत में लिखा है कि जब परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को निष्क्षत्रिय किया और इसके उपरान्त वे महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने चले गए तब क्षत्रियकुल की स्त्रियों ने ब्राह्मणों के पास आ आकर उनसे अपने में पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना की और व्रतधारी ब्राह्मणों ने उसे स्वीकार किया। इस प्रकार क्षत्रिय जाति की वृद्धि हुई[२]।

शान्तुन की रानी सत्यवती का वह उपाख्यान महत्वपूर्ण है जब उन्होंने भीष्म से भाइयों की पत्नियों में पुत्र उत्पन्न करने का अनुरोध किया था और भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के कारण स्वीकार न कर दीर्घ-तमा ऋषि का उदाहरण देकर किसी वेदपाठी ब्राह्मण को नियुक्त करने की सम्मति दी थी[३] और भीष्म ने व्यास को अपने भाई की पत्नियों में नियुक्त किया था[४]।

पाण्डु ने माद्री और कुन्ती को अत्यन्त उत्साहपूर्ण शब्दों में किसी पुरुष को नियुक्त करने के लिये उत्तेजित किया था[५]। शरद्दण्ड की रानी पुत्र उत्पन्न करने के निमित्त ऋतुस्नान करके किसी पुरुष की प्रतीक्षा

---

१. गौतम २८–३४

२. महाभारत आदिपर्व अ० ६४

३. महाभारत आदिपर्व अ० १०४

४. महाभारत आदिपर्व अ० १०७

५. महाभारत आदिपर्व अ० १२१

में चौराहे पर आ खड़ी हुई थी[1] और महात्मा दीर्घतमा ऋषि ने तो यह पेशा ही स्वीकार कर लिया था और वे इस काम के लिये भी चौराहे पर खड रहते थे[2]।

इन उदाहरणों से हम इस परिणाम पर पहुंचे है कि यह प्राचीन परिपाटी मनुष्य-संख्या बढ़ाने पर और वैवाहिक प्रथायें प्रचलित होने पर निन्द्य समझी जाने लगीं और फिर बन्द कर दी गई। उसके बाद पतिव्रत्य के महात्म्य को बड़े जोर-शोर से प्रचारित करके इस नियोग की पद्धति को स्त्रियों और सर्वसाधारण की दृष्टि मे दूषित बना दिया गया।

मनु ने इस विषय पर बहुत विवाद किया है और वह यद्यपि इसे स्वीकार तो नहीं करता परन्तु त्याज्य और निन्दनीय बतलाता है[3]। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र[4] में तथा आदिपुराण[5] मे इसके विरोध में बहुत कुछ कहा गया है। आधुनिक आचार्यों में केवल स्वामी दयानन्द[6] ने नियोग की प्रथा को विहित कहा परन्तु आज तक आर्यसमाज के किसी पुरुष ने उस पर अमल नहीं किया।

यह एक अत्यन्त गम्भीर विषय है जिस पर हमें विचार करना चाहिए। हमारे पास इस बात के बहुत प्रमाण है कि उत्क्रान्ति के मानव-समाज के इतिहास में एक समय ऐसा था जब कि विवाह-बन्धन न था और स्त्री पुरुष उसी भांति परस्पर मुक्त-सहवास करते थे

मुक्त-सहवास

---

१. महा० आदिपर्व अ० १२१

२. महा० आदिपर्व अ० १०५

३. मनु० ९-६४,६८ और १०-५९, १६

४. कौटिलीय–१६४

५. आदिपुराण १–११

६. सत्यार्थप्रकाश–चतुर्थ समुल्लास

जैसा कि आज पशु करते हैं और वे इसके लिए किसी प्रकार की लज्जा की भावना भी मन में नही लाते थे। निस्सन्देह यह विश्व के मानवों के आदिपुरुषों का जीवन था, तब कदाचित् गुप्तेन्द्रियों को छिपाया नही जाता था और सम्भवतः सहवाह-कार्य गोपनीय नही माना जाता था। उस काल में मनुष्य को सामाजिक रूप का विकास नही हुआ था। आखेट, अहार कृषि और पशुपालन तक ही उनके सामाजिक जीवन का विकास था।

ऋग्वेद, जो आर्यों की अतिप्राचीन पुस्तक है और आर्यों की प्रारम्भिक सभ्यता का जिसमें प्रदर्शन है, मानव-समाज के बहुत संस्कृत और परिष्कृत काल का उदाहरण हमारे सामने उपस्थित करता है। वह आर्यों की सभ्यता की, जो उस युग में अन्य मानव जिनसे अधिक और शीघ्र विकसित हो गए थे तथा तत्कालीन आर्यों की प्रतिस्पर्द्धी जातियों के सम्बन्ध में भी सभ्यता की साक्षी देता है।

ऋग्वेद को पढ़ कर हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि समाज के नियन्त्रक व्यक्तियों के समक्ष स्त्री-पुरुष मुक्त-सहवास कर सन्तान उत्पन्न कर सकते थे और एक दूसरे के प्रति आजीवन अनुबन्धित रहना उनके लिए आवश्यक न था। उस काल में पुत्र माता की ही सम्पत्ति होता था पिता की नहीं। इसका उत्कृष्ट उदाहरण छान्दोग्योपनिषद्[1] में प्राप्त है जो सत्यकाम जावाल के उपाख्यान के रूप में है।

ऐतरेय ब्राह्मण[2] नें हम इलुषा दासी के विद्वान् पुत्र कविष को-जो ऋषि था, देवताओं को जानता था और देवता उसे जानते थे— अपमानित होकर यज्ञ से निकाला हुआ पाते हैं। यह उदाहरण ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् की सामाजिक स्थिति का अन्तर प्रकट करता है परन्तु

१. छान्दोग्योपनिषद् ४–४

२. ऐतरेय ब्राह्मण २–१९

मुक्त-सहवास को स्पष्ट करता है जिसकी विस्तृत व्याख्या महाभारत[1] में देखी जा सकती है। श्वेतकेतु उद्दालक का उदाहरण भी इसी प्रकार का है, जिसका वर्णन महाभारत में देखा जा सकता है। कल्माषपाद राजा की रानी मदयन्ती से अश्मक की उत्पत्ति सवर्णा स्त्रियों के मुक्त-सहवास पर काफी प्रकाश डालती है। इस उदाहरण में मुख्य बात यह है कि एन्द्रिय वासना मुख्य है और सन्तानकामना गौण। पीछे सन्तान-कामना का महत्व बढ़ा, तब सवर्णी स्त्रियों में तो नियोग ही रह गया, परन्तु दासियों में मुक्त-सहवास बिना किसी प्रतिबन्ध के आर्यों में समृद्ध होता गया। ये दासियाँ मोल खरीदी जाती थी और दान भी दी जाती थीं। क्षत्रियों और ब्राह्मणों के घरों में इनकी भारी भरमार हो गई थी। देखिए छान्दोग्योपनिषद[2], शतपथ ब्राह्मण[3], तैत्तरीयोपनिषद्[4], ऐतरेय ब्राह्मण[5], महाभारत[6], रामायण, और पुराणादि।

उत्तरकाल में जब कि विवाह-मर्यादा का विकास हो गया, मुक्त-सहवास का सम्पूर्ण उन्मुक्त और अनुबन्धन रहित प्रकार जो समाज के नियन्ताओं ने विकसित किया वह वेश्यावृत्ति थी। ये वेश्याएँ समाज में एक प्रतिष्ठा और अधिकार रखती थीं और वे विवाहिता और अविवाहिता स्त्रियों की प्रतिष्ठित सहचरी गिनी जाती थी। वे समाज का एक

---

१. महा भा० आदि पर्व अ० १२३

२. छान्दो० उ० ५–१३–१७–१९–७–२४

३. शतपथ० ३–२–४८

४. तैत्त० उ० १–५–१२

५. ऐत० ८–२२

६. महाभारत

अंग थीं। ऋग्वेद[1], यजुर्वेद[2] और शतपथ[3] में ऐसी स्त्रियों की चर्चा है।

ब्राह्मण ग्रन्थों[4] में अप्सराओं का वर्णन है जो वास्तव में देवगणों की उन्मुक्त सहवासिनी थीं। उनमें से कुछ वेदव्याख्यतायें थीं।

रामायण से पता लगता है कि जब भरत राम को लौटाने के लिए जाते हुए भरद्वाज आश्रम में पहुँचे तो भरद्वाज ने अनेक सुन्दरी वेश्यायें अयोध्यावासियों के मनुरंजन के लिए मंगवाई थीं। जिनके रूप मे विमोहित होकर भरत के साथी अयोध्यावासी कहने लगे थे कि भाई अयोध्या में क्या रखा है और दण्डक जाकर हम क्या करेंगे भरत और राम प्रसन्न रहें हम तो यहीं मजे में है। स्कन्दपुराण में भी वेश्याओं को अप्सरा कहा है। याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षराकार ने भी उनकी चर्चा की है। इन अप्सराओं की मुक्त-सहवास से उत्पन्न सन्तान राजर्षियों से विवाही गई हैं। पुराणों और महाभारत में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। ऐसी ही एक अप्सरा मक्त-सहवास से उत्पन्न कन्या शकुन्तला थी। यह स्त्री दया और लज्जा को तिलाँजलि देकर नव-शिशु शकुन्तला को कण्व के आश्रम में छोड़ जाती है, यही नहीं, एक दूसरे अवसर पर भी यह स्त्री वैसी ही विरक्ति अपनी सन्तान के लिए दिखाती है जब कि वह गन्धर्व विश्वावसु के वीर्य से उत्पन्न अपनी कन्या को स्थूलकेश ऋषि के आश्रम में छोड़ जाती है जहाँ वह पलकर 'प्रमदवरा' नाम को धारण करती है[4]।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में ६४ कलाओं में प्रवीण वेश्याओं को पसंद किया है। कुलार्णवतंत्र और गुप्तसाधनतन्त्र तथा बौद्ध-ग्रन्थों

---

१. ऋग्वेद मं० १ सूक्त ९२ मं० ४
२. यजु० अ० ३०
३. शतपथ २–४–६
४. महा० आदिपर्व अ० ८

में वेश्याओं की बड़ी भारी महिमा गाई है। श्रीपति ने बुद्ध के महलों का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ गाने वाली ऐसी वेश्यायें रहती थी जिनके नेत्र खिले कमल के समान थे, कटि क्षीण थी, नितम्ब भरी थे और वे रूपगर्विता थीं। जब बुद्ध वैरागी हो उदास रहने लगे तब उनके मनोरंजन के लिए उनके पिता ने देश-देशान्तरों की सुन्दरी वेश्याये भेजी थीं। जैन ग्रन्थों और संस्कृत-साहित्य में भी वेश्याओं की बड़ी भारी चर्चा है। भास का दरिद्र चारुदत्त और शूद्रक का मृच्छकटिक तो वेश्याओं के सम्मान में एक अच्छी दृष्टि डालता ही है। कालीदास के मेघदूत में, माघ के शिशुपालवध में और विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में वेश्याओं का सादर उल्लेख किया गया है।

स्कन्द-पुराण के ब्राह्मण-खण्ड में उज्जैन की एक प्रसिद्ध वेश्या पिंगला का वर्णन है जिसका प्रेमी मन्दर नाम का ब्राह्मण था। स्कन्द-पुराण में कलावती का खूब बढ़ा चढा वर्णन है और राजतरंगिणी में पौण्ड्रवर्द्धन नगर की वेश्या कमला का जिसका प्रेम काश्मीर महाराज जयापीड़ के साथ था। राजतरंगिणी में हंसी और नागलता नामक दो डोम की लड़कियों का वर्णन है जिन पर काश्मीर का राजा चन्द्रवर्मा मोहित था। जिसके महल में वे रानियो से ऊँचे सिहासन पर बैठती थी। कथासरित्सागर में दक्षिण भारत की राजधानी प्रतिष्ठान की वेश्या मदनमाल का उल्लेख है कि उसका घर राजप्रलाद की स्पर्द्धा करता था, इसके पास रक्षक सिपाही, घोड़े और हाथी थे। इसने प्रतापी विक्रमादित्य का सत्कार स्नान, पुष्प, सुगन्ध, वस्त्र, वस्त्राभूषण और भोजन से किया था[1]।

इसी ग्रन्थ[2] में उज्जयिनी की वेश्या देवदत्ता की कथा है जो राजा के योग्य महल में रहती थी।

---

१. कथासरित्सागर अ० ३८

२. कथासरित्सागर अ० २४

कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] से पता लगता है कि मौर्य साम्राज्य में वेश्यावृत्ति विशुद्ध पद्धति पर राज्य की देख-रेख होती थी और इस-के लिए अलग एक सरकारी विभाग था।

कृष्ण और गोपियों की रासलीलाओं से सम्बन्धित वासनामय नैशोत्सव जिनमें चीर हरण से लेकर प्रेम और सहवास के सब संचारी और असंचारी भाव उपस्थित हैं और जिनका नग्न और ओजस्वी वर्णन गीतगोविन्द में है, मुक्त-सहवास-सम्बन्धी हमारी विचारधारा को बहुत गम्भीर कर देता था। हम निस्संदेह इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि स्त्री-पुरुषों की नैसर्गिक प्रवृत्ति के लिए प्रारम्भ में समाज ने कोई मर्यादा नहीं बनाई और बहुत काल तक मनुष्य पशुओं की भांति स्वच्छन्द स्वाभाविक उद्वेगों को शमन करते रहे, बाद में समाज और सभ्यता ने व्यवहार-शास्त्र और नीतियों का प्रचार किया और अन्ततः कठिन धर्माचरणों और रूढ़ियों ने समाज को संयम-पाश में बाँध दिया।

यहाँ हम 'कन्या' शब्द की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं। हिन्दू धर्मशास्त्र "संभोग हो गया हो परन्तु विधिवत् विवाह न हुआ हो तो भी उसे कन्या ही कहेंगे?" पाणिनि के ४-१-११६वें सूत्र की व्याख्या में काशिकाकार कहते हैं कि जिस कन्या का विवाह-संस्कार नहीं हुआ वह कन्या ही है। वह परपुरुष से भोगी जाने पर भी वह कन्यात्व से नहीं पृथक् होती। विवाह होने के बाद संग होने पर कन्यात्व छूटता है। मनु के भाष्यकार कुल्लूकभट्ट भी यही कहते हैं कि विवाह असम्भव होने के कारण कन्या शब्द स्त्रीमात्र के लिए है। परन्तु बहुधा भावना के तौर पर विवाहिता स्त्रियाँ भी कन्या कह कर मानी गई हैं। इन सब

---

१ कौ० अ० अधिकरण २, अ० २७, प्रकरण ४४

उद्धरणों से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि कन्या का यह दूषण प्रारम्भ में दूषण नहीं माना जाता था, पीछे उस पर प्रतिबन्ध और कडाइयाँ होने लगी।

दास

आर्यों ने द्रविड और कोलों को दास कहा है। कोल उत्तर-पूर्व में और द्रविण दक्षिण में बसते थे। ऋग्वेद में द्रविड़ों को यातुधान या राक्षस भी कहा गया है।

इन दोनों जातियों के स्त्री-पुरुषों को युद्धबन्दी बना कर पहले-पहल सेवा-कार्य मे लिया गया। पीछे युवती स्त्रियों से सहवास करके उन्हें सम्पत्ति के तौर पर बेचा। और जब इन स्त्रियों में संतति हुई तो उसे यथार्थ में दास-दासी समझा गया और उनमें अवैध-सन्तान उत्पन्न की गई। चूंकी उनके यहां विवाह का नियम ही न था अतः उन्हें इसमें अधिक असुविधा नही हुई। हरिश्चन्द्र राजा की प्रसिद्ध कथा में राजा ऋषि का काल्पनिक ऋण चुकाने के लिए अपने आपको और अपनी पत्नी को काशी के बाजार मे बेचता दिखाई देता है; परन्तु दास बेचने का सबसे कुत्सित उदाहरण तो हम यजुर्वेद के शुनःशेप की कथा म मिलता है। जहाँ वरुण को बलि देने के लिए एक ब्राह्मण अपने पुत्र को सौ गायों के बदले बेच डालता है तथा सौ और लेकर उसका वध करने को भी उद्यत हो जाता है[1]।

दास के सम्बन्ध मे मनु कहता है कि वह चाहे मोल खरीदा गया हो या न खरीदा गया हो, उससे सेवा ही लेनी चाहिए। दास को यदि स्वामी ने छोड़ भी दिया हो तो भी वह नहीं छूटता, क्योंकि वह उसका स्वाभाविक धर्म है, उससे उसे कोई छुड़ा नहीं सकता।[2] वह दास के सात प्रकार बताता है—(१) युद्ध में जीता हुआ (२) स्वयं दास

१. शुनःशेष ३० यजु।

२. मनु अ० ८ श्लो० ४१४

(३) दासीपुत्र (४) मोल खरीदा हुआ (५) दान में दिया हुआ (६) परम्परा से चला आता हुआ (७) जिसने दण्ड के लिए दास भाव स्वीकार किया हो।[१] कौटिल्य के अथशास्त्र से दासों के अस्तित्व का पता चलता है।, पर ग्रीक राजदूत उनका अभाव बताता है। ऋग्वेद में सुदास ने पत्थर के सौ किलों को तोड़ कर तीस हजार दासों को मारा था। वे दास वास्तव में आर्यों के प्रबल शत्रु थे, उन्हे युद्धबन्दी बना कर जब सेवा-कार्य में लगाया गया तब उनका अर्थ सेवक पड़ा और उनकी स्त्रियों को दासी माना गया; जो आर्यों की सम्पत्ति स्वीकृत हुई। इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि नीच कुल की लड़कियाँ मोल ली जाकर बिना ही विवाह किए दासी बना ली जाती थी। जिनका स्वागत-सत्कार उनके रूप-गुण और शिक्षा के अनुसार होता था। इन दासियों में बिना ही प्रतिबन्ध के सहवास होता था। ये दासियाँ खरीदी भी जाती थीं और दान भी दी जाती थीं। क्षत्रियों और ब्राह्मणों के घरों में दासियों की भरमार हो गई थी। उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों से यह हम सहज ही जान सकते हैं।[२] एक राजा ने दस हजार हाथियों और दस हजार दासियों का दान किया था, जो आभूषणों से सुसज्जिता थीं; और दशों दिशाओं मे लाई गई थी।[३] महाभारत, रामायण और पुराणों में दासियों के खूब बढ़े चढ़े वर्णन हैं। भारत के बड़े-बड़े नगरों के सब बाजारों में दूर-दूर के दास विक्रेता देश-देशान्तर के दास को बेचने लाते थे।

---

१. मनु० अ० ८ श्लो. ४१५

२. बृहदारण्यक उप० ५। १३। १७। १९। ७। २४
शतपथ ब्राह्मण ३। २। ४८।
तैत्तिरीयोपनिषद् १। ५। १२

३. ऐतरेय ब्रा० ८। २२।

शम्बर असुर और उसकी पुरी का उल्लेख यहाँ सर्वथा काल्पनिक अवश्य है परन्तु यह सत्य है कि उस काल में इस प्रदेश में कुछ जंगली अनार्य राजा थे। तथा कुछ सभ्य अनार्य राजा भी थे। उनमें से अनेकों का रक्त आर्यों से मिल चुका था और वे उनकी सभ्यता में परचित हो चुके थे। शंबर नाम ताँत्रिक ग्रन्थों में आया है, और वह एक मायावी असुर था—"या माया शम्बरस्य च" दुर्गा में भी महिषासुर का वर्णन है। श्रीकृष्णचरित्र एवं महाभारत में असुरों और राक्षसों का वर्णन ऐसा है कि वे सर्वथा पृथक् न थे। विवाह, विनोद और युद्ध में उनसे सहयोग होता था।

असुर और मनुष्येतर जातियाँ

[1]पुराणों में दानव और दैत्यों के राजवंश की जो सूची दी गई है उसके अनुसार कश्यप ऋषि की स्त्री दिति की संतति 'दैत्य' जाति है। तथा दूसरी स्त्री दनु की संतति 'दानव' है।

इन जातियों में हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बालि, बाण, शंबर, वृषपर्वा, पुलोमा, रावण आदि नाम प्रसिद्ध हैं। यह एक मार्के की बात है कि पत्नी अपने नाम पर एक पृथक् वंश स्थापित करती है। रावण लोकपालों से बढ़ कर शक्तिशाली और पुलस्त्य ऋषि के कुल का था। माल्यवान्, महोदर, मेघनाद, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर, मकराक्ष उसके सम्बन्धी प्रसिद्ध राक्षस थे। राम-काल में मथुरा का राजा लवणासुर था जिससे शत्रुघ्न न युद्ध किया था। यह असुर यादव नरेश भीमसात्वत की ओर से मथुरा के प्रबन्ध पर नियुक्त था। वह नरभक्षी था। उसे मार कर शत्रुघ्न ने बारह वर्ष मथुरा पर राज्य किया था[2]। पाँचालराज दिवोदास ने प्रसिद्ध तिमिध्वज शम्बर के सौ दुर्ग जय किए थे, और

---

१. विष्णुपुराण

२. अग्नि–११, १–८

उसके भतीजे सुदास ने प्रबल प्रतापी असुर वर्चिन को मारा था[१]। उत्तरी आसाम का राजा बाणासुर था। जिसकी राजधानी शोणितपुर थी। यह नरकासुर का मित्र था, इसकी सुन्दरी पुत्री ऊषा कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को व्याही थी। इसका मंत्री कुम्भाण्ड असुर था जिसे कृष्ण ने बाण को पराजित कर राजा बनाया था[२]। नरकासुर प्राग्ज्योतिष का राजा था। इसी का पुत्र भगदत्त अतिरथी था जिसने महाभारत में युद्ध किया था। यह असुर ब्राह्मण था, परन्तु उसकी सेना में चीनी योद्धा थे[३]।

गन्धर्व देवों की उपजाति थी और सम्भवतः हिमालय के अंचल में रहती थी। इनका सबसे अधिक सजीव वर्णन और मनुष्यों से सामाजिक सम्बन्ध कथाएं कथासरित्सागर में भरी पड़ी हैं। केकय देश के राजा भरत के मामा आनव युवाजित को मार कर पुरकर नरेश गन्धर्वों ने उसका राज्य छीन लिया था, उन्हें भरत ने मार कर मामा के राज्य का उद्धार किया था[४]।

नागों का राज्य तक्षशिला में था। कुछ दिन मथुरा पर भी नागों ने राज्य किया। तक्षशिला का नाग राजा तक्षक था जिसका परीक्षित से युद्ध हुआ था; और उसमें परीक्षित मारे गए थे। परीक्षित के पुत्र सम्राट् जनमेजय एक प्रतापी राजा थे, जिन्होंने नागों को निर्वंश किया। वासुकी, कुलज, नीलरक्त, कौणप, पिच्छल, शल, चक्रपाल हलीमक, कालवेग, प्रकालग्न, सुशरण, हिरण्यबाहु, कक्षक, कालदन्तक तक्षकपुत्र शिशुरोम, महाहनु आदि अनेक नाग सरदारों को सम्राट् जनमेजय ने जीता जला दिया था[५]। पीछे नागराज वासुकी के भागनेय आस्तीक ने

१. ऋग्वेद (मं० ७)
२. हरिवंश पु०
३. महा० उद्यो० २५, १००८।
४. रघुवंश XV ८८–९
५. महाभारत

बड़े अनुनय विनय से सम्राट् से नागों की सन्धि कराई थी। मथुरा पर नागों की सात पीढ़ियों ने राज्य किया[1]; तथा काश्मीर पर भी उनका राज्य था। मसीह से पूर्व छठी शताब्दी में—जिस युग का वर्णन हमारे उपन्यास में है—विदिशा के नागराज शेष का पुत्र पुरञ्जब भोगी प्रतापी राजा था। इसके वंशधर रामचन्द्र, चन्द्राशु नृखवंत, धनधर्मण, वगर और भूतनद प्रसिद्ध नागराजा हुए[2]।

श्रमण-सम्प्रदाय

श्रमण-सम्प्रदाय ब्राह्मणों का विरोधी सम्प्रदाय था। इनमें जैन और बौद्ध दो सम्प्रदाय प्रमुख थे, जिनके शास्ता महावीर और बुद्ध थे। जो इस काल में एक ही प्रदेश में दीर्घ काल तक विचरण करते रहे। हमारा यह उपन्यास इन दोनो महाश्रमणों के जीवन काल की, और उसी क्षेत्र की—जिस में ये दोनों महाश्रमण विचरण करके अपना प्रभाव प्रसार करते रहे हैं—विहङ्गम दृष्टि डालता है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रमणों की इन दोनों प्रधान शाखाओं के सिवा और भी कुछ शाखाएँ थीं, जिनमें आजीवक और सांख्य शाखाओं का उल्लेख वैदिक सम्प्रदाय की विरोधिनी शाखाओं के रूप में किया जा सकता है। पीछे ये शाखाएँ बहुत हद तक वैदिक सम्प्रदाय में घुल मिल गईं। ऐसा मालूम होता है कि लगभग ब्राह्मण काल में पुराने वैष्णव और शैव आगम भी वेद और आर्यों के विरोधी थे, जिस प्रकार कि सांख्य-सम्प्रदाय था, परन्तु आगे चल कर वे भी वैदिक सम्प्रदाय में घुल मिल गए। केवल जैन और बौद्ध ही ऐसे सम्प्रदाय रह गए, जो अन्ततः ब्राह्मण धर्म और वेदों के विरोधी रहे। श्रमण सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे न तो अपौरुषेय अनादि रूप से या ईश्वर रचित रूप से वेदों का

---

१. वायु और ब्रह्माण्ड पुराण।

२. वायुपुराण।

प्रामाण्य ही मानते थे, न ब्राह्मणवर्ग का जातीय या पुरोहित के नाते गुरुपद स्वीकार करते थे। जैसा कि वैदिक सम्प्रदाय स्वीकार करता है। श्रमण-सम्प्रदाय की सभी शाखा प्रतिशाखाओं में श्रमण, भिक्षु, अनगार, यति, साधु, तपस्वी, परिव्राजक, अर्हत, जिन तीर्थङ्कर आदि नामों से जिन्हें पुकारा जाता था, उन्हीं में से योग्यतम व्यक्ति को गुरुपद स्वीकार करते थे।

बहुधा बुद्ध और महावीर चूँकि इन दोनों की प्रवृत्ति का धाम एक ही रहा, दोनों के अनुयायी एक दूसरे को अमित्र भाव से या प्रतिस्पर्धा भाव से मानते जानते रहे और मुख्य बात यह रही कि ये दोनों और ब्राह्मणधर्मी भी परस्पर ऐसे पड़ोसी या कुटुम्बी रहे जिनका सामाजिक सम्बन्ध बहुत निटक था।

बुद्ध और महावीर में एक अन्तर यह है कि बुद्ध ने दूसरे किसी समकालीन या पूर्वकालीन मत का समन्वय नहीं किया। जब कि महावीर की तथाकथित पूर्वकालीन पार्श्वापत्यको के परिवर्तनो का समन्वय किया है[1]।

बुद्ध ने ८० वर्ष के होकर शरीर त्यागा जब कि महावीर ७२ वर्ष के होकर मरे; परन्तु बुद्ध की मृत्यु पहले हुई, महावीर की पीछे।

बुद्ध और महावीर इन दोनों महापुरुषों ने आर्यों से उत्पन्न संकर परम्परा में जन्म लेकर आर्यों की वैदिक संस्कृति के विपरीत जो श्रमण संस्कृति की स्थापना की वह बड़ी विचित्र और बहुत बलशालिनी प्रमाणित हुई। इस श्रमण-संस्कृति की विशेषता यह थी कि उसमें 'देवताओं' और 'ईश्वर' का कोई स्थान न था। उसमें एक सामान्य व्यक्ति विकसित होकर 'देवताओं' से भी पूजित हो जाता है। इस कारण वैदिक आर्य-संस्कृति में जहाँ इन्द्रादि देवता 'पूज्य' हैं वहाँ श्रमणसंस्कृति में

श्रमण-संस्कृति

---

१. उत्तराध्ययन, अ० । २३।

वे 'पूजक' हो गए। सम्भव है श्रमण-संस्कृति के प्रभाव से ही उत्तर-कालीन हिन्दू आर्य-संस्कृति में देवताओं के स्थान पर राम और कृष्ण जैसे मनुष्य-पूजन प्रारम्भ हुआ, परन्तु वैदिक आर्य-संस्कृति के प्रभाव से उन्हें मनुष्य न रहने देकर ईश्वर अवतार की कल्पना करली गई। श्रमण-संस्कृति का मन्तव्य था ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा आत्म-विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचना। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमण-सम्प्रदाय ने अपने युग में कोटि-कोटि जनपद को भीतरी और बाहरी बन्धनों से मुक्त कर दिया। जिस काल में श्रमण-संस्कृति के उद्गार बुद्ध और महावीर ने अपना कार्य प्रारम्भ किया, उस समय धार्मिक अनुष्ठानों को ब्राह्मणों ने अपने हाथ में लिया हुआ था। ये अनुष्ठान अत्यन्त जटिल और बहु-साधन-साध्य थे और उनमें ब्राह्मणों की मध्यस्थता अनिवार्य थी। मनुष्य जाति की समानता और एकता के सिद्धान्त नष्ट हो चुके थे, और सम्पूर्ण जनपद के दश-प्रतिशत उच्चवर्णी पुरुष ९० प्रतिशत जन-साधारण तथा अपनी स्त्रियों की भी सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक स्वाधीनता को अपहरण किए बैठे थे।

आर्यों का धार्मिक साधनों का प्रमुख अनुष्ठान यज्ञ था। यह यज्ञ निरर्थक थकाने वाले, जटिल प्रक्रियाओं से परिपूर्ण और भयंकर खर्चीले तथा वर्षों तक चलने वाले होते थे और इन सबका लाभ यजमान के लिए उधारखाते और ब्राह्मणों के लिए नकद धर्म था। अर्थात् इन यज्ञों से यजमान को मृत्यु के बाद स्वर्ग सुख परन्तु ब्राह्मणों को छकड़ा भरी दक्षिणा, स्वर्ण रत्न, गाय, बैल, दास, दासी एवं अनेकों प्रकार के सुख-साधन मिलते थे। यद्यपि इन यज्ञों का और यज्ञ के देवताओं का विरोध आरण्यकों और उपनिषदों के द्वारा प्रारम्भ हो चुका था, परन्तु वह ब्राह्मणों का जुआ कंधे से उतार फेंकने और प्रजा पर अपनी राज-सत्ता और भोग-सामर्थ्य को अक्षुण्ण रखने मात्र का षड़यन्त्र था। इसलिए जो सफलता श्रमण-संस्कृति को मिली वह उनको नहीं। इनमें यद्यपि

बुद्ध ने भी काफी कठिन तपस्या की परन्तु सबसे अधिक कष्टसहिष्णुता हमको महावीर के जीवन में मिलती है। उन्होंने गृह-त्याग के बाद वस्त्र नहीं स्वीकार किया। कठोर सर्दी, गर्मी, डास, मच्छर और दूसरे जन्तुओं का परिताप सम्भव से सहन किया। कभी घर को नहीं अपनाया। बारह वर्ष के तपश्चरण में उन्होंने सब मिलाकर तीन सौ पचास से अधिक दिन भोजन नहीं किया।

बुद्ध केवल एक तपस्वी और धर्मोपदेष्टा ही न थे, वे महामेधावी, अतिजागरूक, प्रबन्धक, भूतदया से ओत-प्रोत और महान् इच्छाशक्ति वाले महापुरुष थे। उन्होंने भिक्षु-संघ को इस प्रकार अनुशासित और-व्यवस्थित किया जैसे कोई सम्राट् साम्राज्य को करे।

सबसे बड़ा भारी प्रभाव जो भारतीय संस्कृति पर इन दोनो महा-पुरुषों का पड़ा वह यह था कि पशुवध द्वारा किए जाने वाले यज्ञों का भारतवर्ष से नामशेष हो गया। पुष्पमित्र जैसे कट्टर हिन्दू राजाओं ने उन्हें पुनरुज्जीवित करना चाहा, परन्तु सफलता नहीं मिली।

आर्यों की राजसत्ताएँ तो प्रथम ही छिन गई थीं इन दोनों समर्थ श्रमणों ने उनकी धर्मसत्ता भी छीन ली इस प्रकार आर्यों के हाथ से रहा सहा धर्म-साम्राज्य भी जाता रहा।

बौद्ध-संघ

बौद्ध संघ एक ऐसा संगठित संघ था जो शीघ्र ही सम्पूर्ण एशिया में फैल गया था प्रत्येक स्त्री पुरुष बिना जात-पांत के भेद के इस संघ में सम्मिलित हो सकता था। बुद्ध से प्रथम आर्य जन शूद्रों को वानप्रस्थ या परिव्राजक नहीं होने देते थे। संघ में आने पर कहा जाता था कि उसने 'पव्वज्जा' (प्रव्रज्या) ग्रहण की। उस समय जो संस्कार किया जाता था उसे 'उपसम्पदा' कहते थे। उपसम्पदा-प्राप्त स्त्री पुरुष भिक्षु या भिक्षुणी कहाते थे। तथा संघ के अधिकार उन्हें प्राप्त होते थे। जो स्त्री पुरुष उपसम्पदा प्राप्त किया चाहते थे उन्हें सिर मुंडाकर पीत या काषाय वस्त्र पहनना पड़ता था। फिर वह भिक्षुओं को प्रणाम कर उकड़ूं

बैठ 'बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धर्म्म शरणं गच्छामि' यह त्रिवाक्य बोलता था। जिस उपाध्याय से उपसम्पदा ग्रहण की जाती थी उसका दर्जा बहुत बड़ा होता था। १० वर्ष तक भिक्षु जीवन व्यतीत करके ही योग्य और विद्वान् भिक्षु अपने अन्तेवासी को उपसम्पदा दे सकते थे। उपाध्याय अपनी इच्छा से नहीं, संघ की स्वीकृति से उसे उपसम्पदा देता था। उस समय उससे संघ अनेक प्रश्न पूछता तथा प्रतिज्ञा कराता था। तब उसे योग्य समझ उपसम्पदा लेने की अनुमति दी जाती थी। बीस वर्ष के कम आयु के भिक्षु को उपसम्पदा नहीं मिल सकती थी। इससे कम आयु के भिक्षु केवल प्रव्रज्या ग्रहण कर 'सामणेट' कहलाते थे। उन्हें १० शीलों का पालन करना पड़ता था। इनके उल्लंघन करने से वह दण्डनीय होता था। संघ में भिक्षु जीवन कैसा रहे इसका विस्तृत वर्णन विनयपिटक के 'महावग्ग' में विस्तार से लिखा है।

भिक्षुओं की तीन वस्त्र पहनने की आज्ञा थी—जो त्रिचीवर कहाते थे। १ अंतर्वासक, २ उत्तरासंग, ३ संघाटी। अन्तर्वासक नीचे का वस्त्र कमर से लटका रहता था। उत्तरासंघ ऊपर का वस्त्र था। उससे एक कंधा, छाती और दोनों जाँघें ढकी रहती थीं, संघाटी छाती और दोनों कंधों पर लिपटा रहता था। वह कमर में एक डोरी से बाँध लिया जाता था। उपासक गृहस्थ हर वर्षा ऋतु के बाद प्रत्येक संघ को वस्त्र वितरण करना बड़े पुण्य की बात समझते थे। इन तीन वस्त्रों के सिवा भिक्षु की सामग्री—एक भिक्षापात्र, एक मेखला, एक उस्तरा, एक सुई और एक छन्ना होती थी । साधारणतया भिक्षु १५ दिन में बाल मूडाते थे। वर्षा ऋतु में वे एक स्थान पर वर्षावास करते थे। इसके लिए राजाओं तथा सेट्ठियों ने बड़े-बड़े बिहार बनवा दिए थे। बुद्ध के जीवन-काल में तथा उसके बाद भी बुद्ध के शब्द और आज्ञाएँ संघ के कानून थे। संघ का यह नियम बुद्ध-निर्वाण के बाद राजगृह की प्रथम

बौद्ध महासभा में निर्णीत हुआ था कि बुद्ध को छोड़ और कोई संघ का नियम नहीं बना सकता दूसरे लोग उन नियमों की व्यवस्था कर सकते है। संघ का प्रबन्ध बहुमत से होता था[1]। भिक्षुणियों का संघ पृथक् था पर वह भिक्षु संघ के अधीन था[2]।

निगण्ठ

'निगण्ठ' शब्द संस्कृत के निर्ग्रन्थ शब्द का अपभ्रंश है। इसका अभिप्राय है नंगा रहने वाला या जो वस्त्र में गाँठ न लगावे। बौद्ध पिटकों में स्थान-स्थान पर "निगण्ठो नातपुत्तो[3]" तथा "निगण्ठा एकसाटका:[4]" जैसे शब्द आए हैं। इन शब्दों का अभिप्राय महावीर द्वारा प्रचलित जैन-परम्परा में नग्न रहने वाले साधुओं से था। यद्यपि उस काल में दूसरी परम्पराएँ भी ऐसी थीं जिनमें साधु लोग नंगे रहते थे। महावीर ने प्रारम्भ में जब दीक्षा ली थी तो एक वस्त्र धारण किया था, पीछे अचेलत्व उन्होंने अपनी परम्परा में सम्मिलित किया[5]। महावीर स्वयं अपने अन्तिम जीवन में नग्न रहते थे, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए सर्वथा अचेलत्व शक्य न था। इस बात पर विचार करके उन्होंने अचेलत्व का आदर्श रखते हुए भी सचेलत्व का मर्य्यादित विधान किया।

जो सामञ्जस्य अचेलत्व और सचेलत्व के बीच महावीर के द्वारा हुआ वह लगभग दो-अढ़ाई सो वर्ष तक साथ-साथ चलता रहा। पीछे जैन धर्म की दो शाखाएँ हो गई जो दिगम्बर और श्वेताम्बर के नाम से प्रसिद्ध हैं।

---

१. महावग्ग ९।३, ९।४; चुल्लवग्ग ४-९।४।१४।१७।
२. चुल्लवग्ग।
३. मज्झिम सुत्त ५६।
४. अंगुत्तर० Vol. 3, P.343।
५. उत्त० सूत्र २३।१३।

इस उपन्यास में महावीर स्वामी का जो उग्र तपस्वी रूप मूर्त किया गया है, उसकी बहुत कुछ झाँकी आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में तथा अनुत्तरनिकाय आदि आगमों में स्पष्ट दीख पड़ता है[१]।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि बुद्ध ने बहुत स्थानों पर निग्रंथ तपस्याओं का प्रतिवाद किया है। उस प्रतिवाद का दृष्टिकोण यह है कि तप केवल कायक्लेश है, उससे दुःख सहन का तो अभ्यास बढ़ता है, किंतु कोई आध्यात्मिक सुख या चित्तशुद्धि नहीं प्राप्त होती। मार्के की बात एक यह है कि बुद्ध की प्रकृति परिवर्तनशील और तर्कशील रही। उन्होंने भी प्रारम्भ में देहदमन किया, परन्तु उसे छोड़ कर ध्यान-मार्ग नैतिक जीवन तथा प्रज्ञा पर ही पूरा भार डाला।

वैदिक यज्ञ और पशु-वध

जिस काल का चरित्र-चित्रण इस उपन्यास में है उस काल में भी आर्य ब्राह्मणों के हिंसक यज्ञ प्रचलित थे। यद्यपि उनका विरोध होने लगा था। बड़े-बड़े राजा लोग जहाँ महाराज और सम्राट् की उपाधि धारण करने के लिए राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करते थे, वहाँ श्रीमन्त प्रजावर्गीय जन अपने छोटे-छोटे कार्यों और अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए छोटे-छोटे यज्ञ करते थे। फिर भी अनेक मनस्वी जन यज्ञविरोधी आन्दोलन करते रहते थे। उपनिषदों[२] में, ऋग्वेद[३] में, गीता[४] में और श्रीमद्भागवत[५] में हम इन यज्ञों का विरोधी आभास पाते हैं।

---

१. भगवती २।१।

२. मण्डूकोपनिषद् १–२००।

३. ऋग् १०–२२–७।

४. गीता २–४२, ४३, ४५।

५. द्रव्ययज्ञैर्भक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति। एष मा करणो हन्यात् तज्जो हि सत्रशाघ्नुवम्॥ श्रीमद्भागवत।

यज्ञों का और उसकी पद्धतियों का ऋग्वेद में बहुत ही कम और अस्पष्ट लेख है। कहीं-कहीं तो यज्ञ की निंदासूचक श्रुतियाँ भी हैं-- "ये उस सृष्टिकर्ता को नहीं जानते, तुमसे इनमें अन्तर है, नीहार द्वारा ये आच्छन्न हैं। केवल उच्चारण करने से ही तृप्त होकर विचरण करते है।"

इसमें सन्देह नहीं कि यज्ञों का बाहुल्य यजुर्वेद के काल में हुआ है, जो कि मसीह से पूर्व १५ सौ वर्ष के लगभग है। यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण को पढ़ने से पता लगता है कि यजुर्वेद के काल में आर्य जीवन में से वह सादगी और पवित्रता नष्ट हो चुकी थी। इस काल में आधुनिक दिल्ली के आसपास के देश में प्रबल कुरुओं का, उत्तरी प्रान्त में विदेहों का, अवध में कोसलों का, और बनारस के निकट कासियों का राज्य था। इनमें जनक, अजातशत्रु, जनमेजय और परीक्षित प्रतापी राजा थे। इन्हीं लोगों ने यज्ञ के आडम्बरों को इतना बढ़ा लिया था। यद्यपि जनक यज्ञविरोधी ब्रह्मवाद के भी बड़े भारी प्रचारक थे। यह विचारणीय बात है कि वहाँ ऋग्वेद में केवल पंजाब की चर्चा है, उसके आगे के भारतवर्ष का कुछ भी समाचार नहीं। वहाँ ब्राह्मणों के काल में पंजाब बिल्कुल भूला हुआ है। पंजाब के किसी भी राजा का ब्राह्मणों में उल्लेख नहीं है।

यजुर्वेद जो यज्ञों का मूलस्तम्भ है, उसका नवीन संस्करण जनक के दरबारी विद्वान् याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने किया है। ऐसा मालूम होता है कि जब ब्राह्मण लोग क्रिया-संस्कारों को बढ़ाए ही चले जाते थे, और प्रत्येक क्रिया के लिए मनमाने कारण बताते रहते थे, तब क्षत्रिय लोग--जिनके सम्मुख राजव्यवस्था की कठिन समस्याएँ थीं और जो अधिक विचारशील और अनुभवी हो गए थे---ब्राह्मणों के इस थोथे पाण्डित्य-दर्प से ऊब गए थे और उन्होंने ब्रह्म और आत्मा एवं पुनर्जन्म के नए सिद्धान्त वर्णित करके स्वर्ग और स्वर्गीय देवताओं का--जिनके लिए बड़े-बड़े यज्ञ किए जाते थे---वायकाट करना

शुरू कर दिया था। इन निरर्थक अग्निहोत्रों का जगड्वाल इतना विस्तृत हो गया था कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी वह याद न रहा और उसे जनक की फटकार खानी पड़ी[1]। कदाचित् इसी गड़बड़ाध्याय को मिटाने के लिए उसे शुक्ल-यजुर्वेद का एक नया संस्करण तैयार करना पड़ा और उसका स्वतन्त्र ब्राह्मण शतपथ—जो एक गधे का बोझ है, बनाने में अपना तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

इस उपन्यास में हमने केवल हठपूर्वक यज्ञ की एक झलक दिखाने की चेष्टा की है, जिससे पाठक उसके आडम्बरों और निरर्थक क्रिया-कलापों से अवगत हो जायँ।

हमने कहा कि बहुत प्राचीन काल मे ही यज्ञों का विरोधी दल आर्यों में खड़ा हो गया था। इनमें उपनिषदों के सूत्रधार क्षत्रिय लोग तो थे ही, अन्य विरोधियों मे सांख्य के निर्माता कपिल भी थे। गीता में यज्ञ के विरोध में कहा गया है—"हे पार्थ! वेदों के मन्त्रपाठ में भूले हुए और यह कहने वाले मूढ़ व्यक्ति—कि इसके सिवा कुछ नहीं है— बात बढ़ा-बढ़ा कर ऐसा कहते है कि भाँति-भाँति के यज्ञ आदि कर्म करने से स्वर्ग और दूसरे जन्म में कर्म-फलभोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इसलिए हे अर्जुन! इन वेदों में त्रैगुण्य भरा पड़ा है, तू गुणा-तीन हो"[2]।

मांस-भक्षण

यहाँ पर अब हम एक बड़े महत्त्वपूर्ण और विवादास्पद विषय को उठाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन काल में आर्य लोग मांसाहार करते थे और यज्ञों में पशुवध करना और मांस की आहुतियाँ देना प्रचलित था। ब्राह्मण ग्रन्थों में हम पाते हैं कि

---

१. शतपथ ब्रा० ११ प्र, ४, ५।११, ६, २१।

२. गीता २—४२, ४३, ४५।

किसी राजा या प्रतिष्ठित महिमान का जब कभी आगमन होता था तो उसके लिए एक गाय मारी जाती थी[१]। 'आधुनिक संस्कृत में महिमान का नाम ही 'गोघ्न' है जिसका अर्थ होता है 'गाय का मारने वाला' या 'जिसके लिए गाय मारी जाय'। बहुत से कुलीन हिन्दुओं का गोत्र ही 'गोघ्न' है जिसे बिगाड़ कर 'गोग्ना' का नाम दिया गया है। सम्भव है इस गोत्र वाले जब कभी ऐसे प्रतिष्ठित रहे हों कि वे जहाँ जाते रहे हो उनके लिए एक गाय मारी जाती रही हो। कृष्ण-यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्यौरे वार लिखा हुआ है कि छोटे-छोटे यज्ञ में विशेष देवताओं को प्रसन्न करने के लिए किस प्रकार का पशु मारना चाहिए।

गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि यज्ञ में मारे हुए पशु को यज्ञ में नियुक्त पुरोहित किस प्रकार बाँटे। उन्हें जीभ, गला, कंधा, नितम्ब, टाँग इत्यादि मिलता था। यजमान पीठ का भाग पाता था और उसकी स्त्री को पेड़ू के भाग से सन्तोष करना पड़ता था[२]।

शतपथ ब्राह्मण में इस विषय में कई मनोहर आख्यायिकाएँ हैं। एक विवाद इस विषय में है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए या गाय का। विवाद के अन्त में याज्ञवल्क्य कहते हैं—"यदि वह नर्म और चिकना है तो मै अवश्य खाऊँगा[३]।"

इसी ब्राह्मण में मनुष्य की बलि से लेकर घोड़ा, बैल, भेड़, बकरा, चावल, जौ आदि से यज्ञ करने का वर्णन है[४]।

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद श्रौत सूत्र हैं जिनमें यज्ञ-सम्बन्धी बलिदानो की विस्तारपूर्वक व्याख्या है।

---

१. ऐतरेय ब्राह्म० १–१५।

२. गोपथ ब्रा० २। १८।

३. शतपथ ब्रा० ३। १। २। २१।

४. शतपथ ब्रा० १। २। ३। ७। ८।

शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणों में सोमयाग में अज, गो, अश्व आदि पशुओं का संज्ञपन-वध करके उनके मांस से यजन करने का विधान है। पारस्करगृह्यसूत्र में अष्टकाश्राद्ध[१] शूलगव[२] कर्म और अन्त्येष्टि संस्कार[३] का वर्णन है वहाँ गाय, बकरा जैसे पशुओं के मांस चर्बी आदि से क्रिया सम्पन्न करने का विधान है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध में सब प्रकार के पालतू और जंगली जानवरों की संख्या थलचर, जलचर, उड़ने वाले, तैरने वाले जानवरों को मिलाकर ६०९ से कम नहीं होनी चाहिए। इस मांसभक्षण का प्रभाव उपनिषदों तक में हुआ। बृहदारण्यक उपनिषद् मे लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान्, विजयी और सब वेदों का ज्ञाता हो, वह बैल का मास और चावल का पुलाव घी डाल कर पका कर खाए[४]।

ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीय ब्राह्मण में यज्ञ में किस प्रकार पशु को मारना चाहिए इसकी भी विधि लिखी है कि उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिए और तब उसके श्वास आदि प्राणवायु नाक, मुख आदि बन्द करके मारे[५]। उत्तररामचरित नाटक मे लिखा है कि वाल्मीकि के आश्रम में जब वसिष्ठ जी गए तो उनके आतिथ्य के लिए एक वत्सतरी (बछिया) मारी गई। महाभारत काल में यद्यपि पशु-वध का विरोध होने लगा था फिर भी पाण्डवों ने जो अश्वमेध यज्ञ किया, उसमें सैकड़ों पशु मारे गए[६]।

---

१. काण्ड ३, अ० ८–९।
२. काण्ड ६ प्रपाठक ३।
३. काण्ड ३, ४–८।
४. बृहदारण्यक उपनिषद् अ० ८।४।८।
५. ऐतरेय ब्रा० ६।७; तैत्तरीय ब्रा० ३।६।६।
६. महाभारत अश्वमेध पर्व०, अ० ८८–३४।

यज्ञ से अलग ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य महिमानों के लिए पृथक्-पथक् अनेक प्रकार का मांस पकाया जाता था। अश्वमेध यज्ञ में 'खाण्डव राग' तैयार करने में इतने आदमी लगे थे और इतने पशु मारे जाते थे कि जिनका अन्त नहीं[१]। मय दानव ने जो सभागृह तैयार किया था उसमें प्रवेश करने के अवसर पर युधिष्ठिर ने १००० ब्राह्मणों को उत्तम-उत्तम कन्द-मूल और फल तथा वराहों और हरिणों के मांस, घी, शहद, तिल मिश्रित पदार्थ और तरह-तरह के मांसों से सन्तुष्ट किया गया था। वैश्य लोग भी मांस खाते थे। इसका उदाहरण भी महाभारत में है[२]। ऐसा मालूम होता है कि महाभारत काल में यज्ञ गवालम्भन और गाय बैल का मांस खाना वर्ज्य हो गया था और इस सम्बन्ध में श्रीकृष्ण का उद्योग श्लाघनीय था। परन्तु रन्तिदेव ने अपने यज्ञों में इतने गाय बैल मारे थे कि उनके चमड़े की ढेरी के पास बहने वाली नदी का नाम चर्मण्वती पड़ गया था। रन्तिदेव के रसोड़े में प्रतिदिन १०००० गौ नित्य मारी जाती थीं, जिनसे ब्राह्मण भोजन होता था। एक दिन मांस समाप्त हो गया और रसोइयों ने ब्राह्मणों से कहा आज केवल भात ही खा लो तो इस पर ब्राह्मण नाराज हो गए[३]। गोवध-निषेध पर महाभारत में एक सुन्दर उदाहरण है। प्रतीत होता है कि सबसे पहले चन्द्रवंशी क्षत्रियों में गोवध-निषेध का प्रारम्भ हुआ। नहुष और सप्तर्षियों के बीच एक स्थान पर इसी विषय पर झगड़ा हुआ है[४]।

आगे चल कर इसी वंश के श्रीकृष्ण ने गोपूजन और गोवर्द्धन का प्रचार किया। फिर भी गाय बैल को छोड़ कर दूसरे पशुओं का मांस तो ब्राह्मण और क्षत्रिय खाते ही थे। महाभारत में भक्ष्याभक्ष्य

---

१. आश्व० पर्व० अ० ४१–७९।
२. महा० कर्ण पर्व अ० ४१।
३. महाभारत।
४. महा० उ० अ० १७।

मांसों का वर्णन है[1]। श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों को विविध मांस खाने का विधान है। महाभारत में इस सम्बन्ध में विचार किया गया है[2]।

यज्ञ[3] में पशुवध के प्रकरण को लेकर इन्द्र और ऋषियों के साथ बड़ा मनोरंजक विवाद वर्णित है। इसी प्रकार वायुपुराण और महाभारत में भी है[4]। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत-काल में यज्ञ में पश-वध करने के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी। अनुशासन पर्व[5] और अश्वमेधीय पर्व[6] इस सम्बन्ध में विशेष रूप से पटनीय है। श्रीमदभागवत में यज्ञ में पशु मारने की कड़ी निदा की गई है[7]।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में कलयुग मे वर्ज्य वस्तुओं का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। आदित्यपुराण[8], बृहन्नारदीयस्मृति[9], वीर मित्रोदय[10] तथा ब्रह्मपुराण[11] में अन्यान्य वस्तुओं के साथ यज्ञीय

---

१. महा० शान्ति पर्व अ० १४१।
२. महा० अनु० प० अ० ११५–१४४।
३. मत्य पुराण अ० १४३। १२१।
४. महाभारत (शान्तिपर्व) ३४५।
५. अनुशासन पर्व ११७–२३।
६. अश्वमेधीय अ० ९१ से ९५, नकुलाख्यान अ० ९४ अगस्त्यकृत बीजमय यज्ञ।
७. श्रीमद्भागवत ४। २५। ७–८। ७। १५। ७–११।
८. आदित्य पु० (हेमाद्रि उल्लिखित)—
महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे
सौत्रामण्यामपि सुरा ग्रहणस्य च संग्रहः॥
९. वृहन्नारदीय स्मृति अ० २२ श्लो० १२–१६।
१०. वीरमित्रोदय संस्कार प्रथम, पृ० १९।
११. स्मृतिचन्द्रिका संस्कार काण्ड पृ० २८।

गोवध, पशुवध तथा ब्राह्मण के हाथ से किया जाने वाला पशु-मारण भी वर्ज्य बताया गया है। मनुस्मृति[१] और महाभारत[२] में यह भी कहा गया है कि घृतमय या पिष्ठमय अज आदि पशु से यज्ञ सम्पन्न करे, पर वृथा पशुहिंसा न करे।

एक बात अवश्य है कि हिंसक यागसूचक वाक्यों का पुराना अर्थ ज्यों का त्यों मानने वाले सनातन मीमांसक और उन वाक्यों का अर्थ बदलकर नई परम्परा वाले सनातनी आर्यसमाजी आदि दोनों ही जीवन-व्यवहार में मांसाहार से परहेज रखते है। मतभेद केवल शास्त्रीय वाक्यों के अर्थ करने में ही है और हिन्दू सनातन-मानस और नव-मानस दोनों परस्पर विरोधी परम्पराएँ एक दूसरे पर यथेष्ट प्रभाव भी रखती हैं। वैष्णव-परम्परा ही को लीजिए, यह परम्परा मुख्यतया अहिंसक याग का ही पक्ष करती रही है फिर भी उसकी विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजीय शाखा और द्वैतवादी माध्वशाखा में बड़ा अन्तर है। माध्वशाखा अज का 'कांपिष्ठमय अज' अर्थ करके ही धर्म्य आचारों का निर्वाह करती है, जब कि रामानुजशाखा एकान्त रूप से ऐसा नही मानती। रामानुजशाखा में तैंगलै और वडगलै दो भेद है। 'तैंगलै' शब्द का अर्थ है दक्षिणात्य विद्या और 'वडगलै' शब्द का अर्थ है संस्कृत विद्या। तेंगलै-शाखा वाले रामानुजी किसी भी प्रकार के पशु-वध से सहमत नही। इसलिए वे स्वभाव ही से गो, अज आदि का अर्थ बदल देंगे या उन्हें कलियुग-वर्ज्य कोटि में डाल देंगे। परन्तु वडगलै-शाखा वाले रामानुजी वैष्णव होते हुए भी हिंसक-याग से सम्मत है ।

यद्यपि यह सत्य है कि वैदिक परम्परा के कट्टर अनुयायी अनेक शाखाओं और उपशाखाओं ने हिंसासूचक शास्त्रीय वाक्यों का अहिंसापरक अर्थ किया है। तथा धार्मिक अनुष्ठानों में से एवं सामान्य जीवन-व्यवहार में से मांसाहार को अखाद्य कहकर उसका

---

१. मनु० ५--३७।

२. अनु० प० १७७ श्लो० ५४।

बहिष्कार किया है। यह बड़ी ही चमत्कारिक बात है कि जिन धर्म-वाक्यों का परम्परा के प्राचीन और प्रामाणिक दल ने हिंसापरक अर्थ किया है उन्हीं धर्मवाक्यों का अहिंसापरक अर्थ उत्तरकाल में किया गया है। सभी मीमांसक व्याख्यानकार यज्ञ-यागादि में गो, अज आदि के वध को धर्म्य स्थापित करते हैं परन्तु वैष्णव, आर्यसमाज[1] स्वामी नारायण आदि अनेक वैदिक परम्पराएँ उन वाक्यों का या तो सर्वथा पृथक् अहिंसापरक अर्थ करती हैं, या यह सम्भव न हो तो ऐसे वाक्यों को प्रक्षिप्त कहकर प्रतिष्ठित शास्त्रों में स्थान देना नहीं चाहतीं। मीमांसक प्रामाणिक व्याख्याकार इन शब्दों का अर्थ तो यथावत् करते हैं परन्तु हिंसा-प्रथा से बचने के लिए कहते हैं कि कलियुग में वैसे यज्ञ-यागादि विधेय नहीं है।

जैन-बौद्ध-परंपरा में माँसाहार

अब हम जैन और बौद्ध सम्प्रदाय के मांसभक्षण-सम्बन्धी भावना पर विचार करते हैं। जैनों के आचारांगादि आगमों के कुछ सूत्रों से मांस-मत्स्यादि भक्षण का पता चलता है। अध्यापक कौसाम्बी ने बुद्धचरित में भी इसका समर्थन किया है और जर्मन विद्वान् जैकोबी ने भी आचारांगसूत्रों के अंग्रेजी अनुवाद में यही बात लिखी है। प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य देवनन्दी ने उमा स्वाती के तत्वार्थसूत्र के ऊपर सर्वार्थसिद्धि नाम की टीका लिखी है।

---

१ "राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे. विद्यादि के दान देने हारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध; अन्न, इन्द्रियाँ किरण और पृथ्वी आदि का पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिवत् दाह करना नरमेध कहलाता है।" सत्यार्थप्रकाश सम० ११।

उसमें वे मांस आदि का प्रतिपादन करना यह श्रुतावरण बात है ऐसा बतलाते हैं[१]।

चूर्णीकार आचार्य हरिभद्र और आचार्य अभयदेव ने भी अपनी-अपनी आगमिक व्याख्याओं में उन वाक्यों का अर्थ मांस-मत्स्य-परक ही किया है। यह निर्विवाद है कि जैनियों के आचाराग और दश वैकालिकादि आगमों में सामिष आहारसूचक सूत्र उपस्थित हैं[२]।

बौद्ध ग्रन्थों में भिक्षुओं के लिए कुछ मांस खाना निषेध है और कुछ का विधान है। विनयपिटक में बच्छियों को और गायों को जो भिक्षुगण मारते थे उन्हें बुद्ध ने खासतौर पर आदेश देकर रोका था। महावग्ग में एक बछड़े को मारकर चमड़ा निकालने का उल्लेख है[३]। परन्तु रोगी को कच्चा मांस और कच्चे खून को खाने की अनुमति दी गई है। महावग्ग में वाराणसीप्रसंग में एक गृहस्थ स्त्री ने अपनी जाँघ का मांस पकाकर एक रोगी भिक्षु को खिलाया था। भिक्षु हाथी, घोड़े, कुत्ते, साँप, बाघ, चीते, भालू, लकड़बग्घा और सिंह का मांस भी खाते थे, जिसका बुद्ध ने निषेध किया।

अन्धकविन्द में एक श्रद्धालु तरुण महामान्य ने साढ़े बारह सौ भिक्षु-संघ को साढ़े बारह सौ मांस की थालियाँ तैयार कराकर भोजन कराया था[४]। वैशाली के सिंह सेनापति ने बुद्ध को संघ-सहित मांस भोजन कराया था[५]।

---

१. सर्वार्थ-सिद्धि ६।१३।

२. आचारांग २।१।२७४–२८१; दशवैकालिक अ० ५।७३–७४।

३. विनयपिटक महावग्ग ६।

४. विनयपिटक महावग्ग ६।४।४।

५. विनयपिटक महावग्ग ६।४।८—६।५।२।

बौद्ध-पिटकों में यह बतलाया गया है कि चुन्द नामक एक व्यक्ति ने बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया और उसमें उन्हें सूअर का मांस खिलाया जो उन्हें पचा नहीं और उन्हें उग्र शूल पैदा हुआ जो उनकी मृत्यु का कारण हुआ[1]। यह तो असंदिग्ध रुप से माना जाता है कि बौद्ध भिक्षु उस पशु का मांस खाने में कोई दोष नहीं समझते थे जो उनके निमित्त न मारा गया हो[2]। बुद्ध के निर्वाण के लगभग १००० वर्ष बाद बुद्ध घोष ने पिटकों के ऊपर व्याख्याएँ लिखीं। उसने दीर्घनिकाय की अट्ठकथा में 'सूकर' 'मद्दव' तीन अर्थ भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के मत से किए हैं।

वे इस प्रकार हैं—(१) स्निग्ध और मृदु सुअर का मांस, (२) पञ्च गोरस में से तैयार किया हुआ एक प्रकार का कोमल अन्न, (३) एक प्रकार का रसायन। ये तीन अर्थ महापरिनिव्वाणसुत्त की अट्ठकथा में भी हैं किन्तु उदान अट्ठकथा में और दो नए अर्थ, एक सूकर के द्वारा मर्दित बाँस का अंकुर और दूसरा वर्षा में उगने वाला अहिच्छत्र। चीनी भाषा में उपलब्ध एक ग्रन्थ में 'सूकर' 'मद्दव' का अर्थ किया गया है शर्करा से बना हुआ सूकर के आकार का खिलौना[3]। इन तमाम भिन्न-भिन्न प्रकार के क्लिष्ट-कल्पनामूलक अर्थों का यह अभिप्राय हो सकता है कि चुन्द के दिए हुए अन्तिम सूकर-मांस का निषेध किया जाय ऐसा मालूम होता है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद, चाहे जैनियों के प्रभाव से कहिए चाहे भागवत आदि हिन्दुओं के अहिंसक धर्मों का प्रभाव कहिए, बुद्ध घोष के काल में एक ऐसा वातावरण बौद्ध भिक्षुओं में उत्पन्न हो गया था कि जो बुद्ध के सूकर-मांस-भक्षण पर पर्दा डालना चाहता था।

---

१. दीघ० महापरिनिव्वाण सुत्त १६।

२. अंगुत्तर Vol. 11 P. 107 मज्झिमनिकाय सू० ५५ विनयपिटक पृ० २४५।

३. अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी।

यहाँ हम प्रसंगवश बौद्ध धर्म से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख करेंगे। बुद्ध ने अपने जीवन में जो प्रवचन कहे वे सब और उनके सौ वर्ष बाद तक जो प्रवचन बुद्ध

हीनयान-महायान

प्रवचनों के आधार पर पाली भाषा में लिखे गए वे सब भी पाली-पिटक के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन पर मान्यता रखने वाला बौद्ध-पक्ष स्थविरवाद कहलाता है। और पाली पिटकों के ऊपर बने संस्कृत पिटकों के ऊपर निर्भर रहने वाला पक्ष महायान कहलाता है। स्थविरवाद और महायान ये दोनों एक ही बुद्ध को और उनके उपदेशों को मानने वाले हैं। फिर भी इन दोनों सम्प्रदायों के बीच ऐसा तीव्र धर्म-कलह हुआ है जिसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता। यद्यपि महावीर के अनुयायी जैनियों में भी श्वेताम्बर और दिगम्बर दो फिरके पैदा हो गए। उन दोनों में काफी मानसिक कटुता रही।

भारत जहाँ धर्म-भूमि के नाम से प्रसिद्ध हुई उसी प्रकार उसे धर्म-युद्ध-भूमि भी कहना चाहिए। यह धर्मयुद्ध भारत में दो प्रकार से होता रहा—एक तो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के बीच जैसे वैदिक और अवैदिक श्रमणों का संघर्ष जो दोनों के धर्म और दर्शन-शास्त्र में दीख पड़ता है। दूसरा एक ही सम्प्रदाय के अवान्तर फिरकों के बीच जैसे एक ही औपनिषद-परम्परा के अवान्तर भेद शांकर, रामानुजीय, माध्व, वल्लभीय आदि के बीच उग्र कटुतापूर्ण। इसी प्रकार बौद्धों और जैनियों की श्रमण-परम्परा में भी मानुषिक कटुता उत्पन्न होकर दो दो फिरके परस्पर-विरोधी बन गए। बुद्ध-निर्वाण के सौ वर्ष बाद जब वैशाली में प्रथम संघ बैठा तो स्थविरवाद में से एक और शाखा फूट चली जो महासंघिक कहलाई। फिर इसके सौ वर्ष बाद अशोक के समय में जब कि दोनों पक्षों का विरोध प्रबल हो गया था और स्थविरवादी महासंघिकों को अधर्म-वादी और पाप-भिक्षु कह कर तिरस्कृत करते

थे तब तीसरा संघ बैठा और महासंघिकों में से महायान विकसित हुआ। महायान के पुरस्कर्ता नागार्जुन सिद्ध ने दर्पपूर्वक कहा कि जो श्रावक स्थविरवाद में प्रवेश करता है वह सारे लाभ को नष्ट कर देता है और कभी बोधिसत्व नहीं हो पाता। नरक में जाना भयप्रद नही पर हीनयान में जाना अवश्य भयप्रद है[1]। आचार्य स्थिरपति[2] ने अपने महायानावतारक शास्त्र में लिखा है कि जो महायान की निन्दा करता है वह पापभागी और नरक-गामी होता है[3]। वसुवन्ध ने भी ऐसा ही भाव प्रगट किया है।

लंकावतार महायाना-परम्परा का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो सम्भवतः ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में रचा गया है। उसका आठवाँ प्रकरण माँसभक्षण परिवर्त नामक है। उसमे बोधिसत्व ने बुद्ध से प्रश्न किया है कि माँसभक्षण के गुण-दोष का निरूपण कीजिए, तो इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा कि भला सब प्राणियों में मैत्री भावना रखने वाला मै कैसे मॉस खाने की अनुज्ञा दे सकता हूं, और स्वयं भी खा सकता हूं? इस प्रकार लंकावतारकार ने बुद्ध के मुंह से जो मनोरंजक वाक्य कहलवाया है उससे यह स्पष्ट होता है कि महायान-सम्प्रदाय में प्रबल माँसाहारी-विरोधी भावना उत्पन्न हो गई थी जिसका मूलाधार सम्भवतः अशोक की भूत-दया भावना थी।

इसी महायान-परम्परा में ईसा की ६वीं शताब्दी में शान्तिदेव एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् हुए। उनके सामने तक कुछ महायानी ग्रन्थ-कार भी ऐसे थे जो माँसाहार के समर्थक थे। उन्होंने माँसाहार का विरोध अपने 'शिक्षासमुच्चय' नामक ग्रन्थ में करते हुए कुछ अपवाद ऐसे बताये हैं कि जिनमें भिक्षु माँस खा सकते हैं। यह कार्य उन्होंने

---

१. दशभूमि विभाषा।

२. ई० २००-३०० के बीच।

३. चौथी शताब्दी।

पूर्वापर के दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों को देखकर किया। केवल भैषज्य-कल्प्य के तौर पर ही माँसाहार का विधान किया। उन्होंने विनयपिटक में विहित त्रिकोटी शुद्ध माँस और सहज मृत्यु से मृतक प्राणी के माँस-सूचक सूत्रों का अर्थ माँसाहारविरोधी भावना से किया। बुद्ध घोष जो लंकावतार और शान्तिदेव के मध्यकालीन और स्थविरवादी हैं उन्होंने पाली पिटकों और विनय की प्राचीन परम्परा को ही आदर दिया।

विष-कन्या

विषकन्या और उसके प्रयोग का एकमात्र उल्लेख हमें मुद्राराक्षस नाटक में मिलता है। वहाँ भी विषकन्या तथा उसके प्रयोग का केवल उल्लेख मात्र ही है। इसके सिवा एकाध थान पर प्राचीन साहित्य में बिल्कुल अस्पष्ट वर्णन मिलता है। वहीं से हमनें विषकन्या की भूमिका ग्रहण की है। अपने चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर हमने उस कल्पना का सक्रिय यथासाध्य वैज्ञानिक प्रयोग वर्णन किया है। आयु-र्वेद में अनेक महाविषों का वर्णन और उनके भक्षण प्रयोग हैं। तन्त्र-ग्रन्थों में मारण उच्चाटन प्रयोग कुछ ऐसे हैं जिनका औषध-तन्त्र से सम्बन्ध है। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र में भी ऐसे प्रयोग हैं। रावण-कृत अर्थ प्रकाश में भी है। तथा इस प्रकार के प्रयोगों को आदि भूमिका अथर्ववेद है।

स्पर्शमात्र से प्राणनाश करने वाले विष प्राचीनकाल में और आज भी हैं। सर्प दंश नित्य लेने वाला एक व्यक्ति मैंने देखा था। और जिस प्रकार निर्द्वन्द्व भाव से वह भयंकर सर्प को बस कर उसका दंश अपने हाथ पर लेता था उसी प्रकार संखिया, मुर्दासंख, काँच के टुकड़े, धतूरे के फल, आक के पत्ते वह अनायास ही खा जाता था। खाने की औषध में सर्प-विष के अनेक प्रयोग आयुर्वेद में हैं। तथा भारतीय-रसायन-

शास्त्र में बचपन ही से थोडा-थोड़ा विष खिलाते रह कर विषकन्या बनाने का भी एक स्थान पर उल्लेख है।

एक ऐसी कन्या भी होती थी जिसके जन्मकाल के कुछ ग्रह नक्षत्र ऐसे होते थे कि जो उनसे विवाह करे या सहवास करे उसी की मृत्यु हो जाती थी।

उपन्यास की भमिका में जिस विषकन्या की हमने सृष्टि की है वह रूप गुण तेज और साहस में तो अद्वितीय है ही—नीति और धर्म मे भी वह पीछे नही है। यह पाठक उसके चरित्र में भली भाति देख सकते हैं।

राजगृही का वैज्ञानिक

राजगृही के वैज्ञानिक आचार्य काश्यप कोरी कल्पना का पात्र नहीं है। निस्संदेह अब से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत को युद्धकला में इन वैज्ञानिक उपचारों का उपयोग शत्रु के लिए होना था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में "औषनिषदिक अधिकरण" में ऐसे अनगिनत प्रयोग लिखे है। उन्होंने अतिभयानक आशविषों के प्रयोग लिखे हैं; जिनके धुएं से, सूँघने से, स्पर्श से सहस्रों मनुष्य आनन फानन मृत्यु को प्राप्त हो जाते है; मनुष्य ही नहीं, हाथी, घोड़े, गधे और ऊँट भी। कुछ प्रयोग मूक, बधिर, अंधा कर देने के हैं। कुएँ, बावड़ी और तालाबों के जल को ऐसा दूषित कर देना जिससे उस जल को पीने से प्राणी महामारी में मर जाय, या पागल हो जाय, या क्षय-रोग-ग्रसित। कुछ योग कष्ट, शोष, प्रमेह, ज्वर, आदि रोग पैदा करते हैं। कुछ ऐसे दंश प्रयोग हैं जिनमें बुझे बाण मनुष्य को लगने से आदमी दूसरी को काट खाता है, वे काटे हुए मनुष्य औरो को काटने लगते हैं। कुछ विष देखने ही से मनुष्य मर जाते हैं। आग लगाने के भी बहुत प्रयोग है[1]।

ताम्बा, राँगा आदि हल्की धातु से सोना चाँदी बनाने की विद्या का नाम धातुवेध या कीमिया है। बुद्धकाल से कुछ आचार्यों का ध्यान

---

१ कौटिलीय अर्थशास्त्र—अधि० १४। अध्या० १

'शरीर को अजर अमर अथवा दीर्घकाल-स्थायी बनाया जाय' इस ओर गया । दीर्घकाल के अन्वेषण के बाद उन्होंने 'पारे' को इस काम के लिए उपयुक्त द्रव्य पाया।[1] और उसके अष्टादश संस्कारों का अविष्कार किया। उस समय गन्धक, अभ्रक, वैक्रान्त, माक्षिक आदि द्रव्यों को रससंस्कारक माना गया। और अन्तिम संस्कार को 'वेध' कहा गया । वेध दो प्रकार का था—एक 'लोहवेध' दूसरा 'देहवेध' । लोहवेध का अर्थ ताम्र वङ्ग आदि हल्की धातुओं से सप्तदश संस्कार से संस्कृत पारद के वेध द्वारा सोना-चाँदी बनाना और दूसरा देहवेध का अर्थ संस्कृत पारद के वेध से अस्थिर देह को चिरस्थायी बनाना । सप्तदश संस्कार किया हुआ पारद देहवेध के लिए समर्थ सिद्ध हुआ या नहीं इसकी परीक्षा लोहवेध से की जाती थी। जो पारद लोहवेध कर सकता है वह देहवेध अवश्य कर सकेगा। यह प्राचीनों का विश्वास था । वे केवल धन के लिए धातुवेध नहीं करते थे[2]। रस-शास्त्र के प्राचीन ज्ञाताओं में पतञ्जलि, व्याडि. नागार्जुन, गोविन्द भगवत्पाद आदि विख्यात पुरुष हुए हैं।

धातुवेध और कीमिया

कौटलीय अर्थशास्त्र में सुवर्ण के भेद बताते हुए 'रसविद्ध' नामक एक भेद बताया है[3]। भारतीय रसायनविज्ञान से सम्बन्धित अनेक रस-ग्रन्थ हैं। जिनमें कुछ प्रकाशित हैं. कुछ अप्रकाशित । प्रकाशित

---

१. अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनो अपि पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिः सेत्स्यतीत्यास्थाय पिण्डस्थैर्योपायं पारदादिपदवेदनीयं रसमेव संगिरन्ते"। श्रीसायण माधव विरचित-सर्वदर्शन संग्रहान्तर्गत-रसेश्वर दर्शनमत निरूपण।

२. रसहृदयतन्त्र अव० १ श्लो० १०
रसार्णवतन्त्र पटल १९, श्लो० १; पट० १७, श्लो० १६५-१६६।

३. अर्थ० अ० ३४।

ग्रन्थों में रसरत्नसमुच्चय, रससार, रसहृदय तथा रसेन्द्रचूडामणि प्रमुख हैं। हाल ही में एक चिरविख्यात लप्त ग्रन्थ रसरत्नाकर वादिखण्ड का एक संदिग्ध संस्करण भी प्रकाशित हुआ है। इन सभी ग्रन्थों में द्वन्द्वमेलापक, (जोड़े का), रंजन, शतवेध, सहस्रवेध, कोटिवेध आदि तारकरण और स्वर्णकरण के अनगिनत प्रयोग हैं। रसरत्नसमुच्चय के कर्ता वाग्भट ने एकतालीस रससिद्धों के नाम गिनाए हैं[1]। इन रससिद्धों ने जो रससाहित्य लिखा है वह केवल अटकलपच्चू ही नहीं उसमें मूलतत्व, यौगिक, मिश्रण, अणु परमाणु-संकेत, सूत्र, रासायनिक-संयोगमूलक, अणुभार, परमाणुभार, परमाण-बन्धन-क्षमता, धातुतत्व, अधातुतत्व, परमाणुसिद्धान्त, रश्मिक्षेपकता, इलेक्वान प्रोटीन, परमाणु का स्वरूप, घनत्व, आपेक्षिक घनत्व, तापक्रम, परावर्तन, वर्तन, काठिन्य, ऊर्ध्वपातन आदि महत्वपूर्ण वैज्ञानिक परिभाषाओं पर अन्वेषण किए गए हैं। इन ग्रन्थों को पढकर इस युग के नागार्जुन आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्रराय ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री' में इस विषय पर अधिकारपूर्ण वाणी में बहुत कुछ लिखा है।

पर-शरीर-प्रवेश

उपन्यास में जो मन्थानभैरव नामक एक कल्पित किन्तु तन्त्र-विख्यात देवता के छायादर्शन एवं उसके पर-शरीर प्रवेश का हमने जो रूपक व्यक्त किया है वह वास्तव में एक कपोल-कल्पना ही है परन्तु इस प्रकार पर-शरीर-प्रवेश की चर्चा अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है। कथा-सरित्सागर एवं कुछ पुराण-ग्रन्थों में ऐसी कथाएँ हैं। शंकराचार्य आदि के विषय में भी ऐसा ही कहा जाता है। इसलिए हमने पर-शरीर प्रवेश-सम्बन्धी भूमिका पाठकों के कौतूहल वृद्धि की भावना से की है।

पात्रों के नाम कुछ को छोड़कर प्रायः सभी काल्पनिक हैं। केवल

---

१ रसर न० अ० १

पात्रों के नाम

ऐतिहासिक जनों के नाम सत्य है। पात्रों की काल-परिधि का कुछ भी विचार नही किया गया है और आवश्यकता पड़ने पर इतिहास के सत्य की रक्षा करने की कुछ भी परवाह नही की गई है।

युद्ध

अत्यन्त प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न राज्यों में स्पर्धा के कारण निरन्तर युद्ध-प्रसङ्ग उपस्थित होते रहे है। इस कारण भारतीय-राजसत्ता के इतिहास में युद्ध की कम महत्ता नही है। यही नही, वास्तविक बात यह है कि महाभारत-काल से बहुत प्रथम ही भारतीय युद्ध नीति और सेना-व्यवस्था अत्यन्त उन्नतावस्था को पहुँच गई थी। युद्ध के प्रकार बहुत संस्कृत हो गए थे। इस सम्बन्ध में एक विचारणीय बात यह है कि इस उत्तरकाल में बड़े-बड़े युद्ध प्रायः आर्यो ही में परस्पर होते थे। इस कारण यद्धों की विनियोजना उन्नत राष्ट्रों की युद्ध-पद्धति पर नियमबद्ध थी। युद्ध-तत्त्व धर्म-युद्ध का मूर्तरूप था। कोई योद्धा धर्मयुद्ध के नियमों का उल्लंघन करने का साहस नही कर सकता था। परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं के यद्धों के बाद धर्मयुद्ध का यह रूप विकृत हो गया और युद्धतत्त्व से दया-धर्म के नियमों का अतिक्रमण होने लगा। यूनानियों ने जब ऐशियाटिक लोगों से युद्ध किये तो उन्होने क्रूर कर्मो का अवलम्ब किया।

हम जिस युग की कथा इस उपन्यास में कह रहे है उस युग में युद्ध-विद्या इतनी उन्नत और व्यापक हो गई थी कि प्रत्येक मनुष्य जब चाहे तभी भाला और तलवार लेकर युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सकता था। उस काल में सैनिक को यथावत् समर-विद्या सीखकर उसमें पारंगत होना पड़ता था। उन दिनों सेना के चार मुख्य विभाग थे—पादाति, अश्व, गज और रथ। इस प्रकार की सेना को 'चतुरंग' कहते थे। उस काल में युद्ध में हाथियों का बड़ा महत्व था। हाथियों के ही

भय से विदेशी आक्रान्ता भारतीयों से युद्ध करने में भय खाते थे। केवल सिकन्दर के ही बुद्धिकौशल ने विदेशियों का यह भय दूर किया। फिर भी शताब्दियों तक, तोपों के प्रचलन के बाद भी युद्ध में हाथी की महत्ता कम न हुई। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को अपनी बेटी देकर ५०० हाथी लिए थे फारस के शाह रोमन लोगों से युद्ध करने के समय हाथियों का उपयोग करते थे। लंगड़े तैमूर ने दुर्दान्त तुर्क सुलतान बजाजत को हाथियों की ही सहायता से दलित किया था। कदाचित् यद्ध के इतिहास में हाथियों द्वारा यह अन्तिम विजय थी।

चतुरंग सेना के चारों अंगों में प्रत्येक दश योद्धाओं पर सौ पर, और सहस्र पर एक-एक नायक रहता था। भिन्न-भिन्न अंगों के भी एक-एक अधिकारी होते थे। इन सब पर एक प्रधान सेनापति होता था। महाभारत में बताया है कि सेनापति धृष्ट, शूर. बुद्धिमान, पवित्र, कुलीन, अनुरक्त, दक्ष, व्यूह-यन्त्र और आयुधों का ज्ञाता, वर्षा-ठण्ड और गर्मी को सहन करने योग्य, तथा शत्रु के छिद्रों को जानने वाला होना चाहिए[1]।

'चतुरंग' सेना के अतिरिक्त सेना के और भी अंग उपाँग होते थे। उन्हें विष्टि, नाव, चर और देशिक कहा गया है[2]। विष्टि का सब प्रकार की युद्ध की सामग्री को लादकर ले जाने की व्यवस्था करता था। प्राचीन काल में युद्ध-प्रसंग में इसका बड़ा महत्व था। बाणों और हथियारों के तथा अन्य सामग्रियों के सहस्रों छकड़े भरकर साथ ले जाना पड़ता था। समुद्र और नदियों में नौकाएँ काम करती थीं। नौकाओं पर युद्ध भी होते थे। उत्तरभारत की बड़ी-बड़ी नदियों को पार उतारने में नौकाओं की बड़ी आवश्यकता होती थी। चर भांति-भांति के संदेश लाते थे। भिन्न-भिन्न महत्वपूर्ण स्थलों की खोज करना, रास्ता

---

१. महा० शा० प० अ० ८५–१३
२. महा० शा० प० अ० ५९

दिखाना अदि कार्य देशिक करते थे। इस प्रकार प्राचीन भारतीय युद्ध-कला में सेना के ये आठ अंग होते थे।

पादाति सेना के पास खड्ग, प्रास, परशु भिण्डीपाल, तोमर, झष्ठी आदि शस्त्रास्त्र होते थे। अश्वारोही खड्ग, बर्छा और प्रास काम में लाते थे। धनुषबाण का दोनों ही उपयोग करते थे।

वर्म का उपयोग रथी और सारथी ही कर पाते थे। भिन्न-भिन्न देश के लोग भिन्न-भिन्न युद्ध-प्रकारों में पारंगत होते थे। गान्धार, सिध और सौवीर के भट अश्वयुद्ध में विशेषता रखते थे। इन देशों के अश्व प्रसिद्ध थे। उशीनर सब प्रकार के युद्धों में प्रबल होते थे। प्राच्य-मागध आदि हाथियों के युद्ध में विशेषता रखते थे। मथुरा के भट बाहुयुद्ध में और दक्षिण के जन खड्ग युद्ध में[1]।

अश्वारोही भट जब परस्पर भिड़ जाते थे तब प्रास-युद्ध करते, फिर निकट आने पर खड्ग-युद्ध पीछे बाहु-युद्ध। प्रत्येक भट शत्रु को अश्व से गिराने की चेष्टा करता। कवच बहुमूल्य एवं भारी होते थे। अतः प्रत्येक भट उसे धारण नहीं कर सकता था। हाथियों, रथों और अश्वों पर बैठने वाले बड़े-बड़े भट ही कवच का प्रयोग कर पाते थे।

हाथी की प्रचण्ड शक्ति और आज्ञाकारिता से युद्ध में बहुत काम लिया जाता था। परन्तु उसकी सूंड इतनी नर्म होती थी कि सहज ही काटी जा सकती थी। इसकी रक्षा के लिए उसके गण्डस्थल से लेकर सूंड तक लोहे का कवच पहनाया जाता था। पैरों में भी बख्तर पहनाया जाता था। शिक्षित हाथियों को सूंड में भारी-भारी लोहे की जंजीर लेकर घुमाने की शिक्षा दी जाती थी, जिसे घुमाते हुए वे जब रौंद करते थे तो शत्रु-सैन्य छिन्न-भिन्न हो जाती थी। परन्तु ग्रीष्म ऋतु में हाथी बाहर न निकलने के कारण भीतर ही स्थित हुए पसीने से सड़ जाते थे। उन्हें कुष्ट रोग हो जाता था। पानी में न नहा सकने

---

१. महा० शान्ति अ० ६९

तथा यथेष्ट जल न पी सकने और अन्तर्दाह बढ़ जाने से वे अन्धे हो जाते थे[1]।

मल्लों को बिना ही शस्त्र के हाथियों से युद्ध करने की शिक्षा दी जाती थी। ये मल्ल फुर्ती से हाथी के पेट के नीचे घुसकर उसे घूसो से मार-मार कर विह्वल कर देते थे[2]। हाथी पर योद्धा और महावत दो व्यक्ति बैठते थे। योद्धा धनुषबाण और शक्ति का उपयोग करता था। हाथियों की सेना को परास्त करने की युक्ति सिकन्दर ने जो निकाली वह यह थी कि कवच-रहित पादातियो को दूर से ही बाण चलाकर महावतों को मार गिराने की आज्ञा दे दी गई। पीछे कवचधारी पादातियों ने बढ हाथियों के पैर काट डाले और पैरों को घायल कर दिया। सिकन्दर ने हाथियो की सूंड काटने के लिए विशेष प्रकार की बाँकुरी तलवारें बनवाई थीं। इस प्रकार उसने गजसेना का पराभव किया था।

प्राचीन काल में रथी सबसे अजेय योद्धा होता था। उस काल मे धनुष-बाण ही एक ऐसा शस्त्र था जो दूर से शत्रु को आहत करता था। फेंक कर मारने वाले अस्त्रों मे 'शक्ति' और 'चक्र' भी तेजस्वी थे। शक्ति (बरछा) की अपेक्षा चक्र दूर तक काम करता था। एर बाण इन सब से अधिक शक्तिशाली था। वह वेग से फेंका जाकर चक मील तक मार करता था। शक्ति और चक्र के युद्ध में असुविधा यह थी कि बहुत सी हाथ मे नहीं रक्खी जा सकती थीं। तथा वे फेंकी जाकर फिर लौट कर हाथ में नहीं आ सकती थी। परन्तु बाण अधिक संख्या में योद्धा अपने पास रख सकता था। तथा बड़े-बडे योद्धाओ के रथों के साथ-साथ बाणों से भरी गाडियाँ रहती थी। रथी रथ को वेग से विविध दिशाओं में घुमाकर चलाते थे और उन पर आरूढ़ रथी बाणों की वर्षा करता हुआ अनेक शत्रुओं को आहत करता था। सिकन्दर के युद्ध में भी

---

१. कौटिल्य० अ० ९–अध्याय १. सू० ४९

२. महा० द्रोण० अ० २६

आर्यों ने रथों का उपयोग किया था। आर्यों की धनुषबाण-सम्बन्धी कला की यूनानियों ने बड़ी प्रशंसा की है। उनके कथनानुसार आर्यों के रथ मनुष्य के सिर तक ऊँचे और बाण तीन हाथ लम्बे होते थे। बाणों का लोहा बहुत तीक्ष्ण और भारी होता था। ऐसे बाणों को निरन्तर चलाने के लिए योद्धा की बाहु में बहुत बल होना चाहिए। यूनानियों के आक्रमण-काल में यद्यपि धनुषबाण की कला में कमी आ गई थी परन्तु यूनानी यह देखकर स्तम्भित रह जाते थे कि आर्य योद्धाओं के फेंके हुए बाण कितने वेग से आते थे। वे लिखते हैं कि इन बाणों से लोहे की मोटी पट्टियाँ भी विंध जाती थीं। भारतीय धनुर्विद्या की कीर्ति और सामर्थ्य पृथ्वीराज चौहान में इतिहासकारों ने देखी थी। इस अन्तिम हिन्दू धनुर्धर ने बाण से लोहे के मोटे तवे छेद दिए थे धनुषबाण से युद्ध करने के लिए असाधारण शक्ति स्फूर्ति और अभ्यास की आवश्यकता होती थी। महाभारत में लिखा है कि पाण्डवों ने रात दिन धनुष चलाने का अभ्यास किया था. तब उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी[1]।

रथ पर धनुर्धर की शक्ति दशगुनी बढ़ जाती थी। परन्तु रथ पर चढ़कर युद्ध करना साधारण न था, वेग से दौड़ते हुए रथ पर चल लक्ष्य वेध करना, अपनी और सारथी की रक्षा करना, अश्वों को वश में रखना, रथ के पार्श्व भाग और पृष्ठ भाग की रक्षा करना, तथा निरन्तर मोर्चे बदलते रहना एवं रथ के बढ़ने लौटने के मार्ग का भी ध्यान रखना साधारण कार्य नहीं होता था। इसी से रथ-युद्ध में रथी और सारथी दोनों की समान योग्यता होती थी। महाभारत में अर्जुन का श्रीकृष्ण ने तथा कर्ण का महारथी शल्य मद्रराज ने रथ-संचालन किया था। अश्वत्थामा के रथ के साथ सात गाड़ियाँ बाणों की भरी हुई रहती थीं। इन गाड़ियों में आठ आठ अश्व जुते होते थे[2]। एक बार केवल

---

१. महा० आदि प० अ० १३२।

२. महा० कर्ण पर्व।

तीन घण्टे में उसने आठ गाडियों को खाली कर दिया था। महाभारत[1] में रथी-युद्ध का विस्तृत वर्णन है। वितस्ता के तीर पर जब सिकन्दर का पुरु से युद्ध हुआ तब उस युद्ध में रथ ही प्रधान अंग था। इस युद्ध का वर्णन इतिहासकार कर्टियस रूफस् ने इस प्रकार किया है—

"युद्ध प्रारम्भ होते ही वर्षा होने लगी। परन्तु कुछ समय बाद ही बादल खुल गए। पुरु ने सौ रथ और चार हजार अश्वारोहियों आगे बढ़ाए। ये रथ चार घोड़ों से खीचे जाते थे। प्रत्येक पर छः योद्धा थे। उनमें से दो हाथ में ढाल लिए खड़े थे। दो दोनों तरफ धनुष लिए खड़े थे तथा दो सारथी थे। ये सारथी लड़ते भी थे। मुठभेड़ के समय ये घोड़ों की बागडोर नीचे रख शत्रुओं पर भाले फेंकते थे। परन्तु वर्षा के कारण रथों का ठीक उपयोग नहीं हुआ। कीचड़ में पहिए धँस गये घोड़े फिसलने लगे। उधर सिकन्दर ने उन पर वेग से आक्रमण कर दिया।"

कुछ बाण बहुत छोटे केवल एक बित्ता भर के ही होते थे। शत्रु के निकट आने पर वे फेंके जाते थे। कुछ बाण सीधे छोर के न होकर अधचन्द्र के समान छोर वाले होते थे। ये बाण गर्दन काटने और सिर को धड़ से अलग करने मे काम आते थे। कुछ बाण विषदग्ध होते थे। पर धर्म-युद्ध में उनका प्रयोग वर्ज्य था। कई बाणों पर दो उल्टे सिरे रहते थे उन्हे 'कर्णी' कहते थे। यह बाण जब शरीर से निकाला जाता था तो घाव को और चीर देता था। धर्मयुद्ध में ये भी वर्ज्य थे।

सेना की व्यवस्था महाभारत[2] के अनुसार इस प्रकार होती थी। एक हाथी, एक रथ. तीन घोड़े और पाँच पैदल मिलकर एक 'पंक्ति' होती थी। तीन पंक्तियों का एक सेनामुख, तीन मुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का एक गण, तीन गणों की एक वाहिनी, तीन वाहिनियों

---

१. महाभारत शान्ति प० अ० १००।

२. महा० आदि०।

की एक प्रतना, तीन प्रतनाओं की एक चमू. तीन चमू की एक अनीकिनी और दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी। सब मिला कर एक अक्षौहिणी में २१,८७० रथ. इतने ही हाथी। ६५,६१० अश्व और १,०९,३५० पादापित होते थे ।

युद्धभूमि में इस प्रकार सेना खड़ी की जाती थी कि सम्मुख हाथी, उनके मध्य में रथ, रथों के पीछे अश्व और उनके पीछे कवचधारी पादाति[१] ।

युद्ध प्रायः दो प्रकार के होते थे। शक व्यहयुद्ध, दूसरा संकुलयुद्ध। अनेक प्रकार के व्यूहों का वर्णन महाभारत[२] तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र[३] में हैं।

हमने बताया था कि भारतीय इतिहास में आर्य लोग धर्मयुद्ध ही करते थे। परन्तु यूनानियों द्वारा भारतीयों ने भी कूटयुद्ध सीखे। सम्भवतः महाभारत-काल से कुछ प्रथम ही विदेशियों ने कूटयुद्ध भारत में किए थे। महाभारत[४] और कौटिलीय अर्थशास्त्र[५] में कूटयुद्ध का विस्तृत विवरण हमें देखने को मिलता है ।

इस उपन्यास में व्यूह-रचना, तूष्णीयुद्ध. समस्थापन, कूटयुद्ध आदि का वर्णन कौटिलीय अर्थशास्त्र के तथा महाभारत ही की युद्ध-कला के आधार पर किया गया है ।

---

१. महा० शान्ति० अ० ९९। उद्योग पर्व अ० १५५ ।

२. महा० भीष्म० अ० ५७ ।

३. कौ० अ० अ० ९-१० ।

४. महा० शान्ति० अ० ६९। १३४-१७।

५. कौटली० अधि० ९—अ० ११-१२। अधि० ९—अ० ६।७।८।९।१० अधि० १०, अधि० ११।

इन ही महास्त्रों का प्रयोग वैशाली के युद्ध मे प्रथम बार हुआ था।

रथ-मुशल और महाशिलाकंटक

इन्हीं के कारण जैन ग्रन्थो में इस युद्ध को रथ-मुशल-संग्राम और महाशिलाकंटक संग्राम के नाम से पुकारा गया है। महाशिलाकंटक ऐसा अस्त्र था कि उसमें कंकड़, पत्थर, घास, फूंस, काठ-कूड़ा जो कुछ तुच्छ से तुच्छ साधन मिले उसके द्वारा वेग से फेंका जाता था और वह महाशिला की भांति आघात करता था।

रथमुशल बिना सारथी और बिना योद्धा का एक रथ था। यह कठिन लोहे का बना था और इस पर किसी शस्त्र का प्रभाव नहीं होता था। यह रथ शत्रु-दल में घुस कर हाथी, घोड़ा, रथ, पादाति जो इस की चपेट में आ जाते उसी को कुचल कर महाजनसंहार[1] करता था। महभारत संग्राम के बाद वैशाली का युद्ध ही सबसे बड़ा था। इस युद्ध में ९६ लाख मनुष्य मरे थे तथा यह युद्ध दस दिन चला था। इसमें नौ लिच्छवि नौ मल्ल और १८ कासी-कोल के गणराज्य ध्वंस हुए थे[2]।

पारिभाषिक शब्द

उपन्यास में लगभग दो सहस्र नए पारिभाषिक शब्द आए हैं। जिनका प्रचलन चिरकाल से भाषा-प्रवाह में समाप्त हो गया है। परन्तु उस काल में प्रयोग में आते थे उनका उपयोग हमने केवल रसवर्धन एवं कालतल्लीनता के विचार से किया है। पाठकों को यद्यपि इससे कुछ असुविधा हो सकती है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उन्हें इसमें इतिहास-रस का स्वाद प्राप्त होगा तथा अपनी मूल भाषा-निर्माण में सहायता मिलेगी।

---

१. भगवतीसूत्र शतक ७ उद्दे० ९।

२. भगवतीसूत्र।

भाषा और भाव, सब मिल कर प्रस्तुत उपन्यास सर्वसाधारण के पढ़ने योग्य नहीं है। परन्तु हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति से परिचित होने के लिए यह उपन्यास प्रत्येक शिक्षित भारतीय को दस बीस बार पढ़ना चाहिए। खासकर उच्च सरकारी अफसर, जो अंग्रेजी भाषा के पण्डित और अंग्रेजी सभ्यता के अभ्यस्त हैं और जिनके वक्तव्य ही नहीं, विचार तक अंग्रेजी से अनुवादित होकर उनके मस्तिष्क से बाहर निकलते हैं, कम से कम पाद-शताब्दी तक, जब तक कि अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षित होने का दाग उनके मस्तिष्क से छूट न जाय, अपनी टेबुल पर इस उपन्यास को अनिवार्य रूप में डाल रक्खें और तब तक निरन्तर इसे पढ़ते रहें तो उन्हें मौलिक भारतीय विचारधारा अपने रक्त में प्रवाहित करने में बहुत सहायता मिलेगी। उचित तो यह है कि भारतीय सरकार ही यह आदेश जारी कर दे और उपन्यास की एक एक प्रति अपने अफसरों की टेबुल पर रख देने की व्यवस्था कर दे।

आज के इस तथाकथित जन-राज्य में, जो वास्तव में अनुपातिक गण प्रतिनिधियों की निर्विरोध शासनसत्ता है, और जिसका आधार पराजित पाश्चात्त्व राजनीति और टूटता हुआ **निस्सग साहित्यिक** पूंजीवाद है। सांस्कृतिक विकास का कोई स्थान नहीं है। इसी से साहित्यिक एकदम निस्संग रह गया है। उसका कोई रक्षक, समर्थक और साथी नहीं है। वह आज शून्य में अकेला चिल्ला रहा है, वह भूखा, प्यासा, निराश्रय और जर्जर है। वह जीवन की कठिनाइयों से घिरा हुआ, उन मध्यम श्रेणी के लोगों की भीड़ में खोया हुआ नगण्य नागरिक है जिन्हें सामूहिक रूप से मन्दविष दिया जा रहा है। हाँ, वह यदि इन राजनीतिज्ञों का भांड बन सकता है तो उसे उनकी जूठन मिल सकती है।

परन्तु साहित्य की निष्ठा बहुत है। और साहित्यकार की उससे

भी अधिक। हम केवल अति निकट ही से इसके प्रभाव को देखने के विचार से भारत ही का उदाहरण लेंगे। हमने

साहित्य की निष्ठा

बताया है कि किस प्रकार बुद्ध और महावीर ने श्रमण-संस्कृति स्थापित की जिसने वेद-यज्ञ और ईश्वर तथा संस्कृत भाषा का बहिष्कार किया और आर्यों का प्रभुत्व नष्ट कर मिश्रित जातियों को संगठित और सुसंस्कृत किया। जिस से देश ने तत्काल मे नया जीवन पाया। और आर्य अनार्यों का भेद बैर और विभाव नष्ट होकर उनकी एक संयुक्त संस्कृति बन गई। इसके बाद इन्ही मिश्रित और अनार्य जनों ने हर्षवर्धन, विक्रमादित्य और कनिष्क को जन्म दिया, जिन्होंने सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य का शृंगार किया, जो नवीन हिन्दू-जाति-निर्माण और उसमें बल-विद्या और गुणों के अधिकाधिक लक्षणों को विस्तार करने वाला एवं हिन्दू-धर्म की संस्कृति का एकमात्र प्रतीक रहा। फिर तुलसी और सूर ने साहित्य में रस-धार बहाई जिसमें स्नात होकर कोटि-कोटि जन स्फूर्ति पा गए। तुलसी की सम्पदा ने देश में सहिष्णुता, मर्यादा, धैर्य, संगटन, शौर्य और आशा का बीज बोया। तुलसी के राम के प्रभावशाली झण्डे की छाया में आगे चलकर छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण में बीजापुर, गोलकुण्डा और दिल्ली को विमर्दित करके विशाल महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की। और महाराणा राजासिह ने प्रचण्ड युद्धों में मुगल-सम्राट् को पद-दलित किया। तुलसी ही के राम का बल पाकर छत्रसाल ने केवल पाँच सवारों और पच्चीस पैदलों की सेना लेकर प्रतापी मुगलों से लोहा लिया और विजयों पर विजय प्राप्त करके दो करोड़ वार्षिक आय का महाराज्य बुन्देल-खण्ड में खड़ा कर लिया। इसी तुलसी के रामाश्रय होकर दक्षिण में बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने मुगल-साम्राज्य को ध्वंस कर पाँच सौ वर्षों के खोए हिन्दू-साम्राज्य की पुनः स्थापना की। ये तुलसी दास के हिन्दू-संगठन के महान् परिणाम थे कि दो ही शताब्दियों के भीतर हिन्दू

साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया।

इसके बाद स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देशभक्ति का पौदा लगाया और फिर गांधीजी ने राष्ट्रीयता का ध्वजारोपण किया जिससे साहित्य में महानाद उत्पन्न हुआ और उससे भयभीत होकर ब्रिटेन को अपना यह आखेट छोड़ कर भागना पड़ा।

साहित्य और साहित्यकार

साहित्य-कला का चरम-विकास है और समाज का मेरु-दण्ड धर्म और राजनीति का वह प्राण है, इसलिए इसमें दो गुण होने अनिवार्य हैं—एक यह कि वह आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करे और दूसरे वह मानवता के धरातल को ऊँचा करे।

सामर्थ्यवाद काल, जैसे जगत् के सब तत्त्वों को दूषित करता है उसी भांति उसने साहित्य को दूषित किया है। इसी से साहित्य ने मानव आत्मा का हनन किया; उसी भांति, जैसे विज्ञान ने मानव प्राणों को। और यही कारण है कि साहित्य और विज्ञान के इस उद्ग्रीव युग में मानव भौतिक और आधिभौतिक विभूतियों का सर्वाधिक रहस्यविद् होने पर भी अपने चिरजीवन में आज सर्वाधिक असहाय और भयभीत है।

साहित्य और विज्ञान ही उसे अभयदान कर आप्यायित कर सकता है यदि वह अपना लक्ष्य मानवता के धरातल को ऊँचा करना बना ले।

मानव विश्व की सबसे बड़ी इकाई है। परन्तु साहित्यकार मानव नहीं है, क्योंकि वह अतिमनुष्यों का निर्माण करता है, वास्तव में साहित्यकार महामानव है।

इसलिए उसका कोई अपना देश, धर्म, राष्ट्र. समाज और स्वार्थ नहीं है, और इनके प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं है। उसका काम है निरन्तर अतिमानवों का निर्माण करना, और मानव आदर्श के लक्ष्य-

बिन्दु पर उनकी स्थापना करना। यह करने ही से वह मानवता के धरातल को ऊँचा करने में समर्थ हो सकता है।

जो साहित्यकार विचारो को मूर्त करता है, संस्कृति को मूर्त करता है, आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने काल और उस काल के बाद के जनपद का शास्ता है। वह मानुष-तत्त्व का प्रतिनिधि है। वह मनुष्यों के आदर्श का विचार करके 'अतिमनुष्यों' का निर्माण करता है और अपनी 'नाद-ध्वनि' के संकेत पर कोटि-कोटि नरसमूह को उसी लक्ष्य-बिन्दु पर केन्द्रित करने में समर्थ है।

आभार भार और अभिवादन

अपने उन सब ज्ञात-अज्ञात विद्वानों को—जिनकी रचनाओं से मैंने इस ग्रन्थ में सहायता ली है, फिर अभिवादन करता हूँ और उनका आभार मानता हूँ। और उन दोनों धूर्त मित्रों का भी, जिन्होंने इसकी पाण्डुलिपि चुरा कर मझे इसे परिष्कृत रूप में इसे फिर से लिखने को विवश किया।

बीस वर्ष

इस ग्रन्थ में मेरा दश वर्ष का समय लगा, तथा दस वर्ष आयु के घिस कर छीज गए।

फिर भी पाठकों को यह रचना प्रिय लगे, इसे पाकर वे आनन्द-विभोर हो जायँ, उन्हे इसमें से रस की एक बूँद मिले, तो फिर इसका क्या दुख? दस वर्ष की क्या बिसात-जीवन भी घिस जाय तो क्या परवाह!!

१ मई १९४९
ज्ञान-धाम
दिल्ली शाहदरा

—चतुरसेन
